मानव-भूगोल

—:०:—

लेखक—
युगलकिशोर मिश्र, इन्टर-सी-टी०
हेडमास्टर, सेन्ट्रल ट्रेनिंग स्कूल—प्रतापगढ़ (अवध)

प्रकाशक
रामनारायण लाल
प्रकाशक और पुस्तक-विक्रेता
इलाहाबाद
मूल्य १॥)

मुद्रक—
मुंशी रमजान अली शाह
नेशनल प्रेस, प्रयाग

प्रथम संस्करण १६२[illegible]
द्वितीय संस्करण १६४०
तृतीय. संस्करण २ म १६४७

भूमिका

शिक्षा का उद्देश्य बालकों की केवल मानसिक-शक्ति की ही वृद्धि नहीं है, बल्कि उनको पाठ्य-क्रम के प्रत्येक विषय का वह व्यावहारिक और प्रायोगिक ज्ञान प्राप्त करा देना भी है जिसके द्वारा वे अपने भावी जीवन-संग्राम में सफलता प्राप्त करते हुए अपने देश और संसार के एक अच्छे नागरिक बन सकें। 'करीक्यूलम' में भाषा, गणित, इतिहास और भूगोल आदि जितने भी विषय रक्खे गये हैं, वे सब इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए हैं; अतः उनका पठन-पाठन भी इसी लक्ष्य को सामने रखते हुये होना चाहिये। यदि अपने जीवन के आठ या दस अमूल्य वर्ष पाठशाला में बिता देने तथा तन और धन दोनों की समुचित क्षति उठा लेने के पश्चात् भी कोई विद्यार्थी अपने को जीवन संग्राम में एक असमर्थ और किंकर्तव्य-विमूढ़ सैनिक ही पाता है, और संसार-रूपी मानव-कुटुम्ब का एक सहकारी और सहयोगी सदस्य न होकर उसके लिये भार स्वरूप बाधक प्रतीत होता है तथा अपने कुटुम्ब के प्रत्येक अंग से अपरिचित ही रह जाता है, तो समझना चाहिये कि उसके माता-पिता ने उसको ऐसे पाठशाले में भेजकर उसके साथ महान् अन्याय किया है और उसके शिक्षकों के लिए हम महात्मा तुलसीदास जी के शब्दों में यह ही कह सकते हैं—

"शिष-धन हरइ शोक नहिं हरई ; सो गुरु घोर नरक महँ परई।"

जीवन-संग्राम में सफलता प्राप्त करने के लिये यों तो भाषा, गणित, इतिहास और भूगोल, सभी विषयों के पर्याप्त ज्ञान की आवश्यकता हुआ करती है, किन्तु समय के परिवर्तन के साथ ही साथ इन विषयों की उपयोगिता भी कुछ न कुछ न्यूनाधिक अवश्य हो जाया करती है। आजकल, जब संसार के प्रत्येक राष्ट्र की उन्नति और उसका जीवन विज्ञान और व्यापार की तुल्य-योगिता पर निर्भर है, भूगोल के विषय का ज्ञान बहुत ही आवश्यक माना जा रहा है। किन्तु यह ज्ञान प्राचीन काल का नामात्मक शुष्क-ज्ञान न होकर आधुनिक और सजीव ज्ञान होना चाहिये जिसमें नदियों, पहाड़ों और नगरों के केवल नाम ही न बताये जायँ बल्कि ये सब वस्तुयें मनुष्य-जीवन की एक अंग मानकर पारस्परिक घात-प्रतिघात के सम्बन्ध से पढ़ाई जायँ।

किन्तु किसी भी विषय को उसके यथेष्ट रूप में पढ़ाने के लिए आवश्यकता है—समुचित और समयानुकूल पुस्तकों की। इसके बिना सुचारु-रूप से काम चला लेना कठिन ही नहीं, असम्भव भी माना जा सकता है; क्योंकि ये अध्यापकों के लिए पथ-प्रदर्शक होने के अतिरिक्त बालकों के स्वाध्याय की आधार भी बनाई जा सकती हैं। अतः यदि हम चाहते हैं कि विज्ञान, इतिहास या भूगोल की शिक्षा जीवनोपयोगी बनाई जाय तो हमें उसके अनुकूल पुस्तकें भी प्रस्तुत करना चाहिये।

अब यदि हम भूगोल के ऊपर उपरोक्त दृष्टि से विचार करते हैं तो हमें शोक के साथ कहना पड़ता है कि इस विषय में ऐसी पुस्तकों की बहुत ही बड़ी कमी पाई जाती है। अब तक, हिन्दी भाषा में—जो एक दिन भारत की राष्ट्र-भाषा होने वाली हो, भूगोल विषयक केवल

चार ही पुस्तकें ऐसी पाई जाती हैं जिन्हें हम पुस्तकों की सूची में रख सकते हैं। अधिक शोक की बात तो यह है कि ऐसी दयनीय दशा उस विषय की है जो हमारे जीवन के प्रतिक्षण और प्रतिदिन से सम्बन्ध रखता है, जिस पर हमारा और हमारे देश का भावी जीवन-मरण ही निर्भर पाया जाता है। हम हिन्दी को अपने देश की राष्ट्र-भाषा बनाने का स्वप्न तो अवश्य देखा करते हैं किन्तु उसके लिये उद्योग कुछ भी नहीं करते। जहाँ अँग्रेज़ी साहित्य में भूगोल के इसी एक अंग Human Geography पर सैकड़ों उत्तमोत्तम पुस्तकें वर्तमान हैं, वहाँ हिन्दी में आज तक ऐसी कोई पुस्तक लिखी ही नहीं गई! शोक !!

हमारे उपरोक्त कथन की गंभीरता उस समय और भी अधिक हो जाती है जब हम यह सोचते हैं कि हमारे देश में पढ़ने-लिखने का सौभाग्य अधिक से अधिक दस या पन्द्रह प्रतिशत लोगों को ही प्राप्त हुआ करता है। इनमें दो तिहाई लोगों की शिक्षा हिन्दी के प्रायमरी और मिडिल स्कूलों में ही समाप्त हो जाया करती है। केवल एक तिहाई लोग ही ऐसे सौभाग्यशाली हुआ करते हैं जिन्हें अँग्रेज़ी की उच्च शिक्षा प्राप्त करने का सुअवसर मिला करता है। इस प्रकार हम यह परिणाम निकाल सकते हैं कि हमारे शिक्षित लोगों में दो तिहाई से अधिक लोग किसी भी विषय की उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाते; उन्हें तो प्रत्येक विषय के क, ख, ग से ही संतोष कर लेना पड़ा करता है।

अब पाठ्यक्रम के अन्य विषयों को छोड़ कर केवल भूगोल पर ही ज़रा अधिक ध्यान से विचार कीजिये तो आपको इस बात का पता लग जायगा कि हमारे स्कूल और कालिजों में इस विषय की कैसी दयनीय

दशा पाई जाती है। जहाँ भाषा, गणित और इतिहास, कालिजों और विश्वविद्यालयों की उच्च से उच्च कक्षाओं तक में पढ़ाये जा रहे हैं, भूगोल की शिक्षा स्कूलों की दसवीं कक्षा में ही समाप्त कर दी जाती है। इधर दो एक वर्षों से कुछ कालिजों की ग्यारहवीं कक्षा में भी इस विषय की शिक्षा दी जाने लग गई है। किन्तु विश्वविद्यालयों की उच्च कक्षाओं में तो अब तक इसका कोई श्रीगणेश ही नहीं किया जा सका। हमारे लिए यह हर्ष की बात है कि अब कुछ विश्व-विद्यालयों में इस विषय की उच्च शिक्षा का भी प्रबन्ध किया जा रहा है। यही कारण है कि जहाँ गणित और इतिहास आदि के सैकड़ों आचार्य पाये जाते हैं, भूगोल के केवल दो या तीन ही आचार्य (D. Sces.) दिखाई पड़ रहे हैं।

इस प्रकार स्कूलों की दसवीं कक्षा तक में ही इस विषय का कोर्स समाप्त करते हुए हमारे विद्यार्थियों को जैसा ज्ञान प्राप्त हुआ करता है वह तो वही मनुष्य जान सकता है जिसने इस विषय की शिक्षा प्राप्त की हो। नदियों, पहाड़ों, प्रसिद्ध स्थानों और कुछ अन्य वस्तुओं का केवल नाम जान लेने के अतिरिक्त कार्य और कारण से प्रसूत प्रायोगिक ज्ञान का उन्हें कुछ भी भान नहीं हुआ करता। भूगोल का मनुष्य-जीवन के साथ भी कोई सम्बन्ध है या नहीं, इसे तो वे अपने जीवन पर्यन्त भी नहीं समझ पाते। जब कभी किसी पत्र या पत्रिका में पिगमियों, किरघियों या इस्कीमोज़ का हाल पढ़ने को मिल जाया करता है तो उनके आश्चर्य की सीमा ही नहीं रहा करती। यही कारण है कि हमारे देश के शिक्षित और अशिक्षित ६० प्रतिशत लोग भूगोल के विषय से उदासीन पाये जाते हैं। वरन् वे इसको एक अनावश्यक विषय ही समझा करते हैं।

जब यह दशा अंग्रेज़ी स्कूलों के विद्यार्थियों की है तो बेचारे प्रायमरी और मिडिल स्कूलों के विद्यार्थियों का क्या कहना ! उन्हें तो संसार के समस्त देशों और पहाड़ों का नाम रट-रटा कर इम्तिहान पास कर लेने में ही संतोष कर लेना पड़ा करता है। भूगोल की उच्च और यथेष्ट शिक्षा किसे कहते हैं और उससे हमारे जीवन को क्या लाभ है, यह तो उनके अध्यापकों में से ही अधिकांश को नहीं ज्ञात हुआ करता। यही कारण है कि मिडिल स्कूलों से निकले हुए विद्यार्थी स्टैपीज़ और प्रेरीज़ का नाम जान लेने के अतिरिक्त उनके विषय में और कुछ भी नहीं जाना करते ; किन्तु इसमें उन बेचारों का क्या दोष ; उनके पास तो ऐसा कोई साधन ही नहीं है जिसके द्वारा वे इन स्थानों और यहाँ के रहने वाले लोगों के जीवन की विशेषताओं को भी पढ़ और जान सकें। परीक्षा के प्रश्न-पत्र में जब कोई प्रश्न ऐसा पूछ लिया जाता है जिसमें भूगोल का प्रायोगिक अथवा जीवनात्मक सम्बन्ध प्रगट करना हो तो उन बेचारों को उसे छोड़ देने अथवा इधर-उधर की कुछ अंट-शंट बातें लिख देने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं सूझा करता।

अतः उपरोक्त विचार से प्रेरित हो कर, हिन्दी-साहित्य के इस अंग की पूर्ति करने और विद्यार्थियों तथा अन्य भूगोल प्रेमी सज्जनों के लिये एक सुलभ साधन उपस्थित कर देने के लिये ही मैंने इस पुस्तक के लिखने का दुस्साहस कर डाला है। इससे मुझे पूर्ण आशा है, कि उन सब विद्यार्थियों और हिन्दी-प्रेमी सज्जनों को अवश्य लाभ होगा जो कि भूगोल के भिन्न-भिन्न अंगों का समुचित और जीवनात्मक ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं किन्तु अँग्रेज़ी न जानने के कारण उस वाञ्छनीय ज्ञान से वञ्चित

रह जाया करते हैं। यह पुस्तक भूगोल के केवल एक अंग—मानव-पार्श्व, जो आजकल बहुत ही आवश्यक अंग माना जा रहा है—को लेकर लिखी गई है, क्योंकि किसी भी विषय में उसका मानव-सम्बन्ध ही सबसे अधिक आवश्यक और उपयोगी अंग हुआ करता है। इससे हमारे पाठकों को भिन्न भिन्न प्रकार की भौगोलिक परिस्थितियों में रहने वाले प्रत्येक प्रकार के मानव जीवन का कुछ न कुछ बोध अवश्य हो जायगा। जिससे वे इस प्रकार हमारे जीवन को प्रभावित किया करती हैं, तथा भूगोल के विषय का मनुष्य-जीवन के साथ क्या और कितना सम्बन्ध रहा करता है।

अब अन्त में मैं लाला रामनारायण लाल जी को भी धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता जिन्होंने बड़ी उदारता के साथ इस पुस्तक के प्रकाशन का भार अपने ऊपर लिया है। यदि इस पुस्तक ने भूगोल के विषय को सर्व-प्रिय और रुचिकर बनाने में हमारे विद्यार्थियों तथा अन्य हिन्दी-प्रेमियों की तनिक भी सहायता की तो मैं अपने परिश्रम को सर्वथा ही सफल मानकर परमात्मा को अनेकानेक धन्यवाद दूँगा। किमधिकम्।

प्रतापगढ़ (अवध)
(मातृ-नवमी)

युगल किशोर मिश्र

विषय-सूची

—:०:—

मानव-भूगोल

—:०:—

पहिला अध्याय

मनुष्य और भूगोल

शिक्षा-विभाग के पाठ्य-विषयों में से कोई भी विषय ऐसा नहीं है जो पिछले तीस या चालीस वर्षों में इतना परिवर्तित और परिवर्धित हो गया हो जितना कि भूगोल। जब हम ई० सन् १९०१ और १९३१ के पाठ्य-क्रम को मिलान करते हैं तो हमें पृथ्वी और आकाश का अन्तर मालूम होता है। प्रत्येक वर्ष उसके विषय और पाठन शैली में आश्चर्यजनक परिवर्तन होते जा रहे हैं। इसका कारण केवल एक ही है, और वह है—हमारा शिक्षित समाज में इस विषय की मानव उपयोगिता का परिज्ञान। पहिले लोगों का यह विचार था कि भूगोल से मनुष्य-समाज को कोई विशेष लाभ नहीं है। इसलिये पृथ्वी के कुछ भिन्न भिन्न-प्रदेशों के बारे में इधर उधर का थोड़ा-बहुत परिज्ञान ही—केवल नदियों, पहाड़ों और कुछ मशहूर शहरों की एक वृहत् नामावली—भूगोल का सारांश मान लिया गया था। यही कारण है कि उस समय की पाठ्य-पुस्तकों में प्रत्येक देश की नदियों, पहाड़ों, झीलों और अन्तरीपों आदि के नाम एक विस्तृत संख्या में पाये जाते हैं। कुछ व्यापारी लोग दूसरे प्रदेशों के बन्दरगाहों

और तिजारती केन्द्रों का नाम भी जान लिया करते थे; किन्तु जन-साधारण इस विषय को एक बहुत ही अनावश्यक विषय समझा करता था और इसी लिये हमारे शिक्षालयों में इसके पठन-पाठन की ओर भी बहुत ही कम ध्यान दिया जाता था।

किन्तु अब समय के परिवर्तन के साथ लोगों के विचार बहुत कुछ बदल गये हैं और दिन प्रति दिन बदलते भी जा रहे हैं। अब लोग इस विषय को एक अनुपयोगी विषय न मान कर यह मानने लग गये हैं कि हमारी उन्नति के लिये यह विषय भी, यदि और विषयों से अधिक नहीं तो कम से कम उनके बराबर ही, उपयोगी और आवश्यक है। यदि आज हमें अपने भावों को प्रगट करने के लिये भाषा की, प्रति दिन के आय-व्यय सम्बन्धी कार्यों में अङ्कगणित की, और अपने पूर्वजों का हाल जानने के लिये इतिहास की आवश्यकता है तो उसके साथ ही साथ दूसरे देशों और स्थानों के निवासियों के रंग ढंग, रहन-सहन और उनके जीवन सम्बन्धी अन्य बातों के जानने के लिये भूगोल की भी आवश्यकता है। क्योंकि इस समय भूगोल का विषय किसी देश के पहाड़ों और पठारों, वहाँ की नदियों और झीलों आदि के नाम मात्र का ही द्योतक नहीं रहा किन्तु इन चीज़ों के वहाँ के रहने वालों पर पड़ने वाले प्रभाव का भी द्योतक बन गया है।

कहने का तात्पर्य यह है कि जो विषय आज से तीस वर्ष पहिले एक प्रकार से अमानुषिक समझा जाता था वह अब मानुषिक बना दिया गया है। यही नहीं, कुछ लोगों का तो यहाँ तक ख़्याल है कि हमारी सांसारिक उन्नति के लिये यह विषय सब से अधिक उपयोगी और आवश्यक है और उनका यह विचार बहुत अंशों में ठीक भी प्रतीत होता है; क्योंकि, यदि

ध्यानपूर्वक विचार कर देखा जाय तो हमारे सारे सामाजिक जीवन का आधार ही यही एक विषय प्रतीत होता है। जब हम भूगोल की इस परिभाषा (पृथ्वी का वर्णन मानव सम्बन्ध से) पर विचार करने बैठते हैं तो हमें वास्तव में यही प्रगट होता है कि यह विषय वस्तुतः हमारी मानव समाज का आधार है और इससे उदासीन होकर हम कदापि भी अपनी उन्नति नहीं कर सकते।

मनुष्य पृथ्वी का जीव है और भूगोल उसी पृथ्वी का वर्णन ; अतः यह स्पष्ट है कि इन दोनों में परस्पर का सम्बन्ध है। एक का ज्ञान बिना दूसरे के ज्ञान के कभी भी पूर्ण कहा नहीं जा सकता। इसी बात को हम दूसरे शब्दों में यों भी कह सकते हैं कि यदि मनुष्य इस पृथ्वी पर सुख पूर्वक रहना चाहता है, अपने जीवन-संग्राम में विजय प्राप्त करना चाहता है, तो उसे भूगोल का—अपने चारों ओर की परिस्थितियों का—ज्ञान प्राप्त कर लेना आवश्यक ही नहीं, एक प्रकार से अनिवार्य भी है। और इसी के विरुद्ध यदि हम भूगोल का सच्चा ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं तो यह आवश्यक है कि हम उसकी सारी चीज़ों का प्रभाव उस पर रहने वाले मनुष्यों के ऊपर अवश्य देखें। यदि हम ऐसा नहीं करते तो वस्तुतः हम अपने भूगोल के ज्ञान में अधूरे ही रहे जाते हैं।

यहाँ पर हम अपने असली तात्पर्य को और भी स्पष्ट कर देने के लिये दो एक उदाहरण भी दे देना आवश्यक समझते हैं। यह तो प्रायः सभी मान सकते हैं कि मनुष्य पृथ्वी के चाहे जिस भाग में जाकर रहे, उसे खाने और कपड़े की अवश्य आवश्यकता पड़ेगी। वह कितना ही सादा जीवन क्यों न व्यतीत करे किन्तु इन दोनों चीज़ों के बग़ैर तो उसका

जीवन-निर्वाह एक प्रकार से असम्भव ही सा है। अतः जब इन चीज़ों के बिना जीवन चल ही नहीं सकता तो इनके प्राप्त करने का ज्ञान और उसके उपाय भी अवश्य जान लेने चाहियें; क्योंकि संसार के प्रत्येक भाग में प्रत्येक प्रकार की वस्तु नहीं पाई जा सकती और उसके प्राप्त करने के साधन भी देशानुसार भिन्न भिन्न हुआ करते हैं। अब यदि मान लिया जाय कि कोई भारतीय भाग्य-वशात् एशिया के उत्तरीय टुन्ड्रा में जा पहुँचे और उसे वहाँ की प्राकृतिक दशा, जलवायु और पैदावार आदि का कुछ भी ज्ञान न हो तो वहाँ उसकी अकाल मृत्यु के सिवा और क्या परिणाम हो सकता है। यदि हम भौगोलिक अन्वेषण के इतिहास को उठाकर देख जायँ तो हमें यह स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जायगा कि न जाने कितने वीर और साहसी अन्वेषक अमेज़न और कान्गो के जंगलों में वहाँ के जंगली लोगों के द्वारा जीते ही खा लिये गये हैं। न जाने कितने अमर वीर टुन्ड्रा और दक्षिणी ध्रुव के आसपास वाले प्रदेशों की बर्फ़ में सैकड़ों फ़ीट नीचे गड़ कर सर्वदा के लिये सो गये हैं, और न जाने कितनों ने सहारा और आस्ट्रेलिया के रेगिस्तानों में एक एक बूंद पानी के लिये तरस तरस कर हमारे और आपके लिये अपने प्राण अर्पण कर दिये हैं। इन सब दुर्घटनाओं का कारण केवल एक ही था और वह था—उन लोगों का वहाँ की भौगोलिक परिस्थितियों से अपरिचित होना। आज इतने अमर वीरों का बलिदान हो चुकने के बाद हम और आप उन्हीं प्रदेशों में अपने घरों और गाँवों की भाँति रह या पर्यटन कर सकते हैं।

यह तो हुआ एक पुराने ढंग का उदाहरण। अब हमें भी दिखा देना उचित है कि वर्तमान समय में, जब संसार की सामाजिक, राष्ट्रीय तथा

अन्तर्राष्ट्रीय दशा पहिले से कहीं अधिक घनिष्ठ और सुव्यवस्थित है, भूगोल कहाँ तक और किस प्रकार हमारी उन्नति या अवनति का कारण बनाया जा सकता है। विचार कर देखने से यह साफ़ प्रकट हो जायगा कि इस समय संसार की प्रगति के साथ चलने के लिये भूगोल का ज्ञान पहिले से भी कहीं अधिक आवश्यक है। गत यूरोपीय महासमर के कारणों पर विचार करने से यह प्रकट हो सकता है कि इसके लिये और कारणों के अतिरिक्त भौगोलिक परिस्थितियाँ कहीं अधिक उत्तरदायी थीं। इस समय संसार के प्रमुख राष्ट्रों के सामने तीन जटिल प्रश्न हैं; पहिला तो अपने देश की बढ़ती हुई जनसंख्या के लिये स्थान, दूसरा उसके भरण-पोषण के लिये व्यवसाय और समुचित प्रबन्ध तथा तीसरा अपने यहाँ की बची हुई पैदावार के खपाने के लिये बाज़ार या ख़रीदार। इन्हीं तीनों कारणों के कारण देशों में आपस की लागडाट हुई है। क्या इंगलैंड, क्या जर्मनी और क्या जापान, ये सब इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति में अपनी सारी मानसिक तथा आर्थिक शक्ति लगाये दे रहे हैं। इसी का परिणाम था, गत यूरोपीय महासमर; इसी का परिणाम था भारतवर्ष पर अँग्रेज़ों का आधिपत्य और इसी का परिणाम था, चीन और जापान का युद्ध। सम्भवतः ये ही तीन कारण अभी अभी समाप्त होने वाले महासमर के भी कारण बने। इस प्रकार हम यह देख सकते हैं कि संसार में शान्ति स्थापित करने या विद्रोह और अशान्ति खड़ी कर देने का भी कारण भूगोल ही है।

इस विस्तृत उदाहरण को छोड़ कर एक छोटा सा वैयक्तिक उदाहरण भी ले लीजिये। यह तो प्रायः सभी जानते हैं कि अमेरिका, इंगलैंड,

जर्मनी और जापान चारों देश व्यवसाय प्रधान देश हैं। इन चारों देशों में कारीगरी बहुत ही बढ़ी चढ़ी है और यहाँ के लोग अपनी आवश्यकताओं से कहीं अधिक चीज़ें तैयार किया करते हैं। अतः यह निश्चित है कि इन लोगों को अपनी अपनी चीज़ें बेचने के लिये ख़रीदारों की भी आवश्यकता पड़ेगी। अब इन चारों देशों में से किस देश के निवासी अपनी चीज़ों के बेचने में अधिक सफलता प्राप्त कर सकेंगे, यह भूगोल का प्रश्न है और इसे भूगोल वेत्ता ही भली प्रकार समझ सकते हैं। चीज़ों के बेचने में जिन जिन बातों की आवश्यकता पड़ा करती है उनमें से अधिकांश भौगोलिक ही हैं। उदाहरणार्थ माल की कहाँ पर अधिक आवश्यकता है, कहाँ के लोग कैसी और कौन-कौन सी चीज़ें अधिक पसंद किया करते हैं; किसी विशेष स्थान पर कोई माल किस प्रकार कम से कम ख़र्च के साथ पहुँचाया जा सकता है इत्यादि इत्यादि बातें भूगोल के द्वारा ही जानी और समझी जा सकती हैं। जिस देश के निवासी जितना ही अधिक इन भौगोलिक नियमों का अध्ययन और पालन कर सकेंगे वे उतना ही अधिक अपने व्यवसाय में सफल भी होते जायँगे। जो इनके प्रतिकूल चलेगा वह अवश्य हानि उठायेगा। यही कारण है कि इंगलैंड आधे संसार का मालिक होते हुए भी व्यापारिक क्षेत्र में जर्मनी और जापान का मुक़ाबिला नहीं कर सकता, क्योंकि उपरोक्त दोनों के व्यापारी इन नियमों का अधिक अनुसरण किया करते हैं।

यही नहीं, यदि इस विषय पर हम कुछ और अधिक सूक्ष्म दृष्टि से विचार करें तो ज्ञात होगा कि हमारे प्रत्येक दिवस का व्यावहारिक जीवन भी बहुत अंशों में भूगोल पर ही निर्भर रहा करता है। किसी भी मनुष्य

को एक सफल किसान होने के लिये यह अवश्य जान लेना चाहिये कि ऋतुओं का परिवर्तन कब हुआ करता है, कौन सी ऋतु में कौन सी चीज़ें बोई जा सकती हैं, उनके लिये कैसी जलवायु और कैसे धरातल की आवश्यकता हुआ करती है इत्यादि। इसी प्रकार प्रत्येक व्यापारिक मनुष्य के लिये भिन्न भिन्न बाज़ारों में गल्ले के भाव और वहाँ के व्यापारियों की आवश्यकताओं का जानते रहना भी नितान्त आवश्यक है। 'लीडर' और 'स्टेट्समैन' आदि प्रसिद्ध अख़बारों में दिन प्रति दिन 'मीटिर-ओलाजिकल' मौसिमी और व्यापार सम्बन्धी सूचनाएं तथा विवरण निकला करते हैं जिनका यथेष्ट उपयोग करते रहने से हमें खेती पाती और तिजारत आदि में अमूल्य सहायता मिलती जा सकती है आज कल भारतवर्ष, इंगलैंड, जापान और अमेरिका आदि देशों के टैरिफ़ (व्यापारी चुङ्गी) और व्यापार सम्बन्धी जो झगड़े दिन प्रति दिन समाचार पत्रों में निकला करते हैं उनके समझने के लिये भूगोल का ज्ञान बहुत ही आवश्यक है।

इस प्रकार उपरोक्त उदाहरणों के द्वारा हमने यह स्पष्ट रूप से सिद्ध कर दिखाया है कि मनुष्य जीवन से भूगोल का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है और जो मनुष्य या राष्ट्र अपने जीवन संग्राम से सफलता प्राप्त करना चाहता है उसे भूगोल के विषय का यथेष्ट ज्ञान प्राप्त कर लेना नितान्त आवश्यक है। नोट—अभी समाप्त हुये चीन-जापान संघर्ष और द्वितीय यूरोपीय महासमर के कारण भी मुख्यतः—भौगोलिक ही हैं।

दूसरा अध्याय

मनुष्य जीवन पर कुछ विशेष भौगोलिक परिस्थितियों का प्रभाव

मनुष्य अपनी परिस्थितियों का जीव है। वह चाहे या न चाहे, किन्तु जैसी परिस्थिति में जा पड़ता है उसी के अनुसार अपने जीवन के ढाँचे को भी ढाल लेता है या यों कहिये कि उसे ढाल लेना ही पड़ा करता है। यदि वह ऐसा न करे तो उसके जीवन की गाड़ी का चलना ही एक प्रकार से असम्भव हो जाय। ये परिस्थितियाँ दो प्रकार की हुआ करती हैं। पहिली तो भौगोलिक और दूसरी सामाजिक। भौगोलिक परिस्थितियाँ बहुत अंशों में स्वाभाविक हुआ करती हैं इसलिये अधिकांश में वे उसकी शक्ति के बाहर भी हुआ करती हैं। यद्यपि अपनी ईश्वरदत्त विचित्र शक्ति के कारण वह उन परिस्थितियों में, अपनी सुविधा के लिये बहुत कुछ परिवर्तन करने का प्रयत्न किया करता है और कभी कभी अपने इस प्रयास में सफल भी हो जाया करता है तथापि अधिकांश में उसे उन शक्तियों के सामने अपना सिर झुकाना ही पड़ा करता है। टुन्ड्रा, सहारा और कान्गो के वनों में संसार की सभ्य जातियों ने अपनी सारी शक्ति लगाने पर भी यथेष्ट परिवर्तन नहीं कर पाया। टुन्ड्रा की बर्फ़, सहारा की बालू और कान्गो की अत्यधिक नमी आज भी ज्यों की त्यों बनी हुई है। सामाजिक परिस्थितियाँ तो उसकी ही बनाई

हुई हैं इस लिये इनके तोड़ने या इनमें परिवर्तन करने के लिये उसे उतनी कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ा करता। हाँ, आत्मिक शक्ति की आवश्यकता अवश्य हुआ करती है।

यहाँ पर हम मनुष्य की भौगोलिक परिस्थितियों का ही एक विशद विवेचन करना चाहते हैं। ये परिस्थितियाँ मुख्यतया किसी देश या स्थान की प्राकृतिक दशा, जलवायु और पैदावार से सम्बन्ध रक्खा करती हैं। इन्हीं के कारण आज हमें संसार के भिन्न भिन्न स्थानों में भिन्न भिन्न प्रकार के मनुष्य देखने में आया करते हैं जो अपने खान-पान, रहन-सहन और आचार-विचार में एक दूसरे से बिलकुल भिन्न पाये जाते हैं। यही नहीं, इन्हीं परिस्थितियों के कारण एक स्थान के निवासी दूसरे स्थान में जाकर इतने परिवर्तित हो जाया करते हैं कि उनका पहिचानना भी कठिन हो जाया करता है। भला इतिहास का कौन सा विद्यार्थी यह नहीं जानता कि भारतवासी, ईरान-निवासी और यूरोप के रहने वाले एक ही पूर्वजों के वंशज हैं, किन्तु भौगोलिक परिस्थितयों ने वह परिवर्तन कर दिखाया कि आज यदि एक गोरे हैं तो दूसरे काले, एक शासक हैं तो दूसरे शासित, एक धनवान हैं तो दूसरे धनहीन।

स्थिति और प्राकृतिक दशा—भूगोल की उपरोक्त परिस्थितियों में प्राकृतिक दशा का स्थान बहुत ऊँचा है। इसे यदि हम मानव जीवन के नाट्य का स्टेज कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी; क्योंकि वास्तव में आदमी की शारीरिक बनावट पर इसका बहुत ही अधिक प्रभाव पड़ा करता है। यदि कोई देश काङ्गो नदी का सा जंगल है तो वहाँ हमें पिगमी (बौने)

लोग ही मिल सकते हैं क्योंकि उतने घने जंगलों में ऐसे ही लोग रह भी सकते हैं। भारतवर्ष के उत्तरी भाग को ही लीजिये. नैपाल के रहने वाले गोरखे कितने नाटे मगर कैसे हट्टे-कट्टे और मज़बूत पाये जाते हैं। इसके विरुद्ध जैसे जैसे हम दक्षिण की ओर मैदान में प्रवेश करते हैं वैसे ही वैसे लोग क़द में कुछ बड़े किन्तु सुस्त और ढीले-ढाले होते जाते हैं। मंसूरी की पहाड़ियों पर, जहाँ इन लोगों के लिये अपनी पीठ पर दो दो और तीन तीन मन का बोझ लेकर खटाखट जाना एक साधारण सी बात है वहीं हमारे मैदानी भाइयों का दम दस क़दम चढ़ने में भी फूलने लग जाता है। यही नहीं, प्राकृतिक दशा का बहुत कुछ प्रभाव लोगों के रहन-सहन, खान-पान और आचार-विचार में भी पड़ा करता है। जापान की प्राकृतिक दशा ही ऐसी है कि वहाँ लोग लकड़ी और कपड़े या काग़ज़ों के मकान बना के रहा करें क्योंकि जिस देश में एक ही दिन और रात में लगभग २५ या ७६ भूडोल आवें वहाँ ईंटों और पत्थरों के मकान बना कर रहना केवल मृत्यु के गाल में ही रहना होगा। काम्गो और बर्मा के जंगलों में लकड़ी और घास फूस के झोपड़े ही हमारे तिमंजले मकानों का काम दे सकते हैं। सहारा के रेगिस्तान में रहने वाले यदि खेमों में न रहें तो भला वे बेचारे अपने मकानों के ईंट और पत्थर कहाँ से मँगावें;

मनुष्यों का खान-पान भी बहुत अंशों में प्राकृतिक दशा के ऊपर ही निर्भर रहा करता है। एशिया के उत्तरी टन्ड्रा में रहने वाले यदि सील मछली और बारासिंगों का गोश्त न खाया करें तो हमारे यहाँ के गेहूँ और चावल कहाँ से लावें। आसाम के उत्तर में रहने वाले

कितना भी चाहें कि हम मैदान वालों की भाँति अरहर और चना पैदा करें किन्तु वहाँ की पहाड़ियाँ तो चाय के लिये ही सबसे अधिक उपयुक्त हैं। इस प्रकार हमने यह भी देख लिया कि प्राकृतिक दशा का बहुत कुछ प्रभाव वहाँ के रहने वालों के उद्यमों पर भी पड़ा करता है। क्या कारण है कि यूनान के लोग संसार के सब से प्रथम मल्लाह थे। अथवा वर्तमान समय में भी नार्वे और स्वीडन के लोग सबसे अच्छे मछुवाहे हुआ करते हैं। इसका कारण यही है कि ये देश समुद्र से घिरे हुये हैं और उन्हें अपने जीवन-निर्वाह के लिये ये ही काम सबसे प्रथम करने पड़ा करते हैं। साधारणतया यह तो हम अपने ही यहाँ देख सकते हैं कि नदियों के किनारे रहने वाले लोग औरों की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छे तैराक हुआ करते हैं।

लोगों के आचार-विचार पर भी प्राकृतिक दशा का गहरा प्रभाव पड़ा करता है। भारतवर्ष के इतिहास से यह साफ़ ज़ाहिर है कि उत्तर-पश्चिम की ओर से इतने आक्रमण होने का मुख्य कारण यहाँ की प्राकृतिक दशा ही है, और जितनी भी प्रमुख लड़ाइयाँ हुईं वे सब पानीपत के मैदान पर ही लड़ी गईं। कारण इसका यही है कि दोनों ओर की सेनाओं के मिलने के लिए वही एक उपयुक्त मैदान था। यही नहीं, आर्यों का प्रचार कई शताब्दियों तक विन्ध्याचल के उत्तर, उत्तरी भारतवर्ष में ही नियमित रहा, बहुत दिनों तक दक्षिणी भारतवर्ष पर उनका बहुत कम प्रभाव पड़ सका। इसका कारण केवल यहाँ की प्राकृतिक दशा ही थी जिनके कारण उनका विस्तार दक्षिण की ओर यथेष्ट रूप में न बढ़ सका। अब तक यूनान और मध्य-भारत में छोटी-

छोटी सैकड़ों रियासतें पाई जाती हैं जिनके आचार-विचार और भाषा तथा भावादि एक दूसरे से बहुत ही भिन्न पाये जाते हैं। इसका भी कारण इन देशों की प्राकृतिक दशा ही है क्योंकि यहाँ की सैकड़ों छोटी मोटी पहाड़ियाँ यहाँ के निवासियों के पारस्परिक समागम में बड़ी बाधायें डाला करती हैं. जिसके कारण उनके अन्दर एक दूसरे से भिन्न रहने की ही प्रवृत्ति बहुत प्रबल हो जाया करती है। उनमें वीरता और स्वतंत्रता के भाव तो अवश्य आ जाया करते हैं किन्तु ये बहुत ही संकीर्ण हुआ करते हैं। जहाँ हिमालय के दक्षिणी मैदान, रेलों और सड़कों से बिछे हुए हैं, अफ़गानिस्तान और तिब्बत में इन चीज़ों का अभी श्रीगणेश ही किया जा रहा है। यह सब वहाँ की प्राकृतिक दशा का ही एक प्रभाव है जिसके कारण इन देशों के निवासियों की आर्थिक और सामाजिक दशा में भी बहुत कुछ अन्तर पड़ जाया करता है। आज साइबीरिया के टुन्ड्रा और टैगा के निवासियों तथा ग्रीनलैंड आदि के एस्कीमोज़ को उनकी उसी प्रारम्भिक दशा में बनाये रखने का सारा दोष उनके आस पास की भौगोलिक परिस्थितियों को ही है। यदि आज वहाँ भी रेल, तार और अन्य आधुनिक सुविधाओं का प्रचार भली प्रकार किया जा सकता तो वे लोग भी संसार के अन्य लोगों के समान सभ्य और सुशिक्षित बनाये जा सकते।

जलवायु—दूसरी वस्तु, जिसका मनुष्य जीवन पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा करता है वह है—किसी स्थान की जलवायु। वास्तव में किसी स्थान की प्रकृतिक दशा और वहाँ की जलवायु ही वहाँ के रहने वालों के जीवनाधार हैं, क्योंकि इन्हीं दोनों चीज़ों के ऊपर उनका खाना-पान

और रहन-सहन निर्भर हुआ करता है। प्राकृतिक दशा और जलवायु में भी बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है; क्योंकि किसी स्थान की जलवायु का ९० प्रतिशत वहाँ की प्राकृतिक दशा पर ही आश्रित रहा करता है। जो स्थान पहाड़ी हैं वे विशेषतया ठंढे ही पाये जायँगे जैसे अफगानिस्तान और स्विटज़रलैंड इत्यादि। जो स्थान समुद्र से घिरे होंगे, उनकी जलवायु आमतौर से मातदिल ही हुआ करेगी; जैसे जापान और इंगलैंड आदि। जो स्थान पहाड़ों की ऊँचाई पर स्थित होंगे वे मैदानों की अपेक्षा अधिक ठंढे रहा करेंगे जैसे शिमला और दिल्ली या नैनीताल और लखनऊ। यह भी एक प्रसिद्ध नियम है कि जो स्थान विषुवत् रेखा के जितने ही निकट होंगे वे उतने ही गरम होंगे और जितने ही वे उससे दूर होंगे उतने ही ठंढे पाये जायँगे; यद्यपि इस नियम पर समुद्र की निकटता और उस स्थान की ऊँचाई का भी प्रभाव पड़ा करता है।

यही नहीं, जलवायु के साथ जल-वृष्टि का भी बड़ा गहरा सम्बन्ध है। मैदान में होते हुए यदि कोई स्थान भाफ़ भरी हुई हवाओं के रास्ते पर पड़ेगा तो उसकी आबोहवा गर्म और नर्म हो जायगी। किन्तु इसी के साथ ही साथ पहाड़ों के रुख़ का भी ध्यान रखना बहुत आवश्यक है। यद्यपि राजपूताना और उत्तर-पश्चिमी संयुक्त देश एक ही हवाओं के रास्ते में पाये जाते हैं किन्तु दोनों की जलवायु एक दूसरे से बिलकुल भिन्न पाई जाती है। यही बात पश्चिम घाट में पूना और महाबलेश्वर के साथ भी देखी जाती है।

इस प्रकार जलवायु का कुछ सम्बन्ध प्राकृतिक दशा के साथ दिखा देने के पश्चात् अब हम उसके सम्बन्धों को मानव-जीवन के साथ विचार

ींगे। मोटे तौर से किसी स्थान की जलवायु का प्रभाव वहाँ के रहने वालों के रंग-रूप, उनके खान-पान और उनकी रहन-सहन पर अधिक पड़ा करता है। रंग-रूप के विचार से हम यह कह सकते हैं कि जो मनुष्य जितनी ही गरम आबोहवा में रहेगा वह उतना ही काला भी पाया जायगा। गरम और नम आबोहवा में रहने वाले लोग विशेषतया काले, नाटे और कुछ सुस्त पाये जाते हैं जैसे भारतवर्ष के कोल और गोंड तथा अफ्रीका के हबशी लोग। इसके विपरीत ठंढी आबोहवा में रहने वाले गोरे, मजबूत और फुर्तीले हुआ करते हैं जैसे काश्मीरी, अफ़गानी और यूरोप निवासी। गरम और नम आबोहवा में रहने वाले लोग कुछ आलसी इसलिये हो जाया करते हैं कि उन्हें अपने जीवन निर्वाह की सब चीज़ें या तो प्रकृति से ही मिल जाया करती हैं या थोड़े परिश्रम से ही प्राप्त की जा सकती हैं; जैसे अफ़्रीका के जंगलों में रहने वालों की सारी आवश्यकतायें—जो आधुनिक सभ्य और समुन्नत देश में रहने वालों की आवश्यकताओं के सामने बिलकुल ही सरल और सूक्ष्म हुआ करती हैं—वहाँ के जंगलों से ही पूर्ण हो जाया करती हैं और भारतवर्ष में गंगा और जमुना के मैदान में ये चीज़ें थोड़े ही परिश्रम के बाद प्राप्त की जा सकती हैं। इसके विरुद्ध ठंढे प्रदेशों में रहने वालों को अपने जीवन निर्वाह के लिये बहुत अधिक मिहनत करनी पड़ा करती है जैसे अफ़ग़ानिस्तान में। इसका स्वाभाविक फल यह हुआ करता है कि पहिले देश वाले जीवन को एक साधारण वस्तु जानकर कुछ सुस्त से हो जाया करते हैं और संसार से एक प्रकार उदासीन से रहा करते हैं। भारतवर्ष के आध्यात्मिक ज्ञान की वृद्धि और रूढ़िवाद का यह भी एक मुख्य

कारण कहा जा सकता है। इसके विपरीत ठंडे प्रदेश वाले जीवन की साधारण आवश्यकताओं को पूर्ण करने में इतने दत्त-चित्त हुआ करते हैं कि उनको स्वाभाविक तौर से चुस्त और चालाक होना पड़ा करता है। चूँकि वे लोग इन चीज़ों की प्राप्ति के लिये नित्य नये नये उपाय सोचा करते हैं इसलिये कला-कौशल की भी अच्छी वृद्धि होती जाती है। इसके साथ ही साथ कठिनाई से प्राप्त की जाने वाली चीज़ों की ओर उनका प्रेम भी अधिक होता है। यही कारण है कि पश्चिमीय देशों के निवासी अधिकांश में सांसारिक समृद्धि को ही सर्वस्व मानने वाले पाये जाते हैं। इसके साथ ही साथ एक कारण यह भी है कि गरम देशों की अत्यधिक गर्मी भी लोगों को उतना मिहनती और काम-काजी नहीं होने देती जितना कि ठंडे प्रदेशों की सर्दी, क्योंकि स्वाभाविक तौर से गर्मी मिहनत की बाधक और सर्दी सहायक हुआ करती है।

मनुष्यों के रहन-सहन पर भी जलवायु का बड़ा प्रभाव पड़ा करता है। भारतवर्ष में सूती कपड़ों का जितना प्रयोग है उतना यूरोपीय देशों में नहीं। और यदि हम अफ्रीका के हब्शियों को देखें तो वे प्राय: नंगे ही रहा करते हैं। इसके विपरीत ज्यों ज्यों हम उत्तरी या दक्षिणी ध्रुवों की ओर बढ़ते जाते हैं—विषुवत् रेखा से दूर ठंडे प्रदेशों में चलते जाते हैं—वैसे ही वैसे गरम कपड़ों या बालों का प्रयोग अधिक बढ़ता जाता है। इसका कारण यही है कि गर्म आबोहवा वाले देशों में हमें अपने शरीर की रक्षा के लिये उतने कपड़ों की आवश्यकता नहीं पड़ा करती जितनी कि सर्द मुल्कों में। टुन्ड्रा के लोग अपने सारे शरीर को जानवरों की खाल या उनके गरम बालों से ही ढके रहा करते हैं

क्योंकि यदि वे ऐसा न करें तो उनका जीना ही असम्भव हो जाय।

मुसलमानों में परदे की प्रथा के मुख्य कारण सामाजिक नहीं, बल्कि सहारा और अरब के रेगिस्तानी बगूले ही कहे जा सकते हैं क्योंकि वहाँ के रहने वाले यदि अपने मुँह को कपड़ों से ढाँप कर न रक्खें तो मारे रेत के अंधे हो जायँ। मनुष्यों का खान-पान भी बहुत अंशों में जलवायु के ही ऊपर निर्भर रहा करता है। बंगाल के लोग चावल अधिक खाते हैं। पंजाब में गेहूँ और सरहद्दी प्रान्त में फलों और गोश्त का अधिक प्रयोग पाया जाता है। यह सब वहाँ की पैदावार का कारण है जो बहुत अंशों में जल-वायु के ही ऊपर निर्भर रहा करती है। गर्म और नम प्रदेशों में चावल, नारियल और केले आदि ही अधिक पैदा किये जा सकते हैं इसलिये वहाँ के लोगों के यही मुख्य खाद्य पदार्थ भी पाये जायँगे। इसके विपरीत ठंडे देशों में फल और गेहूँ आदि अधिक संख्या में पैदा किये जाते हैं इसलिये ये ही मुख्य खाद्य-पदार्थ भी हुआ करते हैं। चूँकि सहारा में खजूरों की ही पैदावार अधिक हुआ करती है इसलिये वहाँ की मुख्य चीज़ यही मानी जाती है। टुन्ड्रा में इतनी सर्दी पड़ा करती है कि वहाँ ज़मीन सैकड़ों फ़ुट बर्फ़ से ढकी रहा करती है इसलिये वहाँ के लोग सील मछली और बारासिंगों के गोश्त को ही हमारा हलुआ और माल-पुआ समझा करते हैं। विचार कर देखने से यह ज्ञात हो जायगा कि प्रत्येक किस्म की पैदावार के लिये एक ख़ास प्रकार की ज़मीन और ख़ास किस्म की आबोहवा की ज़रूरत पड़ा करती है। इसलिये मनुष्य को अपने जीवन-निर्वाह के लिये इनके पारस्परिक

सम्बन्ध का ज्ञान बहुत ही आवश्यक वस्तु है। आसाम की चाय राजपूताने के रेगिस्तान में नहीं पैदा की जा सकती और न पंजाब का गेहूँ ब्रह्मा में ही बोया जा सकता। यदि कोई मनुष्य इस भौगोलिक नियमों की अवहेलना करते हुए जीवन में सफलता प्राप्त करना चाहता है तो यह उसके लिये असम्भव ही है।

पैदावार—प्राकृतिक दशा और जल-वायु के अतिरिक्त पैदावार भी भिन्न भिन्न देश-निवासियों के बीच पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करने में बड़ा भाग लिया करती है। हमारी आवश्यकतायें इतनी विस्तृत और विभिन्न हैं कि हम अपने और भाइयों से बिलकुल उदास होकर अपना काम चला नहीं सकते। वर्तमान समय में विज्ञान की उन्नति के साथ ही साथ हमारी आवश्यकतायें भी बढ़ती जाती हैं इसलिए अब हम और अधिक एक दूसरे पर निर्भर होते जाते हैं। आज हमें मोटरों के लिये अमेरिका का, लोहे की चीजों के लिये इंग्लैंड का और अनेकों सुख-सामग्रियों के लिये यूरोप के अन्य देशों का मुँह ताकना पड़ा करता है। इसी प्रकार बहुत सी उद्भिज पैदावार के लिये वे लोग भी हमारे और अन्य देशों के ऊपर निर्भर रहा करते हैं। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ करता है कि हमारा पारस्परिक संबन्ध दिन प्रतिदिन और अधिक बढ़ता जाता है जिससे दोनों के भावों और विचारों में भी परिवर्तन तथा वृद्धि आती जाती है। इस प्रकार यह साफ़ ज़ाहिर है कि भूगोल हमारे साधारण जीवन-निर्वाह का आधार होते हुए हमारी ज्ञान वृद्धि का भी एक सहायक विषय है। इसका प्रभाव प्रत्येक मनुष्य के जीवन पर किसी न किसी रूप में अवश्य पड़ा करता है अतः इस विषय

की मानव उपयोगिता और विषयों से किसी भी प्रकार कम नहीं कही जा सकती ।

अब अगले अध्यायों में हम इस बात के दिखाने का प्रयत्न करेंगे कि संसार के भिन्न भिन्न भागों में भिन्न भिन्न परिस्थितियों के बीच हमारे दूसरे भाई किस प्रकार अपना जीवन बिताया करते हैं । इसके द्वारा हमारे हृदयों में अपने अन्य भाइयों के प्रति सहानुभूति भी बढ़ेगी और हम अपनी ज्ञान वृद्धि करते हुए अपने जीवन संग्राम के लिये अधिक सुसज्जित भी होते जायँगे ।

—:o:—

तीसरा अध्याय

रेगिस्तान में रहने वालों का जीवन

(अ) टन्ड्रा के निवासी

रेगिस्तानों का अर्थ—इसके पहिले कि हम टन्ड्रा के रहने वालों के विषय में कुछ लिखें, हमें यह भी पता देना आवश्यक है कि रेगिस्तान क्या चीज़ हैं और वे कैसे बन जाया करते हैं। साधारणतया लोग गरम, उजाड़ और रेतीले मैदानों को ही रेगिस्तान कहा करते हैं। किन्तु यह बहुत कम लोग जान पाते हैं कि संसार में बर्फ़ीले रेगिस्तान (मरुस्थल) भी हुआ करते हैं। वास्तव में भौगोलिक परिभाषा के अनुसार रेगिस्तान, मरुभूमि अथवा उजाड़ खंड पृथ्वी के वे मैदानी भाग कहे जाते हैं जहाँ (१) पैदावार बहुत कम या बिल्कुल ही न हुआ करती हो (२) पेड़-पौधे, जीव-जन्तु और मनुष्य बहुत ही कम या बिल्कुल ही न पाये जाते हों।

रेगिस्तान कैसे बन जाया करते हैं—अब यदि हम रेगिस्तान की उपरोक्त दोनों शर्तों पर विचार करें तो हमें यह साफ़ ज़ाहिर होगा कि दूसरी शर्त पहिली के ही ऊपर निर्भर है। क्योंकि मनुष्यों और जीव-जन्तुओं के रहने के लिये और चीज़ों की अपेक्षा उनके खाने के लिये पैदावार का होना तो बहुत ही आवश्यक है। अब हमें यह देखना है कि पैदावार के लिये किन किन बातों की आवश्यकता हुआ करती है। भौगोलिक सिद्धान्तों-

के अनुसार अच्छी पैदावार के लिये आवश्यकता है—(१) उपजाऊ ज़मीन (२) अच्छी जल-वृष्टि और (३) अच्छी जल-वायु। अब यदि संसार के किसी भी भाग में इन तीनों अथवा इन तीनों में से किसी भी एक चीज़ की कमी पाई जायगी तो वह स्थान अवश्य रेगिस्तान (मरुभूमि या उजाड़ खंड) हो जायेगा।

अब जब हम इन नियमों का उत्तरी या दक्षिणी ध्रुव के आसपास वाले प्रदेशों पर प्रयोग करते हैं तो हमें मालूम होता है कि संसार के इन भागों में अच्छी और उपजाऊ ज़मीन होते हुए भी दूसरी दो चीज़ों की बहुत सख़्त कमी पाई जाती है। न तो इन भागों में अच्छी जल-वृष्टि ही हुआ करती है और न यहाँ की आबोहवा ही इतनी अच्छी है कि और देशों की भाँति पैदावार हो सके। इसका स्वाभाविक परिणाम यही हुआ करता है कि यहाँ पर मनुष्यों और जीव जन्तुओं की बहुत कमी पाई जाती है जिनके कारण इन प्रदेशों को हम उजाड़ प्रदेश कहा करते हैं।

स्थिति और विस्तार के अनुसार इस भाग में एशिया, यूरोप और उत्तरी अमेरिका के सब से उत्तरी भाग, दक्षिणी अमेरिका का सबसे दक्षिणी भाग तथा दक्षिणी ध्रुव के आस पास वाला दक्षिणी महाद्वीप शामिल किया जा सकता है। अलग अलग नाम जान लेने के लिये एशिया के उत्तरी भाग (टन्ड्रा), यूरोप के उत्तरी भाग (लैपलैंड, फिन-लैंड, और आइसलैंड), उत्तरी अमेरिका के उत्तरी भाग (लेब्राडर, एलास्का, ग्रीनलैंड और इनके आस पास के छोटे मोटे द्वीप समूह), दक्षिणी अमेरिका के दक्षिणी भाग (पैटागोनिया, टेराडेलफ़्यूगो और

इनके दक्षिण के छोटे मोटे द्वीप समूह) तथा दक्षिणी ध्रुव के आसपास वाला अन्टार्कटिक महाद्वीप हैं ।

प्राकृतिक दशा—प्राकृतिक दशा के विचार से ये सभी प्रदेश थोड़े बहुत अन्तर के साथ प्रायः एक से ही हैं । ग्रीन-लैंड, आन्टार्कटिक महाद्वीप और लेब्राडार के अधिकांश भाग ८००० से १०००० फ़ीट ऊँचे पठार हैं जिनके चारों ओर ऊँची ऊँची पहाड़ी श्रेणियाँ भी पाई जाती हैं । कहीं कहीं तो ये पहाड़ी श्रेणियाँ समुद्र के किनारे तक भी पहुँच गई हैं । इनके बीच-बीच में झीलों और दलदलों की भी काफ़ी भरमार है । टन्ड्रा और उत्तरी अमेरिका में कहीं कहीं एक या दो पहाड़ी श्रेणियों और पठारों के होते हुए भी अधिकांश भाग नीचे मैदान और दलदल हैं । इन सब स्थानों की मुख्य विशेषता यह है कि ये सभी प्रदेश अटल बर्फ़ से ढके हुए हैं जिसकी गहराई कहीं कहीं तो तीन या चार सौ फ़ीट तक भी पहुँच जाती है । यहाँ की नदियाँ और झीलें तथा आस पास के सभी समुद्र भी अटूट बर्फ़ से ढके पाये जाते हैं । यह बर्फ़ बहुत धीरे-धीरे समुद्र की ओर सरकती जाती है और स्थान स्थान पर भारी और भयंकर अवालांश भी बनाती जाती है ।

जलवायु—आबोहवा के विचार से ये प्रदेश संसार के सब से ठंडे भाग माने जाते हैं । अन्टार्कटिक महाद्वीप के कुछ भीतरी भागों में तो गर्मी के दिनों में भी ३०° या ४०° से अधिक गर्मी नहीं पाई जाती । इस अभिप्राय से एशिया के उत्तरी भाग अवश्य कुछ अच्छे माने जा सकते हैं क्योंकि गर्मी के दिनों में यहाँ का ताप ५०० तक भी पहुँच आया करता है

गर्मी का मौसम इन प्रदेशों में अपनी एक विशेष उपयोगिता रक्खा करता है। कारण इसका यह है कि इन्हीं दिनों में यहाँ की बर्फ़ कुछ पिघल जाया करती है और स्थान स्थान पर दलदल, झीलें और पानी के कुछ गढ्ढे बना दिया करती है। नदियों के मुहाने भी—जो साल के शेष महीनों में बर्फ़ के कारण बन्द पड़े रहते हैं—कुछ खुल जाया करते हैं जिससे आमदरफ़्त में कुछ सहायता मिल जाया करती है। इन्हीं दिनों में गढ्डों और दलदलों के आसपास यहाँ के थोड़े बहुत पेड़ पौधे भी उगा और फूला करते हैं, क्योंकि आबोहवा के अत्यन्त ठंडी होने के कारण जल वृष्टि तो एक प्रकार से हुआ ही नहीं करती। पानी की सारी भाप जो कुछ भी हवा के अन्दर रहा करती है अत्यन्त सर्दी के कारण बर्फ़ में परिवर्तित हो जाया करती है। गर्मी के ही दिन यहाँ की प्राकृतिक सुन्दरता को मनोहर और आकर्षक बना दिया करते हैं।

पैदावार—पैदावार के विचार से काई और कुछ झड़बेरियों को छोड़ कर इन प्रदेशों में और कुछ भी नहीं पैदा किया जा सकता। क्योंकि कड़ी से कड़ी गर्मी के दिनों में भी बर्फ़ दो चार इंचों से अधिक नहीं पिघल पाती। अतः सिवाय उन पौधों के जिनकी जड़ें केवल थोड़ी ही दूर तक ज़मीन के अन्दर जाया करती हैं और कोई भी पौधे नहीं उगाये जा सकते। नदियों के किनारे और उनके आस-पास जहाँ की ज़मीन कुछ अधिक मिट्टीदार या बलुहाई पाई जाती है, कुछ बड़े बड़े पौधे भी उगा करते हैं। इन्हीं स्थानों में यहाँ वहाँ कुछ कुंज इत्यादि भी पाये जाते हैं, जो यहाँ के उजाड़पन को थोड़ा

बहुत कम कर दिया करते हैं। झीलों और दलदलों में कई प्रकार के पौधे उगा करते हैं जिनके बीच बीच में सारसों, बगुलों और पनडुब्बियों आदि की भी छटा निराली ही हुआ करती है। शेष दूसरे स्थानों में वृक्षों का स्थान झाड़ियों ने ही ले रक्खा है। यहाँ के वृक्षों में सब से अधिक प्रसिद्ध और आवश्यक बर्च माना जाता है जिनकी अधिक से अधिक ऊँचाई केवल तीन या चार फीट ही हुआ करती है।

टुन्ड्रा की सब से प्रसिद्ध पैदावार वहाँ की काई है। यह काई कई प्रकार की हुआ करती है, जिसमें सब से अधिक उपयोगी बारासिंगों के खाने वाली मानी जाती है। गर्मी के दिनों में जब इसमें फूल आया करते हैं यहाँ की शोभा हमारे यहाँ के बसन्त से किसी प्रकार भी कम नहीं पाई जाती, क्योंकि संसार में शायद ऐसा कोई भी रंग न होगा जिस रंग के फूल इस घास में न लगा करते हों। साधारणतया टुन्ड्रा में केवल दो ही ऋतुयें हुआ करती हैं। एक तो लम्बी, सूनसान और जीवों को उकता देने वाली सर्दी की ऋतु, जिनमें सभी पेड़-पौधे कई फ़ीट बर्फ़ के नीचे दब जाया करते हैं और दूसरी थोड़े दिन की गर्मी जो अपने साथ नाना प्रकार के फूल पौधे और बेशुमार मच्छड़ और चिड़ियाँ लाया करती है।

जीव-जन्तु—उपरोक्त बातों से यह भली प्रकार जाना जा सकता है कि इन प्रदेशों में जीव-जन्तु बहुत ही कम पाये जायँगे। यहाँ का सब से प्रसिद्ध जानवर 'रेन्डियर' एक प्रकार का बारासिंगा है, जिसे हम आर्कटिक प्रदेश का ऊँट भी कह सकते हैं। यही एक ऐसा जानवर है, जिसके शरीर का प्रत्येक भाग यहाँ के निवासियों के काम में आया

करता है। इसमें सब से बड़ी विशेषता यह है कि यह सहारा के ऊँट की भाँति यहाँ की गहिरी बर्फ़ पर भी बड़ी आसानी के साथ आ जा सकता है। यह अपना जीवन यहाँ पैदा होने वाली काई पर ही बिताया करता है।



एस्कीमो और रेन्डियर

उत्तरी अमेरिका के ठंडे प्रदेशों में रेन्डियर की जगह उसी से कुछ मिलता जुलता 'कैरिबाऊ' (पहाड़ी भेड़) जानवर पाया जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ सफेद भालू, कुत्ते और कुछ लोमड़ियाँ भी पाई जाती हैं। नदियों में मछलियाँ भी रहा करती हैं। इनके अतिरिक्त किनारे के समुद्रों में ह्वेल और सील मछलियाँ अधिक पाई जाती हैं।

निवासी—हमारे विचार से टुन्ड्रू की सब से प्रसिद्ध और आवश्यक

बात है, यहाँ के रहने वालों का जीवन। संसार के इस भाग में भी कई जाति के लोग पाये जाते हैं। जो लोग समुद्र के नज़दीक रहा करते हैं वे क़द में अपने दक्षिणी भाइयों की अपेक्षा कुछ नाटे हुआ करते हैं। यहाँ के निवासियों में सबसे प्रसिद्ध एस्कीमो लोग माने जाते हैं, जो नई और पुरानी दोनों दुनिया में पाये जाते हैं। ये लोग विशेषतया समुद्र के किनारे ही रहा करते हैं और उसी से अपना जीवन निर्वाह किया करते हैं। अमेरिका के टुन्ड्रा में थोड़े बहुत 'रेडइन्डियन्स' भी पाये जाते हैं। यूरेशिया के टुन्ड्रा में (नार्वे और रूस वाले प्रान्त में) 'लैप्स, और 'फिन्स' लोग रहा करते हैं। यूराल के आसपास कुछ 'उस्त्याक' लोग पाये जाते हैं इनके अतिरिक्त साइबीरिया में 'यूराक' 'समोयद' 'याकूत' और 'तुन्गूज़, जाति के भी लोग रहा करते हैं। यद्यपि इनकी प्रारंभिक जाति श्रेणी का निर्णय अभी तक भी नहीं किया जा सका—यद्यपि अधिकतर लोग इन्हें मंगोल जाति के वंशज माना करते हैं—तथापि एक सी ही भौगोलिक परिस्थितियों में रहने के कारण इनके जीवन में बहुत कुछ समानता सी पाई जाती है।

टुन्ड्रा अपने निवासियों के लिये बहुत थोड़ी ही चीज़ें प्रदान कर सकता है। अत्यन्त सर्दी और बर्फ़ के कारण खेती तो एक प्रकार से असम्भव सी ही माननी चाहिये और इन्हीं के कारण कोई दूसरे प्रकार के भी फल फूल या पौधे नहीं उगाये जा सकते। जो कुछ थोड़े बहुत हुआ भी करते हैं वे साल के आठ या नव महीनों तक तो बर्फ़ के नीचे ही गड़े रहा करते हैं। अतः यहाँ के लोगों का मुख्य उद्यम रेन्डियरों का पालना ही माना जाता है। अधिकांश लोग अपने जानवरों के लिये

हुए इधर से उधर घूमा करते हैं। जिसके पास जितने ही अधिक रेन्डियर पाये जाते हैं वह उतना ही धनाढ्य भी माना जाता है। वास्तव में यह जानवर यहाँ के लोगों का सब से बड़ा जीवनाधार है भी।

गर्मी के आते ही नदियाँ और झीलें बर्फ़ से कुछ खुल जाया करती हैं, तथा जमीन के ऊपर की भी बर्फ़ बहुत कुछ पिघल जाया करती है। ये ही दिन यहाँ के लोगों के लिये सब से अधिक काम काज के दिन माने जाते हैं, क्योंकि इन्हीं दिनों में लोग अपने साल भर के खाने का सामान इकट्ठा किया करते हैं। कई प्रकार की बेरियाँ इकट्ठी करके सुखाई जाती हैं। नदियों और झीलों आदि से मछलियाँ मार कर लाई जाती हैं और कुछ लोग यहाँ पाये जाने वाले छोटे मोटे दूसरे जानवरों का भी शिकार किया करते हैं। इन सब चीज़ों को सुखा सुखा कर जाड़े के लिये रखते जाना औरतों का ख़ास काम हुआ करता है। जाड़े के दिनों का मुख्य उद्यम तो दक्खिणी जंगल के किनारे पर रहने वाले बालदार जानवरों का पकड़ना या मारना ही हुआ करता है।

इन सब उद्यमों का मुख्य परिणाम यही पाया जाता है कि यहाँ के लोग अपना जीवन बनजारों की भाँति घूम फिर कर ही बिताया करते हैं। प्रकृति देवी ने तो इन बेचारों को एक स्थान पर जम कर रहने का मौका ही नहीं दिया इनको अपने और अपने जानवरों के खाने की तलाश में विवश होकर इधर उधर घूमना ही पड़ा करता है। यदि वे ऐसा न करें तो इनका जीवन ही दूभर हो जाय, क्योंकि ये लोग किसी भी एक स्थान पर बहुत दिनों तक जम कर रह और खा पी नहीं सकते। इनके लिये तो जीवन निर्वाह नित्य कमाने और

नित्य खाने की (रोज़ कुआँ खोदने और रोज़ पानी पीने की) एक समस्या है ।

जाड़े के दिनों में ये लोग अधिकतर एक ही स्थान पर रहा करते हैं क्योंकि इन दिनों में इनके उद्यम बर्फ़ की अधिकता के कारण बन्द हो जाया करते हैं। जहाँ तक हो सकता है। इन दिनों में ये लोग टुन्ड्रा के पास वाले जंगलों की आड़ में रहा करते हैं। यहाँ पर इनके रेन्डियरों को घास भी मिल जाया करती है और ये लोग जंगल के छोटे मोटे जीवों का शिकार भी कर लिया करते हैं। 'उस्त्याक' लोग इन जंगलों में अक्टूबर से लेकर दिसम्बर के आखिरी दिनों तक रोयेंदार जानवरों का शिकार किया करते हैं। जाड़े के अन्त में ये लोग कुछ बड़े बड़े जानवरों का शिकार करने के लिये दुबारा जाया करते हैं और गर्मी के प्रारम्भ होते ही टुन्ड्रा के उत्तरी भाग की ओर रवाना हो जाते हैं।

परिस्थितियों के अनुसार यहाँ भी आदमियों और औरतों के काम अलग अलग बंटे रहते हैं। मर्दों का ख़ास काम शिकार करना और खाने की चीज़ों का इकट्ठा करना है। औरतें घर में रह कर गृहस्थी का काम काज देखा करती हैं। बची हुई चीज़ों को सुखाने और हिफ़ाज़त के साथ रख देने के बाद उनको जो समय मिला करता है उसमें वे बेरियाँ इकट्ठा करने में बालकों की सहायता किया करती हैं, और इसके साथ ही साथ बारासिंगों को चराया भी करती हैं। एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते समय खेमों के उखाड़ने और गाड़ने का भी भार स्त्रियों के ही ऊपर हुआ करता है; क्योंकि मर्दों को तो शिकार करने से ही फ़ुरसत नहीं मिला करती। जाड़े के दिनों में भी जब लोग शिकार करने के लिये चले जाते

हैं तो औरतें घर में रह कर बच्चों और जानवरों की देखभाल करती तथा रोयें और बालों आदि के कपड़े बनाया करती हैं।

यहाँ के रहने वालों को साल के ज़्यादातर भाग में इधर उधर घूम फिर कर ही जीवन बिताना पड़ा करता है इसलिये एक स्थान पर घर बना कर रहना तो यहाँ के लिये एक असंभव सी बात है। यही कारण है कि यहाँ घरों के स्थान पर हमें खेमे मिला करते हैं जो आसानी के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाये जा सकें और ज़रूरत पड़ने पर शीघ्रता के साथ उखाड़े या गाड़े भी जा सकें। इनके अतिरिक्त इन लोगों की गृहस्थी की चीज़ों, कुछ औज़ार और कुछ भौंड़े बर्तन ही हुआ करते हैं। इसके लिये सबसे बड़ी बात यह है कि ये सब चीज़ें इतनी हलकी हों और इसके साथ ही साथ इतनी कम संख्या में हों कि आसानी के साथ इधर उधर ले जाई जा सकें।

घर—इनके रहने की मुख्य चीज़ 'कूम' (एक प्रकार का खेमा) है। जो गर्मी के दिनों में अधिक प्रयोग में लाया जाता है। यह बाँसों और जानवरों की खाल या बर्च की छाल से बनाया जाता है। जिसके ऊपरी भाग में धुआँ निकलने के लिये एक छोटा सा सूराख भी हुआ करता है। गर्मी के दिनों में यह खेमा किसी नदी या झील के किनारे गाड़ दिया जाता है। इसके अन्दर सूखी हुई काई की एक गद्दी (सथरी) पड़ी रहती है। भीतरी भाग, गरम रखने के लिये, चमड़ों से ढका या चर्बी से पुता हुआ होता है। गृहस्थी के सामान में रेण्डियर के चमड़े, काई की बैठकें, एक आध चारपाई और खाने पीने के कुछ बर्तन ही मुख्य तौर से पाये जाते हैं। कहने का सारांश यह है कि ये सब चीज़ें ऐसी ही

हुआ करती हैं जिनके लाने और ले जाने में अधिक कठिनाई न उठानी पड़े।

सर्दी के दिनों में या तो खेमों के ऊपर चमड़े की दो एक तहें और भी चढ़ा दी जाती हैं या मिट्टी और बर्फ़ के छोटे मोटे घरौंदे बना लिये जाते हैं। उत्तरी अमेरिका के रहने वाले बर्फ़ का एक बहुत छोटा घरौंदा बना लेते हैं जिसके अन्दर जाने के लिये एक छोटा सा दरवाज़ा या सूराख़ रहा करता है। लैपलैंड के रहने वाले लकड़ी और घास फ़ूस के झोपड़े बना लिया करते हैं।

खाना और कपड़ा—टुन्ड्रा के रहने वालों का मुख्य आहार जानवरों का कच्चा या सड़ा हुआ माँस ही है। सूखा और पिसा हुआ रक्त भी ख़ूब पसन्द किया जाता है। रेन्डियरों से थोड़ा बहुत दूध भी मिल जाया करता है। शाकपात में कुछ झड़बेरियाँ और एकाध क़िस्म की पत्तियाँ ही प्रयोग में लाई जाती हैं। अब आजकल चाय, काफ़ी और तम्बाकू का भी प्रयोग बढ़ता जाता है जो इन्हें दक्षिण के व्योपारियों से बदले में मिल जाया करती हैं। समुद्र के किनारे रहने वाले सील मछली और दूसरे जल-जीवों पर अधिक निर्भर रहा करते हैं।

खाने की भाँति कपड़े भी जंगली जानवरों या रेन्डियरों की खाल से ही बनाये जाते हैं। इनके सीने और सजाने का भार घर की औरतों के ऊपर ही रहा करता है। कभी कभी ये चीज़ें रंग बिरंगे कपड़ों के चीथड़ों के द्वारा बड़ी ख़ूबसूरती के साथ सजाई जाया करती हैं। इनके कपड़ों में सब से प्रमुख एक लम्बा और ढीला चोंगा, सिर ढँकने के लिये एक 'हुड' या कन्टोप, हाथों के लिये रोयेंदार दस्ताना और पैरों के लिये रोयेंदार लम्बे

बूट पाये जाते हैं। स्त्रियों और मर्दों की पोशाक क़रीब क़रीब एक सी ही हुआ करती है। लड़के माँ के "बकचों" या रोयेंदार कम्बलों में लपेट कर एक स्थान से स्थान दूसरे को ले जाये जाते हैं। इसका अनुभव वे ही लोग विशेष रूप से कर सकते हैं जिन्होंने कभी भारतीय कोलों और गोंडों को अपने बच्चों को अपनी पीठ के पीछे बाँध कर ले जाते देखा हो।

हथियार और औज़ार—यहाँ के लोगों का मुख्य औज़ार 'हारपून' (एक प्रकार का बरछा) है जिसके द्वारा ये लोग सील मछलियों का



इस्कीमो—स्लेज और 'कूम'

शिकार किया करते हैं। इसके अतिरिक्त कहीं कहीं तीर कमान, लोहे या पत्थर की कुदारियाँ, चाकू और 'लैसो' (फंदा) आदि का भी प्रयोग पाया जाता है। आने जाने के लिये 'स्लेज' (बे पहिये की गाड़ी जिसको

बारासिंगे या कुत्ते खींचा करते हैं) या 'सी' (दो लकड़ियाँ जो दोनों ओर नुकीली हुआ करती हैं और एक दूसरे से तीन या चार फ़ीट से फ़ासले पर रहा करती हैं और जिसके बीच में पैर डालने के लिए सुराख़ हुआ करते हैं) का प्रयोग किया जाता है। लैप्स लोगों में आजकल गोली बन्दूक का प्रयोग अधिक बढ़ता जाता है। समोयद लोग लकड़ी के टुकड़ों के द्वारा थोड़ी बहुत गिनती भी कर लिया करते हैं। उत्तरी अमेरिका के लोग गाड़ियों के खींचने में कुत्तों का प्रयोग अधिक किया करते हैं क्योंकि उनके यहाँ रेन्डियर अभी बहुत थोड़ी संख्या में ही पाये जाते हैं।

गार्हस्थ्य जीवन—ऊपर के वर्णन से यह साफ़ ज़ाहिर है कि यहाँ के लोगों का गार्हस्थ्य जीवन उतना शान्त और सुखमय नहीं पाया जा सकता जितना संसार के सभ्य और सुशिक्षित देशों में है। जीवन की साधारण आवश्यकताओं की पूर्ति के अतिरिक्त और कोई भी आशा नहीं की जा सकती। यहाँ के वैवाहिक नियम हमारे यहाँ की वर्तमान हिन्दू समाज से बहुत कुछ मिलते जुलते पाये जाते हैं। बाल-विवाह और दहेज की प्रथायें यहाँ भी व्यवहार में लाई जाती हैं यद्यपि बहु-विवाह के लिए कोई रुकावट नहीं पाई जाती तब भी, भरण-पोषण की समस्या बहुत कठिन होने के कारण, लोग अधिकतर एक ही विवाह किया करते हैं। लड़कों के साथ प्रेम और दया का बर्ताव किया जाता है। जीवन निर्वाह की समस्या इतनी कठिन है कि लंगड़े लूले, बूढ़े और बीमार लोग अक्सर भाग्य के भरोसे ही छोड़ दिये जाते हैं।

आमद रफ़्त या आने जाने के साधन—चूँकि टुन्ड्रा साल के

अधिकांश भाग में गहरी बर्फ़ से ढका रहा करता है इसलिये सड़कों और रेलों का प्रचार और प्रसार तो किया ही नहीं जा सकता। नदियाँ भी बर्फ़ से ढकी रहने और बर्फ़ीले समुद्र में गिरने के कारण बेकार ही हुआ करती हैं, इसलिये आने जाने में ये लोग जानवरों से ही काम लिया करते हैं। ये लोग किसी एक स्थान पर जम कर नहीं रहा करते, इसलिए सड़कें तो निश्चित रूप से बनाई भी नहीं जा सकतीं और न उनकी इतनी आवश्यकता ही पड़ा करती है। इनको तो एक ऐसी चीज़ चाहिये जिसके द्वारा ये लोग अपनी छोटी मोटी चीज़ों को अपने साथ ही इधर उधर ले जा सकें। इनका यह काम बारसिंगों और कुत्तों से ही निकल जाया करता है जो हमारे यहाँ के लद्दू बैलों या घोड़ों का सा काम दिया करते हैं। इसके अतिरिक्त बड़े बड़े लोग हड्डियों की एक बे पहियेदार और सरकने वाली गाड़ी भी बना लिया करते हैं जिसको 'स्लेज' कहा जाता है। यह गाड़ी बारासिंगों या कुत्तों के ही द्वारा खींची जाया करती है। इससे माल असबाब ढोने के अतिरिक्त सवारी का भी काम लिया जाया करता है।

एस्कीमो लोग—स्कीमो लोग टुन्ड्रा के सब से उत्तरी भाग में पाये जाते हैं जो समुद्र के सहारे ही अपना जीवन निर्वाह किया करते हैं। इनका मकान बर्फ़ का एक घरौंदा हुआ करता है। इनके कपड़े टुन्ड्रा के और निवासियों से बहुत कुछ मिलते जुलते पाये जाते हैं। इनका मुख्य खाना मछली और दूसरे जलजीवों का गोश्त है। इनका मुख्य हथियार हारपून और आने जाने का साधन 'कयाक'। (एक प्रकार की भद्दी डोंगी) है। इसी में चढ़ कर ये लोग समुद्र के जानवरों का शिकार किया करते

हैं। शिक्षा के विचार से ये लोग थोड़ी बहुत गिनती जान लेते हैं और कभी कभी इनके हथियारों तथा मकानों के ऊपर ड्राइंग की भी चतुरता देखने में आ जाया करती है।

इस प्रकार हमने यह देख लिया कि टुन्ड्रा संसार का एक बर्फ़ीला रेगिस्तान है जहाँ बहुत थोड़ी चीज़ें पैदा की जा सकती हैं और बहुत थोड़े लोग बनजारों की भाँति रहा करते हैं। इन लोगों में संसार के सुशिक्षित लोगों की सी उन्नति और जागृति नहीं पाई जाती। इनको अपने प्रतिदिन के जीवन निर्वाह के लिये ही इतना चिन्तित और व्यस्त रहना पड़ा करता है कि किसी प्रकार भी उन्नति करने का अवकाश नहीं मिला करता। यद्यपि एलास्का, उत्तरी अमेरिका और लैप्लैंड के रहने वाले संसार के सुशिक्षित लोगों के सम्पर्क में आकर अब कुछ उन्नति करने लग गये हैं तो भी वह उन्नति एक थोड़ी ही हद तक ले जाई जा सकती है। यद्यपि यहाँ की जमीन काफ़ी उपजाऊ पाई जाती है और खानिज पदार्थों की भी अच्छी सम्भावना है तब भी, जलवायु के अत्यन्त ठंडी होने के कारण इन चीज़ों का अधिक उपयोग नहीं किया जा सकता। उत्तरी अमेरिका और साइबीरिया दोनों के खण्डों में मैकेन्ज़ी, ओबी, यनीसी और लीना आदि बहुत बड़ी बड़ी नदियाँ पाई जाती हैं किन्तु बर्फ़ से ढकी रहने के कारण या बर्फ़ीले समुद्र में गिरने के कारण, यहाँ के लोगों को इनसे कोई भी विशेष लाभ नहीं पहुँच पाता। सम्भव है कि आगे चल कर संसार के ये प्रदेश सील मछली, फ़र (रोयें) रेन्डियरों और कैरिबाऊ के गोश्त तथा मिट्टी के तेल और सोने आदि के व्यापार के लिए एक केन्द्र बनाये जायँ, किन्तु अभी तक तो यहाँ के

रहने वालों का जीवन हमारे लिये आश्चर्य और सहानुभूति की ही एक बात है। हाँ, यह बात अवश्य है कि ये प्रदेश हम लोगों को दूर से जितने उजाड़ और दुखद मालूम होते हैं उतने वास्तव में नहीं।

चौथा अध्याय

रेगिस्तान का जीवन (उत्तरार्ध)

(ब) गरम रेगिस्तान—(अरब और सहारा) का जीवन—पिछले अध्याय में हम लोगों ने संसार के ठंडे रेगिस्तान के बारे में बहुत कुछ जान लिया। अब इस अध्याय में उनके विरुद्ध संसार के गरम रेगिस्तान के विषय में विचार किया जायगा।

यह तो हमारे पाठकों को ज्ञात हो ही गया होगा कि संसार के रेगिस्तानों के बनने के मुख्य कारण जल-वृष्टि और जलवायु हैं। पानी का बहुत ही कम या बिलकुल न बरसना और आबोहवा का अत्यन्त सर्द या गरम होना ही रेगिस्तान के बन जाने के कारण हैं। पिछले अध्याय से यह साफ़ प्रगट हो गया होगा कि ज़मीन के अत्यन्त उपजाऊ होते हुए भी जल-वृष्टि की कमी और अत्यन्त ठंडक पड़ने के कारण किस प्रकार संसार का एक बहुत बड़ा भाग टुन्ड्रा या बर्फ़ीले रेगिस्तानों में परिवर्तित हो गया है, जहाँ जीवन निर्वाह की समस्या अत्यन्त कठिन होने के कारण मनुष्य, जीवजन्तु और पेड़-पौधे बहुत ही कम संख्या में पाये जाते हैं। इस अध्याय में हम इस बात के दिखाने का प्रयत्न करेंगे कि ज़मीन के अत्यन्त उपजाऊ होते हुए भी जल-वृष्टि की कमी और आबोहवा के अत्यन्त गरम होने के कारण किस प्रकार संसार का एक बहुत बड़ा भाग रेतीले रेगिस्तान में परिणत

हो गया है और वहाँ के लोग किस प्रकार अपने जीवन निर्वाह की समस्याओं को हल किया करते हैं।

गरम रेगिस्तानों का विस्तार—जिस प्रकार संसार के बर्फीले रेगिस्तान प्रायः दोनो ध्रुवों के आस पास पाये जाते हैं उसी प्रकार संसार के प्रायः सभी गरम रेगिस्तान कर्क या मकर रेखाओं के आस पास पाये जाते हैं। पृथ्वी के उत्तरार्ध में गोबी (चीन) ताकला माकन (चीनी तुरकिस्तान), थार (राजपूताना भारतवर्ष), नमक का रेगिस्तान (फारस), अरब, सहारा (अफ्रीका) कालरेडो, एरीजोना और मेक्सिको के रेगिस्तान तथा दक्षिणार्ध में आस्ट्रेलिया का महान् रेगिस्तान, कालाहारी (दक्षिणी अफ्रीका) और अटाकामा (दक्षिणी अमेरीका) के रेगिस्तान पाये जाते हैं। विस्तार के अनुसार पृथ्वी के उत्तरार्ध में रेगिस्तान अधिक इसलिये पाये जाते हैं कि इस हिस्से में पानी की अपेक्षा ज़मीन अधिक पाई जाती है जिसके कारण बहुत से भागों में जलवृष्टि की अत्यन्त कमी होने के कारण पृथ्वी के धरातल पर गर्मी का ज़ोर और प्रभाव बहुत ही अधिक रहा करता है।

गरम रेगिस्तान के बनने का कारण—यह तो हम देख ही चुके हैं कि ठंडे रेगिस्तान जलवायु के अत्यन्त ठंडी होने के कारण ही बना करते हैं। उसी प्रकार गरम रेगिस्तान आबोहवा के अत्यन्त गरम होने और जलवृष्टि के अत्यन्त न्यून होने के कारण बन जाया करते हैं। संसार के इन सभी भागों में, जहाँ रेगिस्तान पाये जाते हैं, पानी बहुत ही कम बरसा करता है क्योंकि इन स्थानों तक पहुँचने वाली हवायें विशेषतया सूखी ही हुआ करती हैं। इसके मुख्य तीन कारण हैं। पहिला यह

ये स्थान पहाड़ों के पीछे ऐसे स्थान पर हैं जहाँ पहुँचते पहुँचते हवा पानी की भाप से रहित हो जाया करती है जैसे आस्ट्रेलिया और दक्षिणी अफ्रीका के पश्चिमी रेगिस्तानों में। दूसरा कारण यह है कि इन स्थानों के ऊपर चलनेवाली उत्तरी पूरबी व्यापारिक हवायें सूखे प्रदेशों की ओर से आने के कारण सूखी ही रहा करती हैं जैसे सहारा और अरब के रेगिस्तान में चलने वाली हवायें जो कि मध्य यूरेशिया से आया करती हैं। तीसरा कारण यह है कि कहीं ये रेगिस्ता न ऐसे स्थानों में पाये जाते हैं जहाँ कि कोई ऊँचे पहाड़ नहीं पाये जाते, इसलिये भाप भरी हुई हवाओं के रास्ते में होते हुए भी पानी नहीं बरसा करता—जैसे भारतवर्ष का थार रेगिस्तान।

इस प्रकार हमने यह देख लिया कि उष्ण-कटिबन्ध के निकट होने के कारण इन स्थानों में गर्मी तो बहुत अधिक पड़ा करती है किन्तु पानी बहुत कम या बिलकुल ही नहीं बरसा करता। इसलिये इन स्थानों का रेगिस्तान हो जाना साधारण सी बात है। यही नहीं उपरोक्त तीनों कारणों के साथ एक कारण और भी है, और वह है इन स्थानों की आबोहवा में रात और दिन तथा गर्मी और सर्दी की ऋतुओं में, हवा की गर्मी में एक विशेष अन्तर और परिवर्तन का होना। इन रेगिस्तान में दिन के समय हवा की गरमी १२० डिग्री तक हो जाया करती है किन्तु रात में वह घट कर ५० या ६० डिग्री तक आ जाया करती है, इसलिये इसका परिणाम यह हुआ करता है कि यहाँ पाये जाने वाले पहाड़ी चट्टान दिन की गर्मी से तो फैल जाया करते हैं किन्तु रात की अत्यन्त सर्दी के कारण फिर यकायक सिमिट जाते हैं। फल इसका यह हुआ

करता है कि इस के फैलने और सिकुड़ने में ये चट्टान टूट जाया करते हैं। धीरे-धीरे पत्थरों के बड़े बड़े टुकड़े छोटे हो जाया करते हैं, फिर वे ही हवा के कारण टूट और रगड़ कर बालू में परिवर्तित हो जाया करते हैं। संसार में जितने भी गरम रेगिस्तान पाये जाते हैं वे सब इसी प्रकार बनाये गये हैं और अब भी बनते जाते हैं।

रेगिस्तान की प्राकृतिक दशा—रेगिस्तान की प्राकृतिक दशा के बारे में बहुत से लोगों की यही धारणा है कि ये रेगिस्तान बालू के ही मैदान हैं जिसमें सिवा बालू के और कुछ भी नहीं पाया जाता। किन्तु वर्तमान अनुसंधानों ने यह प्रगट कर दिखाया है कि रेगिस्तान में केवल बालू ही बालू नहीं पाई जाती। सहारा, अरेबिया और आस्ट्रेलिया आदि के रेगिस्तानों में गहिरे रेत के अतिरिक्त पथरीली पहाड़ियाँ, बालू के टीले और कहीं कहीं ऊँचे पहाड़ भी पाये जाते हैं। सहारा में ट्यूनिस के आस पास पहाड़ी टीलों की और पश्चिमी भाग में छोटे मोटे पहाड़ों की अच्छी भरमार है। यही नहीं, इनके बीच बीच में वादियाँ और नमकीन झीलें भी पाई जाती हैं। छोटी मोटी नदियों की भी कमी नहीं रहा करती किन्तु ये सब थोड़े दिन की ही माया हुआ करती हैं। रेगिस्तानी झीलों में सहारा की चाद और अरब की (डेडसी) अधिक प्रसिद्ध हैं। झीलों और वादियों के अतिरिक्त इन रेगिस्तानों में बहुत से स्थान काफ़ी हरे भरे पाये जाते हैं जिन्हें ओसिस कहा जाता है। ये रेगिस्तानों के बीच में पानीदार गड्ढे हैं जिनके आस पास खजूरों के कुञ्ज पाये जाते हैं और इनके निकट गेहूँ, चावल और दूसरे नाजों की खेती भी की जा सकती है। ओसिस रेगिस्तानी रास्तों के मिलने के

ख़ास मुकाम भी हुआ करते हैं। आजकल अलजीरिया के दक्खिन फ़्राँसीसियों के द्वारा खोदे गये आर्टीज़न कुओं के आस पास ये ओसिस अधिक संख्या में पाये जाते हैं।



सहारा का एक ओसिस

सहारा और दूसरे रेगिस्तानों का प्राकृतिक सौन्दर्य हरियाली की कमी के कारण बहुत कुछ उजाड़ सा ही रहा करता है। यहाँ की सब से अधिक सुन्दरता यहाँ के रंगों में पाई जाती है। आकाश बादलों से रहित नीले रंग का, हवा बहुत ही स्वच्छ और साफ़, इसके साथ ही साथ सूर्य के किरणों से चमकती हुई सुनहली बालू देखने में बहुत ही भली मालूम सहुआ करती है। सन्नाटा यहाँ की एक खास बात है। दोपहर के समय जलजलाती हुई धूप में चमकती हुई बालू और ऊपर

उठते हुए बगूलों के सिवा कुछ भी दिखाई नहीं देता। रात के समय छिटके हुए तारों के बीच, चाँदनी को शोभा देखने ही योग्य हुआ करती है। यहाँ के सब से सुहावने समय सूर्यास्त और सूर्योदय हुआ करते हैं।

रेगिस्तानों की खेती-पाती—प्रायः सभी रेगिस्तानों की उद्भिज पैदावार दो किस्मों में विभाजित की जा सकती है, पहिली रेगिस्तानी और दूसरी ओसिसों की। रेगिस्तानी पौधों में थूहर, नागफनी, और कुछ काँटेदार झाड़ियाँ ही अधिक पाई जाती हैं क्योंकि यहाँ की सख़्त गर्मी में ऐसे ही पौधे जीवित रह सकते हैं। कहीं कहीं छोटी और मोटी घास भी उगा करती है। ओसिसों की पैदावार में खजूर, गेहूँ, चावल, मक्का और कई प्रकार के दूसरे गरम प्रदेश वाले फल और नाज अधिक उपयोगी माने जाते हैं। किसी किसी ओसिस के आस पास अंगूर, बनाना, ईख और कपास आदि की भी अच्छी पैदावार हुआ करती है। मिश्र जो सहारा रेगिस्तान का ही एक भाग है, नील नदी के कारण उपरोक्त चीज़ों की पैदावार के लिये बहुत प्रसिद्ध देश माना जाता है। आजकल अलजिरिया के दक्षिण वाले भाग में फ्रांसीसियों ने खजूर की खेती को भी एक बहुत ही अच्छी हालत पर पहुँचा रक्खा है। अरब, थार और आस्ट्रेलिया के रेगिस्तान उतने उजाड़ न होने के कारण चरागाहों के भी काम में लाये जाते हैं।

अन्य पैदावार—उद्भिज पैदावार को छोड़ कर बहुत से रेगिस्तान खनिज पदार्थों से भी भरे पुरे पाये जाते हैं। जैसे दक्षिणी अमेरिका के अटाकामा रेगिस्तान में शोरे की, फ़ारस के रेगिस्तान में निमक की और

आस्ट्रेलिया तथा कालहारी के रेगिस्तान में सोने और हीरे आदि की भी अच्छी प्राप्ति हुआ करती है।

जीव-जन्तु—जानवरों के विचार से ऊँट रेगिस्तान का सबसे प्रसिद्ध जानवर माना जाता है। इसे रेगिस्तान का जहाज भी कहा कहते हैं। यह जानवर यहाँ के लोगों के लिये बड़े काम का जानवर है। आमद्-रफ्त में काम आने के अतिरिक्त यह यहाँ के लोगों को दूध और गोश्त भी दिया करता है। इसके अतिरिक्त ओसिसों के आसपास और कुछ घास वाले प्रदेशों में भेड, बकरी, घोड़े और दूसरे जानवर भी पाले जाते हैं। छोटे मोटे जन्तुओं में सैकड़ों प्रकार के कीड़े मकोड़े पाये जाते हैं।

जन-संख्या—जीवन निर्वाह की सामग्रियों के अत्यन्त कम होने के कारण रेगिस्तानों में स्वाभाविक तौर से बहुत कम लोग रहा करते हैं। सहारा में, जो क्षेत्रफल में यूरोप के बराबर ही है, बीस लाख से अधिक लोग नहीं पाये जाते। इन लोगों में 'बद्दू' और 'बरबर लोगों' की संख्या विशेष पाई जाती है। सहारा के अन्य निवासियों में 'तौरेग' और 'तीबू' लोग अधिक प्रसिद्ध हैं। संसार के अन्य रेगिस्तानों में रहने वाले अपने आसपास वाली जातियों के वंशज माने जाते हैं।

जीवन निर्वाह के विचार से ये लोग दो विभागों में बाँटे जा सकते हैं; पहिले तो वे लोग जो अपना जीवन बनजारों की भाँति इधर उधर घूम फिर कर ही बिताया करते हैं। ऐसे लोग प्रायः अपने सब सामान को ऊँटों पर लादे हुए खाने और चारे की तलाश में इधर उधर घूमा करते हैं। ये लोग कहीं कहीं दो चार दिन के लिये घास फूस के झोपड़े डाल

कर या अपने खेमे गाड़ कर भले ही टिक जायँ, नहीं तो ऊँटों के कारवाँ लिए हुए घूमने फिरने में ही मस्त रहा करते हैं। इस प्रकार ये लोग चोरी भी किया करते हैं और डाके भी डाल सकते हैं। इनके खेमे चमड़े, घास और लकड़ियों के बने होते हैं जो आसानी के साथ गाड़े या उखाड़े जा सकते हैं।

एक स्थान पर जम कर रहने वाले लोग ज़्यादातर ओसिसों के आस पास ही पाये जाते हैं क्योंकि वहीं वे लोग खजूर, चावल, ईख, कपास और फलों आदि की खेती करते हुए थोड़ा बहुत व्यापार भी कर सकते हैं। इनके रहने के स्थान खेमे या घासफूस और ताड़ के पत्तों के झोपड़े ही हुआ करते हैं।

अरब के रहने वाले बद्दू भी प्रायः इसी प्रकार रहा करते हैं। अन्तर केवल यह है कि वे लोग ऊँटों के स्थान पर घोड़ों से अधिक काम लिया करते हैं। चोरी तथा डाकों आदि में बद्दू लोग अधिक प्रवीण हुआ करते हैं। इन लोगों का एक खास काम मक्का और मदीने के यात्रियों को यात्रा कराना है क्योंकि रेगिस्तान में इनके सिवा दूसरा और कोई आदमी रास्ता नहीं बता सकता। अपने इस काम में बहुत कुछ सचाई का प्रयोग करते हुए भी कभी कभी ये लोग मुसाफिरों पर डाके डाल ही दिया करते हैं।

रहन-सहन और आचार-विचार—हम ऊपर लिख आये हैं कि रेगिस्तान के असली रहने वाले अधिकार बनजारे ही हुआ करते हैं जिनका न तो कोई निश्चित घर ही हुआ करता है और न निश्चित पेशा ही। चरागाही, चोरी, डकैती और व्यापार, सभी समयानुसार किये जा

सकते हैं। किन्तु बड़ी बड़ी ओसिसों के आसपास कुछ सभ्य और शिक्षित लोग भी पाये जाते हैं जो लकड़ी, मिट्टी, और पत्थरों की छोटी मोटी अँधेरी कोठरियाँ भी बना लेते हैं और भेड़ों तथा ऊँटों के बालों से कम्बल और गलीचे आदि भी बुन लिया करते हैं। वहाँ हमें एकाध मसजिद भी दिखाई पड़ जाती है। वहाँ के लोग खजूर, निमक और दूसरी पैदावारों में व्यापार भी किया करते हैं। इन विचारों के अनुसार 'ताफिलत, का ओसिस सबसे अधिक प्रसिद्ध माना जाता है। धर्म के विचार से अधिकांश लोग इस्लाम के अनुयायी हैं।

'आइर' के आस पास रहने वाले 'तौरेग' लोगों के बारे में एक लेखक का कहना है कि "सभी बनजारों की भाँति ये लोग भी मौक़ा मिलने पर चोरी कर सकते और डाका डाल सकते हैं। यद्यपि ये लोग संसार के सब से ग़रीब मनुष्य माने जा सकते हैं तो भी शरीर से काफ़ी हट्टे कट्टे और मज़बूत हुआ करते हैं। ऊँटों पर एक दिन में १२० मील तक जा सकते और रास्ते में सब प्रकार की कठिनाइयाँ को आसानी के साथ झेल सकते हैं। ये लोग ढीले पायजामों के ऊपर एक ढीला सूती चोंगा पहिना करते हैं। यदि नाज मिल जाय तो बहुत अच्छा, नहीं तो ऊँट और बकरी का दूध तथा उसी से बनी हुई पनीर जिसमें जंगली घास के बीज पड़े रहते हैं, भोजन की ख़ास सामग्री मानी जाती है। कभी कभी स्वाद बदलने के लिये टमाटर और प्याज का भी प्रयोग किया जाता है। चाय और क़ाफ़ी का मिल जाना तो मानो भाग्य का ही खुल जाना है। ये लोग हमेशा ही खुश-दिल रहा करते हैं और गुस्सा तो इन्हें कभी भूले भटके ही आया करता है। इन लोगों में किसी भी प्रकार

के नशे-पानी की बुरी आदत नहीं पाई जाती। तम्बाकू सूंघना और ठाट बाट के साथ रहना ही इनकी बुराइयाँ मानी जा सकती हैं। स्त्रियों का ये लोग काफ़ी आदर किया करते हैं। लड़कों और जानवरों के साथ प्रेम और दया का बर्ताव किया जाता है"।

सहारा में आने जाने के लिये ऊँट सबसे आवश्यक चीज़ है। इसके बग़ैर तो यहाँ काम ही नहीं चल सकता। इसमें ख़ास बात यह होती है कि यह बालू के ऊपर बड़ी आसानी से चल फिर सकता है और ज़रूरत पड़ने पर कई रोज़ बिना चारे और पानी के भी चलता जाता है। आज कल इसके स्थान पर मोटरों और रेल गाड़ियों का अधिक प्रयोग होता जाता है। ये चीज़ें इन स्थानों में काम देने के लिये ख़ास प्रकार की बनाई जाती हैं।

संसार के अन्य रेगिस्तान—यहाँ तक तो हमारा ध्यान विशेषकर सहारा के रेगिस्तान की ही ओर रहा है। अब इसके साथ ही साथ यह भी आवश्यक है कि संसार के अन्य रेगिस्तानों के बारे में भी थोड़ा बहुत जान लिया जाय। सिनाई, अरेबियन और भारतवर्ष के उत्तरी-पश्चिमी रेगिस्तान सहारा के ही पूर्वी विस्तार हैं। अरेबिया का रेगिस्तान अधिकतर प्लेटो या पठार पाया जाता है जो लाल सागर की ओर ऊँचा और फ़ारस की खाड़ी की ओर नीचा होता जाता है। मध्य और दक्षिण-पश्चिम के ऊँचे भागों में कुछ जल वृष्टि भी हो जाया करती है, इसलिये यहाँ पर घोड़ों और बकरियों आदि की चरागाहें भी की जा सकती है, किन्तु शेष भाग सूखा और अधिकांश में उजाड़ ही पाया जाता है। बीच में 'नज्द' का पठार कई एक ओसिसों के लिये प्रसिद्ध है

और इसी कारण यहाँ पर घोड़ों की चरागाहें बड़े ज़ोर के साथ की जाया करती है। दक्षिण-पश्चिम में 'एमन' का प्रायद्वीप और पठार गेहूँ और फल आदि की खेती के लिए काफ़ी प्रसिद्ध है। मोशा और होदेदा इसके ख़ास बन्दरगाह हैं। इनके अतिरिक्त मक्का, मदीना, अदन और जिद्दा इस रेगिस्तान के दूसरे प्रसिद्ध स्थान हैं।

अरब के उत्तर-पूर्व ईरान, अफ़ग़ानिस्तान और बलूचिस्तान के पठार पाये जाते हैं जिनका अधिकाँश भाग रेगिस्तान है, किन्तु वह उतना गरम नहीं है जितना कि सहारा और अरेबिया। यहाँ के भी बनजारों और ओसिसों में रहने वालों का जीवन सहारा वालों से बहुत कुछ मिलता जुलता पाया जाता है। ईरान और अरब के बीच में मेसोपोटामिया या ईराक का छोटा सा प्रदेश है जो सहारा के मिश्र देश की भाँति यूफ्रटीज़ और टाइग्रीज़ नदियों के द्वारा उजाड़ रेगिस्तान से हरे भरे देश में परिवर्तित कर दिया गया है। इन स्थानों के लोग संसार के अन्य सभ्य और सुशिक्षित लोगों की भाँति रहा करते हैं जिसका वर्णन आगे चलकर कृषि-प्रधान देशों के साथ किया जायगा।

पामीर पठार को पार कर तिब्बत के उत्तर और उत्तर-पूर्व तारिम और मंगोलिया के रेगिस्तान पाये जाते हैं। इनकी प्राकृतिक दशा और यहाँ के रहने वालों का जीवन बहुत अंशों में सहारा और अरेबिया से मिलता जुलता पाया जाता है।

उत्तरी अमेरिका के कालोरैडो रेगिस्तान में भी सहारा की सी ही दशायें पाई जाती हैं। बनजारों के अतिरिक्त यहाँ पर खानों में काम करने के लिए गोरे लोग भी रहा करते हैं जिनके लिये पानी बहुत दूर से पाइपों

द्वारा खाया जाता है। इस रेगिस्तान की प्राकृतिक दशा में सब से अधिक मशहूर चीज़ कालोरैडो नदी के अत्यन्त ऊँचे और सपाट करार हैं, जिनके बीच में कहीं कहीं तो यह नदी ६००० फ़ीट नीचे बहती हुई पाई जाती है। यहाँ का प्लेटो कहीं कहीं तो ८००० फ़ीट से भी अधिक ऊँचा पाया जाता है। वास्तव में इस प्रदेश की प्राकृतिक सुन्दरता संसार के एक आश्चर्यों में मानी जाती है।

दक्षिणी अमेरिका के पीरूवियन और अटाकामा रेगिस्तान भी बहुत अंशों में सहारा से ही मिलते जुलते पाये जाते हैं। इनमें से अटाकामा रेगिस्तान शोरे की पैदावार के लिये सारे संसार में प्रसिद्ध है।

दक्षिणी अफ़्रीका का कालाहारी रेगिस्तान समुद्र के किनारे की एक पतली पट्टी है जिसकी चौड़ाई ३० से ८० फ़ीट तक ही पाई जाती है। यह रेगिस्तान हीरों और ताँबे की खानों के लिये प्रसिद्ध है। यही कारण है कि यहाँ गोरे लोग भी अच्छी संख्या में पाये जाते हैं। इसका सबसे प्रसिद्ध नगर 'वाल्फिश बे' है।

पश्चिमी आस्ट्रेलिया का रेगिस्तान कालाहारी से बहुत कुछ मिलता जुलता पाया जाता है। यहाँ पर बिल्कुल सूखे और उजाड़ रेगिस्तान का भाग बहुत थोड़ा है क्योंकि इसके लगभग सभी भाग में थोड़ा बहुत पानी अवश्य बरसा करता है। हाँ, यह अवश्य है कि यह पानी बहुत ही कम और बड़ा ही अनिश्चित हुआ करता है। इस रेगिस्तान की सब से मशहूर चीज़ यहाँ की सोने की खाने हैं जिनके कारण यह रेगिस्तान संसार के और रेगिस्तानों की अपेक्षा अधिक प्रसिद्ध माना जाता है। इनमें 'कूलगार्डी' और 'काल्गूर्ली' बहुत प्रसिद्ध हैं।

रेगिस्तानों का भविष्य—यह तो हमने देख ही लिया कि रेगिस्तानों में लोग ज़्यादातर छोटी मोटी नदियों के किनारे ओसिसों के आस-पास या उन विभागों में ही रहा करते हैं जहाँ जीवन निर्वाह और व्यापार के लिये कोई उपयोगी वस्तु पाई जा सके। क्योंकि धन इकट्ठा करने की लालच से मनुष्य रेगिस्तानों में भी रहते हुए वहाँ की सारी कठिनाइयों को झेल सकता है। यही नहीं, उपरोक्त पंक्तियों ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि रेगिस्तानों के विषय में लोगों का जो पहिला ख़्याल था कि रेगिस्तान संसार के वे उजाड़खंड हैं जहाँ जीव जन्तु और मनुष्य पाये ही नहीं जा सकते, बहुत अंशों में भ्रमपूर्ण और असत्य है। रेगिस्तानों में सदा से ही मनुष्य रहते आये हैं और आगे भी रहते जायेंगे, चाहे वे कितनी ही कम संख्या में और कितने ही असभ्य और अशिक्षित क्यों न हों। अब हमें यह देखना है कि इन स्थानों का भविष्य क्या है। जहाँ तक प्राकृतिक दशा और जलवायु आदि का सम्बन्ध है, मनुष्य बहुत अंशों में प्रकृति के ही आधीन रहा है और अब भी रहेगा। वह इन रेगिस्तानों में दो चार मिश्र और ईराक भले ही बना ले, आर्टीज़न कुयें खोद-कर उनके आसपास कुछ खेती-पाती भले ही कर ले और अपने आने जाने के लिये मोटरों और रेलों का प्रयोग क्यों न करता जाय, किन्तु सारे रेगिस्तान को गङ्गा और सिंध का मैदान बना देना उसकी शक्ति के बाहर है। वह अपने फ़ायदे के लिये रेगिस्तानों की उन्नति अवश्य करता जाय, किन्तु पृथ्वी के धरातल से ेगिस्तान का नाम मिटा देना उसके लिये असम्भव है। इतना अवश्य है कि अभी सहारा के बहुत से भागों में खजूरों की पैदावार बढ़ाई जा

सकती है; आमदरफ्त के सुभीते बढ़ जाने के कारण उसके व्यापार में भी उन्नति की जा सकती है; अटाकामा और आस्ट्रेलिया के रेगिस्तानों से शोरे और सोने की आमदनी तिगुनी या चौगुनी की जा सकती है। यही नहीं, भूगोल-वेत्ताओं का तो यह भी अनुमान है कि इन रेगिस्तानों में अभी और भी कई एक उपयोगी खनिज पदार्थ पाये जा सकते हैं। अरेबिया और आस्ट्रेलिया के कुछ भागों में चरागाहों की भी उन्नति की जा सकती है, और कुछ वैज्ञानिक लोग तो यह भी अनुमान करने लग गये हैं कि भविष्य में ये रेगिस्तान सूर्य की किरणों को एकत्रित कर एक आग्नेय शक्ति के पैदा करने में भी उपयोगी बनाये जा सकते हैं। इस प्रकार इनका भविष्य थोड़ा बहुत उज्ज्वल अवश्य प्रतीत होता है। बाह्य संसार के साथ सम्पर्क और समागम बढ़ते जाने के कारण कुछ दिनों में यहाँ के रहने वाले बनजारे भी बहुत कुछ सभ्य और सुशिक्षित बनाये जा सकते हैं।

ठंडे और गरम रेगिस्तानों की तुलना—ठंडे और गरम दोनों प्रकार के रेगिस्तानों के विषय में थोड़ा बहुत जान लेने के पश्चात् अब यह भी आवश्यक है कि हम इनकी कुछ तुलनात्मक विवेचना भी कर लें। यह तो हमने भली प्रकार देख ही लिया कि खेती-पाती की कमी और घासपात की न्यूनता दोनों में ही पाई जाती है। किन्तु इसके साथ ही साथ यह भी स्पष्ट है कि गरम रेगिस्तान ठंडे रेगिस्तानों की अपेक्षा बहुत कम सम्पन्न पाये जाते हैं। ठंडे रेगिस्तानों में पानी की उतनी कमी नहीं पायी जाती और वे रेन्डियर की घास और जल जीवों से काफ़ी भरे पूरे पाये जाते हैं। सहारा में खजूर के सिवा और कुछ

भी नहीं पाया जाता। इसके साथ ही साथ गरम रेगिस्तानों में जीवन निर्वाह की आवश्यकतायें उतनी अधिक नहीं पाई जातीं जितनी ठंडे रेगिस्तानों में। यहाँ बहुत ही साधारण खाने और कपड़े से काम चलाया जा सकता है। सब से बड़ी बात तो यह है कि गरम रेगिस्तानों के रहने वाले ठंडे रेगिस्तानों के निवासियों की भाँति संसार के एकान्त और निर्जन स्थान में नहीं पाये जाते। इनके दोनों ओर सभ्य और सुशिक्षित जाति के लोग पाये जाते हैं जिनके साथ व्यापार आदि में भाग लेते हुए ये लोग अपनी सामाजिक और आध्यात्मिक उन्नति भी कर सकते हैं जो उन लोगों के लिये दुर्लभ और अलभ्य है। यही कारण है कि सहारा आदि के निवासी यहाँ के आदि निवासी होते हुये भी अपने उत्तर वाले भाइयों से बहुत कुछ आगे पाये जाते हैं।

पाँचवाँ अध्याय

घास के मैदानों मे रहने वाले

[अ] स्टेप निवासी

घास के मैदान, उनके बनने के कारण और उनका विस्तार—पिछले दोनों अध्यायों में हमने यह देख लिया कि पृथ्वी के बहुत से खंड उपजाऊ होते हुए भी जल-वृष्टि की कमी और जलवायु के अत्यन्त ठंडी या गरम होने के कारण रेगिस्तानों में परिणत हो गये हैं जहाँ घास-पात और अन्न की बहुत कम उपज होने के कारण बहुत थोड़े ही लोग रहा करते हैं। पैदावार की कमी और उसके कारण जनसंख्या की न्यूनता के विचार से इन उजाड़ खंडों के बाद दूसरा नम्बर घास के मैदानों का आया करता है, क्योंकि इन दोनों में बहुत थोड़ा ही अन्तर पाया जाता है। उपजाऊपन तो दोनों का एकसा ही पाया जा सकता है, किन्तु अन्तर हुआ करता है, उनकी जल-वायु और जल वृष्टि में। पानी के थोड़ा अधिक बरसने और जलवायु के थोड़ी मातदिल हो जाने के कारण रेगिस्तान घास के मैदानों में परिणत हो जाया करते हैं। इन स्थानों में जल-वृष्टि इतनी हो जाया करती है कि कई प्रकार की घास तो अच्छी तरह उग और बढ़ सके, किन्तु बड़े बड़े पौधे नहीं जीवित रह सकते। जलवायु में गर्मी और सर्दी दोनों समयानुसार अधिक पड़ा करती हैं, किन्तु इन मैदानों में साल भर बराबर बनी रहने वाली न तो

टुन्ड्रा की सी सर्दी ही पाई जाती है और न सहारा की सी गर्मी ही। ऐसी जलवायु 'एक्सट्रीम' या विषम जलवायु कही जाती है।

इस प्रकार घास के मैदानों के लिए आवश्यक है—थोड़ी जल-वृष्टि और विषम जलवायु। ये दोनों बातें आमतौर पर ऊष्ण कटिबन्ध के अन्तिम और शीतोष्ण कटिबन्ध के प्रारम्भिक भाग में पाई जाती हैं; इस लिये संसार के घास के मैदान भी ज़्यादातर इन्हीं भागों में पाये जाते हैं। साथ ही साथ यह भी स्पष्ट है कि ये मैदान दो प्रकार के भी पाये जायँगे। प्रथम तो वे जो ऊष्ण कटिबन्ध के अन्तिम भाग में हुआ करते हैं और दूसरे वे जो शीतोष्ण कटिबन्ध के प्रारंभिक भाग या उसके आस-पास पाये जाते हैं। भूगोल में पहिले मैदानों को 'सैवना' और दूसरे को 'स्टेप्' कहा करते हैं।

संसार के 'सैवना' मैदान उन महाद्वीपों में पाये जाते हैं जिनका अधिकांश भाग ऊष्ण कटिबन्ध में ही स्थित है जैसे दक्षिणी अमेरिका, अफ्रीका, दक्षिणी एशिया, मध्य अमेरिका और आस्ट्रेलिया। इनमें सब से प्रसिद्ध हैं—दक्षिणी अमेरिका के लानाज़, कम्पाज़ और पम्पाज़, अफ्रीका के सूदान और आस्ट्रेलिया के 'डाउन्स' या निचले प्रान्त। इनकी स्थिति से यह साफ़ ज़ाहिर है कि ये मैदान ऊष्ण कटिबन्ध के गहन जंगलों और उनके बाद आने वाले गरम रेगिस्तानों के मध्यगामी हैं। यहाँ पर केवल दो ही ऋतुयें हुआ करती हैं। पहिली तो लम्बी गर्मी और फिर छोटी बरसात। इसलिए इन स्थानों में वही पौधे पाये जा सकते हैं जो गर्मी के बाद आने वाली छोटी सी बरसात में ही अपनी सारी जीवन-क्रीड़ा समाप्त कर लें।

स्टेप् के अर्थ रूसी भाषा में 'मध्य अक्षांशों के वे वृहत् प्रदेश जो जंगलों से रहित किन्तु उपयोगी घास से भरे-पूरे हों' हुआ करता है। किन्तु आमतौर से स्टेप् शब्द का प्रयोग घास के उन मैदानों के लिये किया जाता है जो समुद्र से बहुत दूर होने के कारण जलवायु की अत्यन्त विषमता से बन जाया करते हैं। जाड़े के दिनों में गिरी हुई बर्फ़ बसन्त की गर्मी से पिघल जाया करती है और तब कुछ दिनों के लिये जमीन की सतह खुल जाया करती है। इसके बाद ही ग्रीष्म की अत्यन्त गर्मी पड़ा करती है जिससे पेड़ पौधे झुलस जाया करते हैं। अतः इन स्थानों में भी वेही पौधे उग और बढ़ सकते हैं जो अपनी जीवन लीला थोड़े ही दिनों में तेजी के साथ समाप्त कर लें। इसलिए यह निश्चित है कि इन प्रदेशों में न तो गर्म प्रदेशों के ही और न ठंडे प्रदेशों वाले ही बड़े बड़े पेड़ पाये जा सकते हैं। यहाँ के जीवन संग्राम में विजय तो घास को ही मिला करती है जो एक या दो महीने में ही उग और बढ़ कर आदमियों के बराबर हो जाया करती है। यदि किसी ओर से बड़े बड़े पेड़ों के एकाध बीज आ कर उग भी जायँ तो यहाँ की घास उन बेचारों का गला घोट दिया करती है।

विस्तार—संसार के स्टेप या ठंढे घास के मैदान महाद्वीपों के उन भीतरी और निचले भागों में पाये जाते हैं जो समुद्र से बहुत दूर हुआ करते हैं। विशेषतया इनका विस्तार उत्तर के ठंडे जंगलों और दक्षिण के गरम रेगिस्तानों के बीच में पाया जाता है। यूरेशिया में ये मैदान मध्य एशिया के पठार कहे जाते हैं जिनमें मन्चूरिया, मंगोलिया तुर्किस्तान, दक्षिणी साइबीरिया, दक्षिणी रूस और हँगरी के चारागाहों के

साथ साथ फ़ारस, एशिया माइनर और अरब के पठार शामिल हैं। उत्तरी अमेरिका में ये मैदान प्रेरीज़ कहे जाते हैं और १००° पश्चिमी देशान्तर के पश्चिमी से लेकर राकी पहाड़ों के पूर्वी ढाल तक फैले हुये हैं। दक्षिणी अमेरिका में पैटागोनिया के चरागाह और दक्षिणी अफ्रीका में 'वेल्ड' कहे जाते हैं। इनमें से मध्य एशिया के स्टेप अधिक प्रसिद्ध हैं, क्योंकि विस्तार में बहुत बड़े होते हुये भी इन चरागाहों ने अपने निवासियों के रहन-सहन में बहुत कम परिवर्तन होने दिया है। जहाँ नई दुनिया के नये चरागाहों में नित्य प्रति नये नये परिवर्तन होते जाते हैं, वहाँ एशिया के ये पुराने चरागाह क़रीब अब तक उसी हालत में पाये जाते हैं जैसे आज से ५००० वर्ष पूर्व हेब्रू पुस्तकों में वर्णन किये गये हैं। बाइबिल की पवित्र पुस्तक में भी स्टेप की प्रकृतिक सुन्दरता के बहुत से उल्लेख पाये जाते हैं जैसे "गड़रियों का राजा अपनी भेड़ों के लिये हमेशा नये चरागाह और निर्मल जल की तलाश में रहा करता है" "उजाड़ खंड में पत्थर की एक चट्टान की भी छाया सुखद मानी जाती है" इत्यादि इत्यादि।

एशिया के स्टेपीज़ की प्राकृतिक दशा—एशिया के स्टेपीज़ जो विस्तार में यूरोप से भी कुछ बड़े पाये जाते हैं विशेषतया विषम (ऊँचे नीचे) मैदान हैं, जिनमें कहीं कहीं एकाध पहाड़ियाँ भी पाई जाती हैं। अपने उत्तर की ओर तो ये काफ़ी जंगल पाये जाते हैं, किन्तु दक्षिण की ओर सूखे और उजाड़ होते होते गरम रेगिस्तानों में परिणत हो गये हैं। इनकी प्राकृतिक बनावट में इतनी सदृशता और समानता पाई जाती है, कि यहाँ का दृश्य बहुत ही उदास और अनाकर्षक

प्रतीत होता है। इसके बीच के नमकीन भाग जो प्राचीन नदियों और झीलों के सूख जाने से बन गये हैं और भी उजाड़ मालूम हुआ करते हैं। जो दो चार नदियाँ पाई भी जाती हैं वे पथरीली और साल के अधिकांश भाग में सूखी रहा करती हैं। जब बरसात के दिनों में उनमें थोड़ा बहुत पानी आ भी जाता है तो ये हाथीचिंघार, नागरमोथा और कुई आदि के पौधों से ढक जाया करती हैं। सिवा इन छोटे मोटे पौधों के यहाँ घास ही दिखाई पड़ा करती है।

इन चारागाहों में बसन्त का मौसम सबसे सुहावना माना जाता है। ब्रेहम नामक जर्मन यात्री इन दिनों की सुन्दरता का वर्णन करते हुये लिखता है "पृथ्वी के बहुत ही विस्तृत भाग शंखपुष्पी और गुललाला आदि के पौधों से ढके रहते हैं जिनमें काले, पीले, नीले, लाल और हरे सभी रंगों के फूल पाये जाते हैं। गुललाला के बाद ही नरगिस और उसी प्रकार के दूसरे पौधे देखने में आया करते हैं जिनसे सारा जंगल का जंगल ढका रहा करता। इनकी शोभा और विचित्रता गुललाले से भी कहीं अधिक पाई जाती है। यद्यपि अधिकाँश में ये पौधे अपने भिन्न भिन्न रंग और रूप में ही पाये जाते हैं, तथापि कहीं कहीं इनका सम्मिश्रण भी मिला करता है। वास्तव में यह सम्मेलन दर्शकों को मुग्ध कर लिया करता है। थोड़े ही दिनों में सारा चरागाह एक हरी दरी से ढप जाता है। मटर, मूँगफली, बनहरद और बनमूँग के भी पौधे एक वृहत् संख्या में पाये जाते हैं। सारांश यह है कि सारा चरागाह रंगविरंगे फूलों की चमचमाहट से जगमग जगमग हुआ करता है।"

यद्यपि ग्रीष्म के आदि में ये चरागाह हरे भरे रहा करते हैं तथापि

थोड़े ही दिनों में उनकी यह हरियाली जलजलाते हुये सूर्य की किरणों के कारण भूरे और पीलेपन में परिवर्तित कर दी जाया करती है। पतझड़ में तो सारा दृश्य ही पीला नजर आने लगता है। बर्फ़ के पहिले झोंके में ही बेचारी घास मुर्झाकर झुक जाया करती है और दूसरा झोंका नदियों और झीलों को बर्फ़ से ढक दिया करता है। जाड़े के दिनों में उत्तर की ओर से भयंकर बर्फ़ीले तूफ़ान आने लग जाते हैं जिसे मनुष्य और जानवर, दोनों का बड़ा नुकसान हुआ करता है। अप्रैल के महीने से बर्फ़ पिघलने लग जाया करती है और ज़मीन के अत्यन्त गीली हो जाने के कारण सूर्य की गर्मी पाते ही चरागाह घास और फूलों से ढक लिया जाता है।

स्टेप के पशु-पक्षी—स्टेप् में रहने वाले जानवर अधिकांश में घास खाने वाले ही हुआ करते हैं। इनमें से लगभग सभी मनुष्यों के लिये उपयोगी पाये जाते हैं। पालतू जानवरों में भेड़, बकरी, गाय, भैंस, ऊँट, गधे, खच्चर और घोड़े अधिक प्रसिद्ध और उपयोगी माने जाते हैं। जंगली जानवरों में गीदड़, लोमड़ी ख़रगोश और दूसरे छोटे मोटे जानवर ही पाये जा सकते हैं।

एशियाई स्टेप् के निवासी—रूसी स्टेप् (पश्चिमी थियानशान के पठार और मध्य भाग) के ख़ास रहने वाले 'किरघीज़' (डाकू या लुटेरे) कहे जाते हैं, किन्तु यह नाम उनके लिये सर्वथा उपयुक्त नहीं कहा जा सकता। ये लोग अपने को कज़्ज़ाक (घुड़सवार) कहा करते हैं। थियानशान के पूर्व मंगोल लोग रहा करते हैं जो कई एक शाखाओं में बँटे हुए हैं।

जाति की विभिन्नता होते हुए भी इन सब का जीवन बहुत अंशों में एक-सा ही पाया जाता है।



किरघीज़ के डेरे

स्टेप् के निवासियों के पेशे—स्टेप् के रहने वालों का मुख्य पेशा जानवरों का चराना है। यहाँ पर यही काम सब से अधिक सुगमता के साथ किया जा सकता है। इसके उत्तरी और दक्षिणी किनारों पर जल-वृष्टि कुछ अधिक होने के कारण खेती पाती भी की जा सकती है, किन्तु इसका अधिकांश भाग चरागाह ही रहा है और आगे भी रहेगा।

स्टेप् निवासियों के लिये भेड़ों और जानवरों की उपयोगिता—जिस प्रकार उत्तर के ठंडे रेगिस्तानों के रहने वाले रेन्डियर और गरम

रेगिस्तानों में रहने वाले ऊँटों के ऊपर निर्भर रहा करते हैं उसी प्रकार स्टेपीज में रहने वालों का सारा जीवन उनके जानवरों पर निर्भर रहा करता है। चूँकि ये लोग संसार के खेती करने वालों से एक प्रकार बिलकुल अलग रहा करते हैं इसलिये इन्हें अपने जीवन की सारी आवश्यकतायें अपने जानवरों से ही प्राप्त करनी पड़ा करती हैं। वस्तुतः ये लोग स्वयं खेती-पाती के सुव्यवस्थित जीवन से घृणा किया करते हैं। इनकी सारी आवश्यकतायें इनकी भेड़ों और उनके जानवरों से ही पूरी हो जाया करती हैं। भेड़ों की ऊन से उनके कम्बल, कपड़े और खेमें बनाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त जानवरों की खाल और उनकी हड्डियों से कपड़े, थैले और जरूरी बर्तन बन जाया करते हैं। इनके बनाये हुए कम्बल और दुशाले तो जगत-विख्यात हुआ करते हैं। खाने के लिये साधारण मनुष्यों को दूध और गोश्त ही पर्याप्त हुआ करता है, किन्तु अमीर लोग आटा, चावल और दाल भी व्यापारियों से मँगा लिया करते हैं। घोड़ों का गोश्त, गाय और भेड़ दोनों के गोश्त से उमदा माना जाता है। इसका प्रयोग अधिकांश में त्यौहारों या दावतों में ही किया जाता है। गर्मी के दिनों में दूध ही मुख्य भोजन हुआ करता है। इसको ये लोग कई प्रकार से खाया करते हैं। खीर, पनीर और मक्खन के अतिरिक्त इसकी सबसे खास चीज 'कुमिस' (एक प्रकार की खट मिट्ठी और कुछ नशीली चीज) बनाई जाती है जिसका इन लोगों में बड़ा प्रचार पाया जाता है।

इस प्रकार हमने यह देख लिया कि स्टेप् में रहने वालों का खाना पीना, कपड़ा और मकान सभी उनके जानवरों पर ही निर्भर रहा करता

है। इसलिये इन जानवरों का यथेष्ट पालन-पोषण ही इनका मुख्य काम हुआ करता है।

स्टेप्स में रहने वालों का जीवन—सहारा के रहने वालों की भाँति स्टेप्स में रहने वाले भी अपना जीवन इधर-उधर घूम फिर कर ही बिताया करते हैं। वास्तव में इन लोगों का ही जीवन असली बनजारों का जीवन है। चूँकि इनका सारा जीवन इनके जानवरों पर ही निर्भर रहा करता है और जानवरों के लिये घास और पानी बहुत ही आवश्यक है, इसलिये ये लोग हमेशा अपने जानवरों को लिये हुए घास और पानी की तलाश में इधर उधर घूमा करते हैं। कभी कभी तो प्रति दिन इनके खेमें एक स्थान से दूसरे स्थान में उखाड़े और गाड़े जाया करते हैं। जब एक स्थान की घास बिल्कुल ख़तम हो जाया करती है तब ये लोग दूसरे स्थान की ओर चल दिया करते हैं। पड़ाव के उखड़ते ही आगे आगे घोड़े भेजे जाते हैं। उनके पीछे दूसरे जानवर जैसे ऊँट,-गाय और भैंस इत्यादि। फिर इनके पीछे भेड़ों और बकरियों के झुंड चला करते हैं क्योंकि जिस स्थान की घास घोड़ों और दूसरे ढोरों के काम की नहीं रहती, वहाँ भी भेड़ों और बकरियों को काफ़ी खुराक मिल जाया करती है। भेड़ों और बकरियों के पीछे इनकी गृहस्थी का सामान (खेमें, कपड़े और बर्तन आदि) और इनके बाल-बच्चे घोड़ों ऊँटों या बैलों के ऊपर चला करते हैं। दोपहर को भेड़ और बकरियाँ भोजन के लिये दुही जाती हैं। इस प्रकार धीरे धीरे खाते-पीते ये लोग आगे बढ़ते जाते हैं। दिन भर जानवर इधर उधर चरते रहते हैं, जब शाम को किसी स्थान पर पड़ाव पड़ता है तो औरतें फिर खेमों को गाड़

दिया करती हैं और जानवरों को दुह कर भोजन किया जाता है। यदि किसी स्थान पर घास और पानी की बहुत ही कमी पाई जाती तो दूसरे ही दिन डेरा कूच कर दिया जाता है। तब बड़े बड़े लड़के अपने घोड़ों पर पानी और घास की तलाश में इधर उधर दौड़ पड़ते हैं और अगले पड़ाव का स्थान पहिले से ही निश्चित कर लेते हैं। उनके पीछे उपरोक्त रीत्यनुसार सारा डेरा कूच किया करता है। यदि चारागाह अच्छे हुए तो एक ही स्थान पर सात या आठ या उससे भी ज्यादा दिन पड़ाव पड़ा रह जाता है। जब गर्मी के दिनों में गर्मी अधिक पड़ने लग जाती है और कीड़े-मकोड़े बहुत तंग करने लग जाते हैं तो ये लोग स्टेप्स के ऊपरी भागों की ओर बढ़ते जाते हैं, किन्तु पानी और घास की सुलभता सदैव ध्यान में रक्खी जाती है। जाड़े के प्रारम्भ होते ही ये लोग निचले भागों की ओर लौट पड़ते हैं और धीरे धीरे प्रति वर्ष के शीत-ऋतु वाले निवास-स्थानों में पहुँच जाते हैं। इस प्रकार प्रत्येक गिरोह प्रति वर्ष अपने नियमित स्थानों में ही भ्रमण किया करता है क्योंकि प्रत्येक गिरोह के चरागाह अलग अलग हुआ करते हैं। यदि एक गिरोह दूसरे के चरागाह में हस्तक्षेप करता है तो बड़ी गहरी लड़ाई हो जाया करती है।

गर्मी के निवासस्थान (ऊँचे पठार)—चूँकि स्टेप्स के रहने वालों को गर्मी के दिनों में ही अधिक घूमना पड़ा करता है इसलिये इन दिनों के लिये खेमे ही सब से उपयुक्त स्थान माने जाते हैं; क्योंकि ये आसानी के साथ गाड़े, उखाड़े और इधर उधर ले जाये जा सकते हैं। पुर्त (गर्मी के दिनों के खेमे) नामक खेमे और खेमों से उत्तम हुआ करते

हैं, क्योंकि ये उनके जीवन के अनुकूल होते हुए भी बड़े आरामप्रद हुआ करते हैं। ये खेमे बड़े कीमती, सुन्दर और मजबूत बनाये जाते हैं। इनका ढाँचा पेचदार और घट बढ़ सकने वाला हुआ करता है, इसलिये अपनी इच्छानुसार ये लोग इसे छोटा या बड़ा कर लिया करते हैं। इनकी ऊपरी जाली एक मज़बूत रस्सी की बनी होती है जिसमें खंभे फँसा दिये जाते हैं। इस जाली में झंझरीदार एक दरवाज़ा भी हुआ करता है। इस ढाँचे के ऊपर सुन्दर मज़बूत फेल्ट चढ़ा रहता है जो डोरियों और रस्सियों के द्वारा बाँध दिया जाता है।

इन खेमों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इन्हें औरतें भी आध घंटे में उखाड़ या गाड़ सकती हैं और बड़ी आसानी के साथ लपेट कर एक ऊँट के ऊपर ले जा सकती हैं। तूफ़ान के समय में ये खेमे आसानी के साथ गिराये और सूर्य के निकलते ही थोड़ी देर में ताने जा सकते हैं। इनके अन्दर ऊन और बालों के कम्बल, दुशाले और ग़लीचे बिछे होते हैं जो बड़े ही सुन्दर, मज़बूत और क़ीमती हुआ करते हैं। घूमने फिरने का जीवन होने के कारण गृहस्थी का और सामान (भाँडे बर्तन) बहुत ही सूक्ष्म और हलका हुआ करता है। हर एक चीज़ में इस बात का ध्यान रक्खा जाता है कि वह आसानी के साथ, बग़ैर टूटे फूटे इधर उधर ले जाई जा सके। इसलिये थैले इत्यादि सभी काम के बर्तन चमड़े के बनाये जाते हैं। कारण इसका यही है कि पहिले तो चमड़ा आसानी के साथ अधिक संख्या में पाया जा सकता है और दूसरे उससे बनी हुई चीजें आने जाने में बहुत कम ख़राब हुआ करती हैं।

जाड़े की रहन-सहन—जाड़े के दिनों में अत्यन्त सर्दी के कारण इन लोगों को एक स्थान पर टिक कर रहना पड़ता है। उस समय ये लोग अपने रहने के लिये नरकट या हाथीचिंघार या नदियों के किनारे पाई जाने वाली अन्य घासों के झोपड़े और छप्पर बना लिया करते हैं। सर्दी से बचाने के लिये इन झोपड़ों की दीवालें मिट्टी से पोत दी जाती हैं। जलाने के लिये जानवरों का सूखा हुआ गोबर (कंडे) काम में लाया जाता है। ये झोपड़े अधिकांश में नीचे, अँधेरे और सीड़दार हुआ करते हैं इसलिये ज्यादातर लोग पुर्तों के अन्दर ही रहना पसद किया करते हैं। इसके साथ ही साथ कमज़ोर और छोटे मोटे जानवरों की रक्षा के लिये भी बाड़े और बँगले बना दिये जाते हैं।

किरघियों के जाड़े के पड़ाव ज्यादातर घास और पानी की सुलभता (नदियों और सोतों) पर ही निर्भर रहा करते हैं, क्योंकि सर्दी के दिनों में जानवरों के लिये घास और पानी बहुत आसानी के साथ मिलते जाना चाहिये। मामूली जाड़े में तो नहीं, किन्तु गहिरे जाड़े में कभी कभी जानवरों का बड़ा नुक़सान हो जाया करता है।

किरघियों के लिये घोड़ों की उपयोगिता—हमने ऊपर लिखा है कि जिस प्रकार सहारा के रहने वालों के लिये ऊँट उनका प्राणाधार है उसी प्रकार किरघियों के लिये घोड़ा माना जाता है। वास्तव में अगर इन लोगों के पास घोड़े न हों तो ये लोग कुछ भी नहीं कर सकते : क्योंकि आने जाने के लिये सवारी का काम देने के अतिरिक्त ढोरों और भेड़ बकरियों के गल्लों को चराने में भी इनसे बड़ी मदद मिला करती है। साधारणतया प्रत्येक किरघी के पास तीन चार सौ गायें

और पाँच छः सौ भेड़ बकरियाँ पाई जाती हैं। रईसों के पास तो सैकड़ों ऊँट, हज़ारों घोड़े और लाखों भेड़ और बकरियाँ रहा करती हैं। इन सब में घोड़े सब से क़ीमती माने जाते हैं और वस्तुतः इन्हीं के द्वारा प्रत्येक मनुष्य का स्थान उसकी समाज में निश्चित किया जाता है। यही कारण है कि प्रत्येक किरघी अपने को 'कज्जाक' या 'घुड़ सवार' कहने में बड़ा गर्व माना करता है। बालकों को चौथे पाँचवें वर्ष से ही घुड़सवारी सिखाई जाने लग जाती है। उनकी क, ख की पढ़ाई घोड़े की पीठ पर ही शुरू की जाती है। येही बच्चे थोड़े दिनों में अच्छे घुड़सवार होकर ढोरों के चराने और चरागाहों के खोज निकालने में अपने बड़ों की सहायता करने लग जाया करते हैं। पड़ाओं के उखाड़ने और डालने में घोड़े बड़ा काम दिया करते हैं क्योंकि इनके द्वारा ही लोग एक एक दिन में दस दस और पन्द्रह पन्द्रह मील चले जाते हैं। यही नहीं, अगर घोड़े न हों तो एक लाख भेड़ों के गल्ले को चराना ही मुश्किल हो जाय, क्योंकि कोई भी आदमी पैदल दौड़ कर तीन चार मील लंबे झुंड की निगरानी नहीं कर सकता। इसलिये यह स्वाभाविक है कि किरघी बहुत अच्छे घुड़सवार हों और अपने घोड़ों को अपनी जान से अधिक प्यार करें। जैसे कोई भी सरहद्दी पठान जीते जी अपनी बन्दूक नहीं दे सकता उसी प्रकार कोई भी किरघी जीते जी अपना घोड़ा नहीं छोड़ सकता।

किरघियों के पेशों का उनके गृहस्थ जीवन पर प्रभाव—यह तो हमने देख ही लिया कि घूम फिर कर जीवन बिताने और बड़े बड़े ग़ल्ले रखने के कारण प्रत्येक किरघी को अच्छा घुड़-सवार होना पड़ा करता

है, किन्तु इसका एक और बहुत अच्छा प्रभाव इनके गृहस्थ जीवन पर पड़ा करता है। जो मनुष्य जितना ही बड़ा रईस होगा उसके पास उतने ही अधिक जानवर भी होंगे और यह स्वाभाविक है कि उनकी देख भाल के लिये उतने ही अधिक आदमियों की भी आवश्यकता पड़ा करेगी। इसलिये इनके यहाँ किसी आदमी को रईस या धनाढ्य होने अर्थात् ढोरों की एक वृहत् संख्या रखने के लिये यह आवश्यक है कि वह ज्यादा से ज्यादा आदमियों को अपने पास रक्खे। इस आवश्यकता को पूरी करने के लिये या तो नौकर रक्खे जाते हैं या प्रत्येक मनुष्य दो, चार या छः शादियाँ किया करता है। इसका फल यह होता है कि एक मनुष्य तीस तीस और चालीस चालीस लड़कों का बाप हुआ करता है और बड़े बड़े घरों में साठ साठ या सत्तर सत्तर आदमी एक ही साथ रहा करते हैं। इनमें घरका सब से बुजुर्ग आदमी ही सारी गृहस्थी का मालिक हुआ करता है और उसके नीचे के सब लोग उसका आदर करते और उसकी आज्ञाओं का पालन किया करते हैं। लोग अपनी दस दस पीढ़ियों तक के बुजुर्गों का नाम कंठाग्र किये रहते हैं और इतनी बड़ी गृहस्थी का सदस्य होने में बड़ा गौरव समझा करते हैं। वंश के पूर्वजों पर भी अच्छी श्रद्धा रक्खी जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि बनजारों का जीवन व्यतीत करते हुये भी इन लोगों को गृहस्थाश्रम के पारस्परिक प्रेम का अच्छा आनन्द मिला करता है।

स्टेप् निवासियों के आचार विचार और उनका स्वभाव— स्टेप् निवासियों के चारों ओर की प्राकृतिक दशा, उनके जीवन और उनके पेशों का उनकी प्रकृति पर एक विशेष प्रभाव पड़ा करता है।

इन लोगों को अपने जीवन निर्वाह के लिये सारी चीजें इनके गल्लों से ही मिल जाया करती हैं और इन्हें बाहरी लोगों पर बहुत ही कम आश्रित रहना पड़ा करता है इसलिये ये लोग लड़कपन से ही स्वाभिमानी, स्वतंत्रता प्रिय और जम कर किये जाने वाले पेशों जैसे खेती और व्यापार के खिलाफ हुआ करते हैं। इनके पेशे आज भी वैसे ही पाये जाते हैं जैसे दो हजार वर्ष पहिले थे। उनमें किसी प्रकार का भी आधुनिक परिवर्तन नहीं किया जा सका। इसलिये इन लोगों को हम पुराने लकीर के फकीर कह सकते हैं क्योंकि ये लोग अपने जीवन और व्यवहारों में किसी प्रकार का भी नवीन परिवर्तन या क्रान्ति सहन नहीं कर सकते। अपने इस स्वभाव के कारण कभी कभी तो ये लोग दैव दुर्विपाक से सर्वनाश तक पहुँच जाया करते हैं। इसी कारण ये लोग भी पूर्व के अन्य निवासियों की भाँति भाग्य पर ही अधिक विश्वास किया करते हैं। अन्तिम प्रभाव एक यह भी हुआ करता है कि बहुत से आदमियों के एक ही साथ मिलकर रहने और खाने पीने से इनमें आपस का प्रेम और भ्रातृत्व अधिक पाया जाता है जिसके कारण ये लोग अतिथि-सत्कार में भी बड़े उदार हुआ करते हैं।

इस प्रकार हमने यह देख लिया कि भौगोलिक परिस्थितियों का इनके जीवन और इनके रहन-सहन तथा आचार-विचार पर कितना प्रभाव पड़ा करता है। यद्यपि टुन्ड्रा के निवासियों की भाँति इनका भी जीवन अस्थिर और अनिश्चित हुआ करता है तो भी ये लोग उनसे कहीं अधिक उच्च श्रेणी के मनुष्य पाये जाते हैं। अपने चारों ओर की प्रकृति के अधिक उदार होने के कारण ये लोग धन एकत्रित कर अपने वर्तमान

और भविष्य का भी अच्छा प्रबन्ध कर लिया करते हैं। इनके विस्तार में भी किसी प्रकार की अड़चन नहीं पड़ा करती और जीवन संग्राम बहुत कुछ सरल होने के कारण बच्चों, बीमारों और बुड्ढों के प्रति प्रेम और दया का भाव भी दिखा सकते हैं, क्योंकि टुन्ड्रा वालों की बुराइयों के कारण उनकी प्राकृतिक परिस्थितियाँ और जीवन निर्वाह की कठिनाइयाँ ही हैं। यद्यपि सभ्यता के वर्तमान माप के विचार से ये लोग असभ्य, अशिक्षित, गन्दे और अंध-विश्वासी (सुपर्टिशस) माने जा सकते हैं तो भी इन किरघियों की ईमानदारी, इनका साहस और परिश्रम प्रशंसनीय हैं।

छठवाँ अध्याय

स्टेप् के रहने वाले (उत्तरार्ध)

यहाँ तक तो हमने स्टेप् के आदि निवासियों के बारे में पढ़ा और यह देख लिया कि किस प्रकार ये लोग प्रत्येक नूतन आविष्कार और परिवर्तन के खिलाफ रहा करते हैं। अब हमें दूसरे स्थानों के विषय में भी थोड़ा बहुत जान लेना चाहिये।

यूरेशिया के स्टेप का उत्तरी और उत्तर-पश्चिमी भाग अपने और भागों की अपेक्षा अधिक उपजाऊ पाया जाता है। यहाँ चरागाहों के अतिरिक्त खेती भी की जा सकती है इसलिये इस भाग में हमें लोगों का जीवन अधिक सुव्यवस्थित और समुन्नत मिला करता है। इस भाग में रहने वाले विशेष कर यूरोपीय अंग्रेज और उनके वंशज हैं अतः ये लोग पुराने ढर्रे का जीवन पसंद न कर नवीन वैज्ञानिक उपयोगों से काम लिया करते हैं। मक्खन आदि बनाने के लिये मशीनों का उपयोग किया जाता है तथा खेती-पाती में भी बहुत उन्नति होती जा रही है। दक्षिणी-पूर्वी रूस, जो किसी समय में केवल एक चरागाह था, आज कल गेहूँ, राई, जई, आलू, शलजम और चोकन्दर आदि की पैदावार के लिये बहुत प्रसिद्ध होता जाता है। पानी की कमी नहरों और सिंचाई के दूसरे तरीकों जैसे गहरे कुएँ खोद कर, पूरी कर ली जाती है। व्यापार की उन्नति के लिये रेलों और सड़कों का भी अच्छा प्रचार होता जा रहा है,

जिनमें ट्रान्स कास्पियन और ट्रान्स साइबीरियन रेलें अधिक प्रसिद्ध हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि ये लोग अपने जीवन को आजकल के नये ढाँचे में ढालते जा रहे हैं।

प्रेरीज और वहाँ के रेड इन्डियन्स—यूरेशिया के स्टेप्स के बाद विस्तार में उत्तरी अमेरिका के प्रेरीज ही माने जाते हैं। ये अमेरिका की महान झीलों से ले कर राकी पहाड़ों के पूर्वी ढाल तक फैले हुये हैं। प्राकृतिक दशा में ये मैदान भी स्टेपीज से बहुत कुछ मिलते जुलते पाये जाते हैं। इनके पूर्वी भागों में जल वृष्टि अधिक हुआ करती है, किन्तु जैसे हम पहाड़ों की ओर बढ़ते जाते हैं वैसे ही वैसे बारिश भी कम होती जाती है। नदियों और झीलों के विचार से प्रेरीज स्टेप्स की बनिस्बत अधिक सम्पन्न पाये जाते हैं।

आजकल इन प्रेरीज में रहने वाले अधिकांश में यूरोपीय अँग्रेजों के वंशज पाये जाते हैं जो अपने और भाइयों की भाँति तरह तरह के वैज्ञानिक उपयोगों की सहायता से चरागाही, खेती और व्यवसाय की उन्नति करते जा रहे हैं। जहाँ पहिले जंगली जानवरों के झुंड के झुंड फिरा करते थे और थोड़े से आदि निवासियों के झोंपड़े दिखाई देते थे वहाँ आज हज़ारों एकड़ गेहूँ के खेत और आकाश से बातचीत करने वाले प्रासाद पाये जाते हैं। जिन नदियों में पहिले जंगली पेड़ों के तनों की छोटी मोटी डोंगियाँ चला करती थीं, उनमें आज हज़ारों मन गल्ला लादे हुये धुआँकश जहाज चलते नजर आते हैं। खेतों के जोतने, बोने, काटने और माँड़ने आदि का सारा काम मशीनों से किया जाता है। विनी-पिग और मिनेपोलिस में नाज के बड़े बड़े कोठार भरे पड़े हैं तथा कैलगरी

और शेन में एक एक लाख जानवरों को बन्द करने वाले बाड़े बने हुए हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि दो चार हजार रेड इण्डियन्स के पुराने मैदान आज संसार के अग्र-गण्य देश बने हुये हैं।

जिस समय यूरोप के लोग यहाँ पहिले पहल आये उस समय इन मैदानों में यहाँ के आदि निवासी (रेडइंडियन्स) रहा करते थे। इनका मुख्य पेशा जंगली जानवरों का शिकार था। क्योंकि जिन मैदानों की वर्तमान दशा का ऊपर थोड़ा सा उल्लेख किया गया है वे उस समय केवल घास के ही मैदान थे। यह घास बहुत बड़ी और कई रंग की पाई जाती थी। बड़े बड़े पेड़ों का कहीं नाम निशान तक नहीं पाया जाता था। इनकी जल-वृष्टि और जलवायु भी स्टेपीज की ही सी रहा करती थी।

यहाँ के जंगली जानवरों में सबसे प्रसिद्ध 'विसन' माना जाता था जिसके झुंड के झुंड इधर उधर फिरा करते थे। यह 'विसन' एक बहुत ही विचित्र जानवर है। इसका कंधा और इसकी छत्ता तो बहुत ही चौड़ा और बड़ा हुआ करता है किन्तु पिछले पाँव बहुत ही छोटे और चिकने हुआ करते हैं। आगे के पाँव छोटे, मोटे और फैले रहा करते हैं। इसका सिर बहुत बड़ा और झबरा हुआ करता है जो कि आमतौर से नीचे की ओर लटका रहता है। सिर के बड़े बड़े बालों के बीच में अर्धचन्द्राकार छोटे छोटे सींग हुआ करते हैं। इसकी पीठ के अगले भाग में एक ऊँची और बालदार डील हुआ करती है किन्तु इसकी पूंछ बहुत ही छोटी पाई जाती है जिसके सिर में बालों का एक घना गुच्छा हुआ करता है। 'विसन' को छोड़ कर प्रेरीज़ में चितरे हिरन, जंगली कुत्ते और मृगादिक भी पाये जाते थे।

रेडइंडियन्स का सारा जीवन इन्हीं जानवरों के ऊपर निर्भर रहा करता था। इन्हीं से उन्हें खाने को गोश्त, पहिनने को कपड़े तथा बर्तन आदि के लिये हड्डियाँ और सींग मिला करते थे। हिरन और पहाड़ी बकरों की खाल सुखा और सिझा कर कपड़ों के काम में लाई जाती थी। यह ना कहा नहीं होगा कि यह सब काम औरतें ही किया करती थीं।

इनके साधारण कपड़ों में एक लम्बा कोट, लंबे मोजे जो पाँव के ऊपर से कमर तक रहा करते थे और मुलायम जूते या 'मोकैसिन्स' ही अधिक जरूरी थे। कभी कभी ये कपड़े घुंघुचियों और चिड़ियों के मुलायम पंखों से सजा भी लिये जाते थे। यदि किसी व्यक्ति ने किसी बड़े जानवर का शिकार किया या अपने किसी शत्रु को मार डाला तो उसके कुछ बाल पाँव के मोजों या हाथ की बाहों में खोंस लिये जाते थे। बड़े बड़े योधा तो अपनी लड़ाइयों की सारी कहानी ही अपने कोट के ऊपर छाप लिया करते थे। स्त्रियों और मर्दों के कपड़ों में केवल इतना ही अंतर पाया जाता था कि औरतों के चोगे कुछ अधिक लम्बे हुआ करते थे। जाड़े के दिनों के लिये स्त्री या पुरुष दोनों के पास 'बिसन' की खाल का एक लंबा लबादा रहा करता था।

रहने के लिये इन लोगों को भी खेमों से ही काम चलाना पड़ा करता था; क्योंकि दिन रात शिकार की तलाश में रहने के कारण ये लोग मिट्टी या पत्थर के घर बनाकर एक निश्चित स्थान पर नहीं रह सकते थे। इनके खेमे जो 'विगवैम' कहे जाते हैं, किरघियों के 'युर्त' से बहुत कुछ मिलते जुलते पाये जाते थे। अन्तर केवल यह था कि इनके बाहर, रहने वालों की बहादुरी के सारे चित्र खिंचे रहते थे।

इनके पुराने अस्त्र शस्त्र भी किरघियों के से ही पाये जाते थे। किन्तु आज कल बन्दूकों और छूरियों का प्रयोग बढ़ता जाता है। इनका मुख्य भोजन जानवरों, चिड़ियों और मछलियों का गोश्त था जिनमें से हिरन, भालू, बिसन, चितरा, साँभर मछली, मुर्गा और पेड़की आदि का गोश्त अदल बदल कर खाया जा सकता था। बसन्त के दिनों में रसभरी मकोय, बेर, और अन्य कई प्रकार के फल फूल भी मिल जाया करते थे। बिसन की जीभ इन लोगों का सबसे स्वादिष्ट भोजन माना जाता था।

आने जाने के लिये यूरोपीय लोगों के आने से पहिले इनके यहाँ घोड़े नहीं पाये जाते थे, इसलिये ये लोग ज्यादातर पैदल ही चला फिरा करते थे। जाड़े के दिनों में गहरी बर्फ पर चलने के लिये खास तौर के जूते काम में लाये जाते थे। नदियों में आने जाने के लिये बर्च की छाल और हलकी लकड़ी की डोंगियाँ बनाई जाती थीं जो कि एक ही पतवार के द्वारा खेई जा सकती थीं। इन डोंगियों के द्वारा ये लोग नदियों और झीलों में बहुत दूर दूर तक आ जा सकते थे। जहाँ कहीं जल-प्रपात मिल जाया करते थे वहाँ ये डोंगियाँ उठाकर एक स्थान से दूसरे स्थान में डाल दी जाती थीं। उत्तर की ओर ये लोग 'हडसन' झील और दक्षिण की ओर 'मिसीसीपी' और 'मिसूरी' के संगम तक चले आया करते थे। आजकल इन नदियों और झीलों में बड़े बड़े धुआँकश जहाज चला करते हैं और जल-प्रपातों को बचाने के लिये बड़ी बड़ी नहरें खोद दी गई हैं। जहाज पर आने जाने के लिये रेलों और घोड़ों का प्रयोग किया जाता है। शिकागो जैसे नगरों में हजारों और लाखों जानवर गोश्त के लिये रोजाना मारे जाते हैं। चरागाहों और खेतों में बिन

प्रति दिन उन्नति होती जा रही है और इसके लिये रोज़ कोई न कोई नया आविष्कार किया जाता है। इस प्रकार नये आगन्तुकों के नवीन आविष्कारों के सामने पुराने रेड इंडियन्स और उनके पुराने तरीक़े बहुत तेज़ी के साथ बदलते जा रहे हैं। खान-पान और रहन-सहन सभी में ये लोग आधुनिक होते जा रहे हैं, किन्तु इसके साथ ही साथ अँग्रेज़ों की बढ़ती संख्या के सामने इन बेचारों को या तो पहाड़ों और कम उपजाऊ जगहों की ओर जाना पड़ रहा है या उनकी संख्या ही धीरे धीरे बहुत कम होती जा रही है।

पैटागोनियन स्टेप् - दक्षिणी अमेरिका के सब से दक्षिणी भाग में भी स्टेप् से मिलता जुलता एक प्रदेश है जिसे पैटागोनिया का स्टेप् कहा जाता है। इसके पूर्वी भाग में घास की एक पतली पट्टी है जिसमें कुछ पानी भी बरस जाया करता है इसलिये इस हिस्से में यूरोप से आये हुए अँग्रेज़ों के वंशज चरागाही का काम किया करते हैं। इनके मुख्य जानवर भेड़, बकरी और घोड़े हैं।

घास की इस पतली पट्टी के पश्चिम का भाग ऊसर पठार या कटीली झाड़ियों का रेगिस्तान है। कहीं कहीं पर थोड़ी बहुत घास भी पाई जाती है। पैटागोनिया का यह भाग रेड इंडियन्स के भाईबन्द दूसरे 'इंडियन्स' के रहने का स्थान है। यहाँ के मुख्य जानवर हैं—ग्वानको (आधा ऊँट और आधा भेड़) और रिया (एक प्रकार का शुतुर्मुर्ग)। 'ग्वानको' विशेष कर कटीली झाड़ियों के प्रदेश में पाया जाता है और 'रिया' पहाड़ की तराई में, जहाँ घास कुछ बड़ी पाई जाती है और पानी भी काफ़ी मिला करता है। ये ही दो जानवर यहाँ के रहने वालों

को करीब करीब सभी आवश्यकतायें पूर्ण कर दिया करते हैं। खाने के लिये इन्हीं का गोश्त और पहिनने के लिये इन्हीं की खाल और इन्हीं के बालों के कपड़े। इन्हीं की टाँगों के निचले भाग को चमड़े के साथ काटकर पहिनने के लिये जूते भी बनाये जाते हैं। चूँकि इन पैरों के निशान बहुत बड़े बन जाया करते हैं। इसी लिये स्पेन वालों ने पहिले पहल इस प्रदेश का नाम पैटागोनिया (बड़े पावों का प्रदेश) रक्खा था। 'रिया' नामक जानवर उड़ नहीं सकता और वह जमीन के दरारों में अपने अंडे रक्खा करता है। इंडियन्स लोग इनके अंडों को खाते और इनके छोटे छोटे रोओं के कपड़े बनाया करते हैं। 'रिया' के अंडे सितम्बर और अक्टूबर के महीने में इकट्ठे किये जाते हैं। नवम्बर से फरवरी तक दो दो महीने के 'ग्वानको' पकड़े जाते हैं। क्योंकि इनके ही रोयें सबसे अधिक गरम और मुलायम हुआ करते हैं। इन लोगों का शेष जीवन रेडइंडियन्स से मिलता जुलता पाया जाता है। इनके खेमों को 'टोल्डो' कहा करते हैं।

पैटागोनिया के दक्षिण टेरा-डेल-फ्यूगो (अग्नि का प्रदेश) में इंडियन्स की दूसरी जाति पाई जाती है। इन लोगों का जीवन मछलियों और ग्वानको आदि के ऊपर ही निर्भर रहा करता है। रेड-इंडियन्स की भाँति ये लोग भी चौबों को पकड़ने के लिये 'कैनोज़' (लकड़ी और छाल की डोंगियाँ) का प्रयोग किया करते हैं। इनके दक्षिण वाले द्वीपों के रहने वाले उत्तरी अमेरिका के इस्कीमोज से बहुत कुछ मिलते जुलते पाये जाते हैं।

अर्जेन्टाइन के पम्पाज़—उत्तरी अमेरिका के प्रेरीज से मिलते

जुलते दक्षिणी अमेरिका में पम्पाज पाये जाते हैं। इनका भी विस्तार स्टेप् और प्रेरीज से थोड़ा ही कम पाया जाता है। ऐन्डीज के पूर्वी ढाल पर होने के कारण इन मैदानों में भी पानी बहुत कम बरसा करता है, और इनकी जलवायु भी शीतोष्ण पाई जाती है इसलिये स्वाभाविक तौर से ये मैदान गेहूँ की खेती और चरागाहों के योग्य पाये जाते हैं। इनके अधिकांश भागों में घास की ऊँचाई तीन या चार फीट पाई जाती है किन्तु पूर्व के मिट्टीदार नम भागों में यही घास आठ या दस फीट ऊँची हो जाया करती है। कहीं कहीं तो यह इतनी घनी हुआ करती है कि घुड़सवार उसके अन्दर छिप जाया करते हैं। बसन्त के दिनों में जब इस घास में फूल आया करते हैं तो इसकी प्राकृतिक सुन्दरता मनुष्य के वर्णन के परे हो जाया करती है। बस, सारा मैदान रंग बिरंग फूलों से कढ़े हुए हरे गलीचों की भाँति मालूम हुआ करता है। विशेष कर संध्या और सूर्योदय का समय तो और भी सुहावना लगा करता है।

यद्यपि इन मैदानों के बहुत से भाग सूखे पाये जाते हैं तो भी बसन्त में पूर्व की ओर काफी पानी बरस जाया करता है। इस प्रकार उपजाऊ जमीन बसन्त का पानी और सूखी हुई गरमी की ऋतु, तीनों गेहूँ की पैदावार के लिये बहुत ही उपयुक्त हुआ करती हैं। यही कारण है कि उत्तरी अमेरिका के प्रेरीज की भाँति पम्पाज भी गेहूँ की पैदावार के लिये संसार के अग्रगण्य प्रदेश होते जा रहे हैं। वर्तमान समय में यहाँ भी खेती का सारा काम वैज्ञानिक उपयोगों के द्वारा किया जाता है।

यहाँ के चरवाहे ग्वाले या 'ग्वाकूज' कहे जाते हैं। ये लोग चौड़े किनारों के बड़े बड़े हैट, चौड़ी मोहरी के पतलून, कड़े जूते और चमकते

हुए पंकोश (लबादे) पहना करते हैं। इनका भोजन जानवरों का दूध और गोश्त ही हुआ करता है। अब आजकल व्यापार के द्वारा नाज का



पम्पाज और गोआचो

भी उपयोग बढ़ता जाता है। किरघियों की भाँति ये लोग भी बहुत अच्छे घुड़सवार हुआ करते हैं और यह काम उन्हें बालपन से ही सिखाया जाता है। घोड़े की सवारी में ये लोग इतने दक्ष हुआ करते हैं कि सरपट भागते हुए घोड़ों की पीठ पर खड़े होकर जानवरों को चराना और एक घोड़े की पीठ से दूसरे पर कूद जाना इनके लिये बायें हाथ का खेल हुआ करता है। इनके कामों में सबसे विचित्र काम जानवरों का चराना हुआ करता है। इसके कारण इनके जीवन का अधिकांश भाग घोड़े की पीठ पर ही बीता करता है।

किरघियों की भाँति इन लोगों के पास भी दो दो हज़ार ढोर पाये

जाते हैं जिनकी देखभाल ये लोग घोड़ों पर चढ़े चढ़े किया करते हैं। चरागाही के काम में ये लोग लैसो (गोफन) और 'बोला' (फंदा) का अधिक प्रयोग किया करते हैं। लैसो चर्बी से घुटी हुई चमड़े की डोर हुआ करती है जिसका एक सिरा काठी में बंधा रहता है और दूसरे सिरे में एक सरकने वाला फंदा बना होता है। ग्वाकूज़ लोग इसे खूब घुमाकर जहाँ चाहते हैं वहाँ फेंक देते हैं। 'बोला' में चर्बी से घुटी हुई तीन डोर हुआ करती हैं जिनके एक सिरे में चमड़े से मढ़े हुए पत्थर बंधे रहते हैं और दूसरा सिरा इकट्ठा करके एक लम्बी डोर में बाँध दिया जाता है; इसे भी ये लोग अपने सर के चारों ओर घुमा कर जहाँ चाहते हैं वहाँ फेंक दिया करते हैं। इन दोनों की मदद से ग्वाकू लोग बदमाश से बदमाश जानवार को दो मिनट में ही सीधा कर लिया करते हैं। ये लोग अपने जानवरों के लिये कोई खास मकान नहीं बनाया करते बल्कि एक बड़ा लम्बा चौड़ा बाड़ा घेर दिया करते हैं। आमतौर से तो इनके जानवर छुट्टा ही चरा करते हैं किन्तु जब इन्हें बेचने के लिये बाँधना पड़ा करता है तो ये लोग तेज घोड़ों पर पर चढ़ कर चारों ओर से उन्हें घेर लाया करते हैं और तब 'लैसो' और 'बोला' की मदद से जितने चाहते हैं उतने पकड़ लिया करते हैं।

पहिले तो इन मैदानों में बहुत कम जानवर पाये जाते थे किन्तु आजकल इनकी संख्या कई लाख से अधिक पाई जाती है। इसलिये अर्जेन्टाइन का देश चरागाही की पैदावार जैसे दूध, मक्खन, गोश्त, ऊन और चमड़े आदि के व्यापार में दिन दूनी और रात चौगुनी तरक्की करता आ रहा है। ये चीजें कच्ची, सूखी और जमाई हुई हर प्रकार से

यूरोप और दूसरे देशों को भेजी जाती हैं। 'फ्रेवेन्तस' और 'पेसन्दू' इनके लिये मुख्य स्थान तथा 'ब्यूनस एरीज और मान्टी विडियो' 'खास' बन्दरगाह हैं। इस व्यापार की उन्नति का पता इसी बात से लगाया जा सकता है कि पिछले बीस वर्षों में १७००० भेड़ से १२०००० जानवर और ३०,०००००० भेड़ें जीवित और मृत बाहर भेजी गई थीं।

वेल्ड और वहाँ के 'बुअर' लोग—एशिया के स्टेप और उत्तरी अमेरिका के प्रेरीज से मिलते जुलते दक्षिणी अफ्रीका में वेल्ड और कारू के चरागाह तथा पठार पाये जाते हैं। वेल्ड का अधिकांश भाग ड्रेकेन्स बर्ग के पीछे ट्रान्सवाल, ओरेंज फ्री स्टेट और रोडेशिया के प्रान्तों में पाया जाता है। पहाड़ों के पीछे होने के कारण इनमें भी बारिश बहुत कम हुआ करती है इसलिये इनका अधिकांश भाग कटीली झाड़ियों और छोटी छोटी घास के मैदानों से भरा रहा करता है। इनके उत्तरी-पूर्वी भाग में कुछ दलदल और जंगल भी पाये जाते हैं और वहाँ की घास भी कुछ बड़ी हुआ करती है। इसे 'बुश-वेल्ड' कहा जाता है। वेल्ड के दक्षिण छोटे और बड़े कारू के पठार पाये जाते हैं जो सीढ़ीदार हुआ करते हैं। इनका भी अधिकांश भाग सूखा और चरागाही के योग्य ही पाया जाता है।

घास के वेल्ड में थोड़ी बहुत खेती और ज्यादातर चरागाही का काम किया जाता है। खेती में गेहूँ, मकाई, राई और फल-फूल पैदा किये जाते हैं। चरागाही में भेड़, बकरियाँ और दूसरे जानवर चराये जाते हैं। बुश वेल्ड में जंगली जानवर जैसे हाथी, गैंडे, भैंसे, साँभर और शेर चीते आदि भी पाये जाते हैं। नदियों में दरियाई घोड़े, कछुए और दूसरे

जानवर पाये जाते हैं। बुश वेल्ड के निचले भागों में 'टीसी' नामक मक्खी भी बहुत पाई जाती है जिससे जानवरों का बड़ा नुकसान हुआ करता है।

इन वेल्डों में रहने वाले 'बुअर' कहे जाते हैं जो डच लोगों के वंशज हैं। इनका रहन-सहन और काम काज किरघी लोगों से बहुत कुछ मिलता जुलता पाया जाता है। ये लोग विशेष कर चरागाही का ही काम किया करते हैं और खेती पाती तथा व्यापार आदि के विरुद्ध हुआ करते हैं। ये लोग साहसी, गंभीर और स्वतंत्रता प्रेमी पाये जाते हैं। इनका शरीर सुडौल और मजबूत हुआ करता है। ये लोग बहुत ही अच्छे निशाने बाज और घुड़सवार हुआ करते हैं। चूँकि आज कल अंग्रेज आगन्तुकों ने 'प्रीटोरिया और विटवाटर्स रैंड' के आस पास सोने की मालदार खदाने खोज निकाली हैं, इसलिये अब यहाँ बाहरी लोगों की संख्या बढ़ती जाती है और इसका बहुत कुछ प्रभाव 'बुअर' लोगों के जीवन पर पड़ता जा रहा है।

दक्षिण के कारू नामक पठारों में अंग्रेजों की ही अधिकता पाई जाती है। इनके पूर्वी किनारे पर गेहूँ, फल और मक्का आदि की खेती अधिक की जाती है किन्तु बीच और पश्चिम के सूखे प्रदेश अब भी भेड़ और बकरियों के चरागाह ही हैं। आज कल इन प्रदेशों की सब से अधिक उपयोगिता यहाँ की सोने और हीरे आदि की खानों में मानी जाती है। किम्बरली इसका मुख्य केन्द्र स्थान है।

सूदान और वहाँ के रहने वाले हब्शी— यहाँ तक तो हमने स्टेप्स यानी ठंडे घास के मैदानों के बारे में पढ़ा। अब हम गरम प्रदेशों

के घास के मैदानों के बारे में कुछ लिखेंगे। यह तो हम पहिले ही बता चुके हैं कि गरम प्रदेशों में पाये जाने वाले घास के मैदान 'सैवन्नाज' कहे जाते हैं और ये घने ऊष्ण वनों और गरम रेगिस्तानों के बीच में हुआ करते हैं।

यों तो लगभग सभी महाद्वीपों के ऊष्ण और तर भागों में थोड़े बहुत सैवन्नाज पाये जाते हैं किन्तु मानव-जीवन की विचित्रता के विचार से अफ्रीका के सूदान नामक सैवन्नाज सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। ये अट-



नीग्रो लोग

लांटिक महासागर के किनारे से अरब और लाल सागर के किनारे तक फैले हुए हैं। कहीं कहीं तो इनकी चौड़ाई ८००० मील से भी अधिक पाई

जाती है। प्राकृतिक दशा के विचार से सैवन्नाज कुछ ऊँचे नीचे मैदान हैं जिनकी आबोहवा कुछ अधिक गरम और जलवृष्टि कुछ कम पाई जाती है। इनमें छुच्छेदार घास आदमियों के बराबर ऊँची उगा करती हैं।

सूदान के रहने वाले 'नीग्रो' (हब्शी) कहे जाते हैं। ये लोग काले, नाटे और। हट्टे कट्टे पाये जाते हैं। इनके बाल काले, कड़े और खड़े, होंठ मोटे और भद्दे तथा मत्थे चौड़े और चिपटे हुआ करते हैं। सूदान में इनकी बीसों जातियाँ पाई जाती हैं जिनमें ह्वाइट नील के पूर्व की ओर शीलक और मध्य में मसाई, दिन्का और वारी लोग अधिक प्रसिद्ध हैं।



सूदान में गेहूँ का एक खेत

हम यह बता चुके हैं कि इन हब्शियों की बीसों जातियाँ पाई जाती हैं जो रहन-सहन और आचार-विचार में एक दूसरे से भिन्न हुआ करती हैं। सामाजिक और मानसिक उन्नति में भी ये जातियाँ एक दूसरे से भिन्न पाई जाती हैं। जिस प्रान्त के लोग जितना ही बाहर के लोगों के सम्पर्क में आते गये हैं वे उतने ही अधिक सभ्य और शिक्षित पाये जाते हैं। उदाहरणार्थ नाइजीरिया के सूदानी अपने और सब भाइयों से अधिक सभ्य और सम्पन्न माने जाते हैं। बीच के भागों में जहाँ अभी बाहरी लोगों का अधिक प्रभाव नहीं पड़ सका, ये लोग अब तक अपनी उसी प्रारंभिक दशा में पाये जाते हैं।

नाइजीरिया और दूसरे उन्नति-शील प्रदेशों के हब्शी लोग कपास, केले, ईख, नारियल, चावल और तम्बाकू की खेती करते, गाय, और भेड़, बकरी चराते तथा हाथीदाँत, रबड़ और दूसरी जंगली पैदावारों की तिजारत किया करते हैं। आज कल 'गिनी-कोस्ट' के उपनिवेशों में सोने-चाँदी, लोहे और कोयले की खानें भी पाई जाती हैं जिनमें हजारों हब्शी काम किया करते हैं। अशिक्षित भागों के हब्शियों का मुख्य पेशा शिकार करना ही है। कहीं कहीं पर वे लोग भी थोड़ी बहुत खेती कर लिया करते और दस-बीस जानवर चरा लिया करते हैं। सूडान के बहुत से भागों में अब तक शेर, चीते, गैंडे और हाथी पाये जाते हैं इसलिये चरागाही का काम प्रेरीज या पम्पाज की भाँति निश्चिंतता पूर्वक नहीं किया जा सकता। चरवाहों को रोज ही अपने जानवरों को रात्रि में एक सुरक्षित बाड़े के अन्दर बन्द रखना पड़ता है। यदि वे ऐसा न करें तो जंगली जानवर उनके बहुत से ढोर खा जायँ। खेती में भी बन्दर

बड़ा नुकसान किया करते हैं इसलिये बहुत से लड़के इन्हें भगाने के लिये नौकर रक्खे जाते हैं।

यहाँ के लोगों का मुख्य भोजन जानवरों का गोश्त, चावल, मक्का और फल हैं। दूध भी खूब पिया जाता है और उसकी खीर और पनीर भी बनाई जाती है। जंगली भागों के हब्शी ज्यादा तर गोश्त, जंगली फल और थोड़ा बहुत नाज खाया करते हैं।

गर्मी अधिक पड़ने के कारण ये लोग कपड़े बहुत कम पहिना करते हैं; इनमें से अधिकांश घर के बनाये हुए सूती कपड़े ही हुआ करते हैं। करीब करीब प्रत्येक घर की औरतें चरखे और करघे चलाया करती हैं। जेवरों में घुंघुचियों के हार, पीतल और लोहे के कड़े और चूड़ियाँ अधिक पहिनी जाती हैं। लोहे, ताँबे और पीतल की और भी चीजें बनाई जाती हैं। इनमें से बहुत से लोग सोनारों और लोहारों के भी काम कर सकते हैं और तलवार, कटार, चाकू, कैंची, भाले, अँगूठी और छोटे मोटे गहने बना सकते हैं। जानवरों की खाल से जीन, काठी, पखौचे और खड़ाऊँ बनाया करते हैं। इन्हीं के बने हुए थैलों में मक्खन, चर्बी और शहद भी रक्खी जाती है। पानी पीने और खाना पकाने के लिये मिट्टी के भी बर्तन बनाये जाते हैं।

यही नहीं, बहुत से हब्शी अच्छे व्यापारी भी हुआ करते हैं और दक्खिन की पैदावार को उत्तर की ओर पहुँचाया करते हैं। कैनो इन लोगों का एक व्यापारिक केन्द्र है जिसके चारों ओर लगभग १९ मील लम्बी शहर-पनाह बनी हुई है। यहाँ पर हमें सूदान की चीजों को छोड़ कर यूरोपीय देशों की बनी हुई चीजें भी मिल सकती हैं। क्रय विक्रय सिक्कों

में नहीं, किन्तु बदले से हुआ करता है। यहाँ के सिक्कों में कौड़ियाँ और लोहे के चिपटे टुकड़े ही अधिक प्रचलित पाये जाते हैं।



सूदान की एक बाजार

हब्शियों का जीवन किरगीज़ या इस्कीमो आदि बनजारों का सा जीवन नहीं हुआ करता, इसलिये ये लोग घूमने फिरने के बजाय एक स्थान पर घर बनाकर रहा करते हैं और वहीं खेती करते, ढोर चराते या तिजारत किया करते हैं। इनके घर घास-फूस और पत्तियों के झोपड़े ही हुआ करते हैं जिनमें दो दरवाज़े रहा करते हैं; किन्तु खिड़कियाँ नहीं पाई जातीं; अतः इनका भीतरी भाग अँधेरा ही रहा करता है। यदि ये लोग अपने झोपड़ों में खिड़कियाँ भी रख दें तो सूर्य की किरणें भीतर आकर उसे बहुत ही गरम कर दें। दीवारों पर बीसों टोकरे लटके रहते हैं और

नीचे भेड़ और बकरियाँ गड़ी रहती हैं। इनकी चारपाइयाँ लकड़ी की और कटोरे तथा चम्मच आदि भी लकड़ी के ही बने होते हैं। जहाँ तक हो सकता है, ये लोग अपने आस-पास की चीज़ों से अपने जीवन को काफ़ी सुखमय बना लिया करते हैं। सफ़ाई के लिये झाड़ू और दातुन का भी प्रयोग पाया जाता है। इस प्रकार एक स्थान पर जम कर रहने के कारण इन लोगों के पास गृहस्थी का सामान भी अधिक पाया जाता है और भावों का विकाश तथा परिवर्तन भी अधिक हुआ करता है। धार्मिक विचारों के अनुसार ये लोग तीन भागों में विभाजित किये जा सकते हैं। पश्चिम की ओर ईसाई धर्म तथा पूर्व और मध्य में मुसलमान धर्म के मानने वाले अधिक पाये जाते हैं। बीच में अब तक लोग ज़्यादातर हमारे यहाँ के कोल और भीलों का सा धर्म मानते आते हैं जिसमें भूत और प्रेत आदि की अधिक प्रतिष्ठा पाई जाती है।

दक्षिणी अफ्रीका के ज़ूलू लोग—सूदान की भाँति विषुवत् रेखा के दक्षिण भी सैवन्नाज पाये जाते हैं जिनमें हब्शियों से मिलते जुलते ज़ूलू लोग रहा करते हैं। इन लोगों में से भी कुछ खेती करते और कुछ ढोर चराया करते हैं। इनका खान-पान और इनके कपड़े हब्शियों से मिलते जुलते पाये जाते हैं। इनके झोपड़े शहद की मक्खी के छत्तों की भाँति गोलाकार हुआ करते हैं। इनमें भी खिड़कियाँ नहीं पाई जातीं और दरवाज़ा इतना छोटा हुआ करता है कि लोग घिसट कर भीतर घुसा करते हैं। ये दरवाजे रात में टट्टियों के द्वारा बन्द कर दिये जाते हैं। इनके बहुत से झोपड़े मिलाकर 'क्राल' कहे जाते हैं जिसे हम लोग गाँव या पुरवा कहा करते हैं। इसके चारों तरफ़ काँटेदार विहभाड़ी

(चहार दीवारी) रहा करती हैं जिसमें सिर्फ एक ही फाटक हुआ करता है। भौगोलिक परिस्थितियाँ करीब करीब एक सी ही होने के कारण हब्शी और जूलू लोग बहुत कुछ मिलते जुलते पाये जाते हैं। यद्यपि दोनों के बीच में इतना बड़ा और घना जंगल पाया जाता है कि दोनों में से एक भी इसे पार नहीं कर सकते। अन्तर केवल यह है कि जूलू लोग उतने सभ्य और शिक्षित नहीं हैं जितने हब्शी लोग। न तो ये लोग कारीगर ही हुआ करते हैं और न बड़े बड़े गाँवों में ही रहा करते हैं।

आस्ट्रेलिया के डाउन्स--आस्ट्रेलिया के डाउन्स घास के वे शीतोष्ण मैदान हैं जो ग्रेट डिवाडिंग रेंज के पश्चिम मरे और डार्लिंग बेसिन तथा दक्षिणी-पश्चिमी किनारे पर पाये जाते हैं इनकी प्राकृतिक दशा और जलवायु प्रेरीज की सी पाई जाती है। इसलिये यहाँ के लोगों का जीवन भी वहाँ के लोगों से बहुत कुछ मिलता जुलता पाया जाता है। यहाँ के आदि निवासी या तो नये अंग्रेज आगन्तुकों के द्वारा मार डाले या महाद्वीप के अधिक उजाड़ भागों की ओर भगा दिये गये हैं। अब आज कल इन मैदानों में अंग्रेजों के ही वंशज अधिक पाये जाते हैं जिनके मुख्य पेशे चरागाही, खेती और खान खोदना है। रिवरिना यानी मरे और डार्लिंग के मध्यवर्ती प्रदेश में गेहूँ की खेती की अच्छी उन्नति की जा रही है। जैसे जैसे हम लोग पश्चिम की ओर जाते हैं वैसे ही वैसे आबोहवा अधिक सूखी मिलती जाती है यही कारण है कि उधर खेती और चरागाही भी कम होती जाती है। पूर्वी भाग में पानी की कमी गहरे कुओं (आर्टीजन वेल) और नहरों के द्वारा पूर्ण कर ली जाती है, तब भी किसी किसी साल करोड़ों भेड़ें मर जाया करती हैं। पिछली इस

प्रदेश का मुख्य बन्दरगाह है जो ऊन, गोश्त, और चमड़े आदि के निष्क्रय का केन्द्र माना जाता है।

आस्ट्रेलिया के डाउन्स की भाँति न्यूज़ीलैंड के दक्षिणी द्वीप के पूर्वी भाग में कैन्टरबरी के मैदान हैं जिनमें चरागाहों का काम खूब किया जाता है।

घास के मैदानों का भविष्य—यहाँ तक तो हमने संसार के घास के मैदानों की प्राकृतिक दशा और वहाँ के रहने वालों पर उसके प्रभाव को देखा; अब इस बात पर भी थोड़ा विचार करना है कि आखिर इन मैदानों का भविष्य क्या होगा। उपरोक्त पंक्तियों में यह तो हमने देख ही लिया कि संसार के सभी घास के मैदान चरागाहों के लिये सब से अधिक उपयुक्त स्थान हैं इसलिये यह निश्चय है कि ये मैदान गोश्त, ऊन, चमड़ा, मक्खन और दूध आदि की पैदावार के लिए अभी बहुत दिनों तक केन्द्र बने रहेंगे। किन्तु इसके साथ ही साथ इन प्रदेशों के नये आगन्तुकों ने यह भी साबित कर दिया है कि इन मैदानों में खेती भी खूब अच्छी की जा सकती है। यही कारण है कि प्रेरीज़, पम्पाज़ और आस्ट्रेलियन डाउन्स के हजारों एकड़ जो पहिले चरागाहों के काम में लाये जाते थे आज गेहूँ, मक्का, राई और फल आदि की खेती के काम में लाये जा रहे हैं। इस विषय में सब से बड़ी कठिनाई पानी की हुआ करती है; किन्तु नहरों और आर्टीजन कुओं ने इस कठिनाई को भी बहुत अंशों तक दूर कर दिया है। इसलिये यह भी निश्चय है कि ये मैदान आगे चल कर नाज के भी भंडार बनाये जायँगे। रेलों, सड़कों और वर्तमान वैज्ञानिक उपयोगों का प्रयोग बढ़ते जाने से व्यापार की भी उन्नति होती जायगी।

अतः यह भी आशा की जा सकती है कि भविष्य में इन स्थानों की जन-संख्या भी आज से कई गुनी पाई जायगी। इस प्रकार जो देश आज थोड़े से बनजारों के देश हैं, वे आगे चल कर शक्तिशाली राष्ट्र बनाये जा सकते हैं। संसार की जनसंख्या जिस हिसाब से बढ़ती जा रही है उसको देखते हुये यह मानना पड़ता है कि आगे चलकर इन प्रदेशों की ओर एक अच्छी दौड़ मचेगी। इसका प्रभाव यही होगा कि या तो यहाँ के वर्तमान निवासी बाहरी आगन्तुकों से मिल-जुल कर रहेंगे या कि जीवन संग्राम में अधिक सुसज्जित लोगों से हराये जाकर उजाड़ खंडों की ओर भगा दिये जायँगे जैसा कि आज कल रेड इंडियन्स और हशियों के ऊपर बीतता आ रहा है। चरागाही या कृषि प्रधान देश होने के कारण लोहे की चीज़ें बनाने वाले बड़े बड़े कारख़ाने नहीं खोले जा सकते बल्कि मक्खन बनाने, कपड़े बुनने और आटा पीसने आदि की ही कलें चलाई जा सकती हैं। किन्तु इन चरागाहों के कुछ भाग ऐसे भी हैं जहाँ कोयले, लोहे और सोने आदि की खानें भी पाई जाती हैं। आगे चलकर इन प्रदेशों में (दक्षिणी अफ्रीका आस्ट्रेलिया) ये पेशे भी एक प्रमुख स्थान ग्रहण कर सकते हैं। अफ्रीका और दक्षिणी अमेरिका के सैवन्नाज जंगली पैदावारों में भी अधिक उपादेय बनाये जा सकते हैं। इस प्रकार जीवन की आधुनिक सुख सामग्रियों को खपाने और विकाश मय-जीवन फैलाने के लिये ये मैदान अच्छे क्षेत्र पाये जा सकते हैं।

सातवाँ अध्याय

संसार के वन-प्रदेशों का जीवन

(अ) शीतोष्ण-वन

पिछले अध्यायों में हमने रेगिस्तानों और घास के मैदानों के विषय में बहुत कुछ पढ़ और जान लिया है। अब इस अध्याय में संसार के जंगली प्रदेशों (गहन वनों) के विषय में कुछ पढ़ा जायगा।

जंगलों के बनने का कारण—यह तो अब तक में हमारे पाठकों ने समझ ही लिया होगा कि घास-पात और पेड़-पौधों के उगने और बढ़ने के लिये दो चीज़ों—जल-वृष्टि और जल वायु—अत्यन्त ही आवश्यक हैं। वास्तव में किसी प्रदेश का रेगिस्तान, चरागाह, जंगल या उपजाऊ प्रान्त होना इन्हीं दो बातों के ऊपर निर्भर ही रहा करता है। टन्ड्रा और सहारा में ज़मीन के काफ़ी उपजाऊ होते हुये भी इन दोनों चीज़ों के यथेष्ट अनुकूल न होने के कारण कुछ भी पैदा नहीं हो सकता और इसीलिये ये प्रदेश उजाड़ और निर्जन पाये जाते हैं। रेगिस्तानों के बाद संसार के कुछ प्रदेश ऐसे पाये जाते हैं जहाँ की जलवृष्टि और जलवायु केवल घास के ही लिये उपयुक्त हुआ करती है, इसलिये ऐसे प्रदेश चरागाहों में परिवर्तित हो गये हैं जिनका हाल पिछले अध्यायों में हमने पढ़ लिया है। अब हमें यह भी जान लेना चाहिये कि रेगिस्तानों और चरागाहों से थोड़ी ही अधिक और अनुकूल हो जाने से यही जल-वृष्टि और जलवायु

संसार के बहुत से प्रदेशों को सघन वन बना दिया करती है। इस प्रकार दस इंच या उससे कम जल-वृष्टि होने और जलवायु के अत्यन्त गरम या सर्द हो जाने से संसार के रेगिस्तान बन जाया करते हैं। यदि यही जल-वृष्टि दस इंच से २५ या ३० इंच सालाना हो जाय और जलवायु कुछ मातदिल बन जाय तो पृथ्वी के चरागाह बन जाया करते हैं। अब यदि यह जल-वृष्टि ४० या ६० इंच या इससे भी अधिक सालाना हो जाय और जलवायु कम से कम ५० डि० या उससे अधिक पाई जाय तो उन प्रदेशों में अवश्य जंगल पाये जायँगे; किन्तु इसके साथ ही साथ यह भी आवश्यक है कि जल-वृष्टि नियमित हो। किन्हीं दो महीनों में अत्यधिक जल-वृष्टि हो जाने और फिर शेष महीनों में सूखा पड़ जाने से काम नहीं चल सकता। इस प्रकार संसार के रेगिस्तानों, घास के मैदानों और जँगलों को विभाजित करने वाली कोई निश्चित रेखा नहीं बताई जा सकती; क्योंकि किसी स्थान की जलवायु केवल उसके अक्षांशों से ही निर्धारित नहीं की जा सकती। उसके लिये उस स्थान की ऊँचाई, नीचाई समुद्र से दूरी, उसके आसपास पाये जाने वाले पहाड़ के रुख, वहाँ पर चलने वाली हवाओं और उसके धरातल का भी विचार रखना पड़ा करता है। इस प्रकार अलास्का और मैकन्जी नदी की तरेटी में आर्कटिक वृत के १०० मील उत्तर तक भी जंगल पाये जाते हैं, किन्तु वे ही जंगल पूर्वी कैनाडा में उस वृत के ५०० मील दक्षिण उत्तर आते हैं, क्योंकि क्यूरोशिओ धारा के कारण पहिले स्थानों की जलवायु गरम और लेब्राडर की ठंडी धारा के कारण दूसरे स्थानों की जल-वायु ठंडी रहा करती है। इसी प्रकार नार्वे और लैपलैंड में यह फिर ऊपर उठ जाकर श्वेत सागर के

घास नीचे उतर आती है। इस प्रकार ये जंगल अपने दोनों ओर घास के मैदानों में परिणत होकर फिर रेगिस्तान बन जाया करते हैं।

जंगलों की क़िस्में—संसार में जंगल दो प्रकार के पाये जाते हैं। एक तो वे जो विषुवत् रेखा के दोनों ओर फैले हुये हैं। ये संसार के ऊष्ण वन कहे जाते हैं क्योंकि यहाँ अत्यधिक बारिश के साथ गर्मी भी बहुत पड़ा करती है। दूसरे जंगल वे हैं जो टन्ड्रा के नीचे उत्तरी अमेरिका और यूरेशिया में फैले हुये हैं। ये संसार के शीतोष्ण वन कहे जाते हैं क्योंकि यहाँ की आबोहवा अत्यन्त गरम या सर्द न होकर शीतोष्ण पाई जाती है। यद्यपि यहाँ जल-वृष्टि उतनी अधिक नहीं पाई जाती तो भी जाड़े के दिनों में गिरी हुई बर्फ से पिघलने से काफी पानी हो जाया करता है।

शीतोष्ण-वन—संसार के प्रमुख शीतोष्ण-वन उत्तरी अमेरिका के उत्तरी-भाग, स्कैन्डीनेविया (यूरोप) के पठार और टन्ड्रा के दक्षिण साइबीरिया में पाये जाते हैं, जिन्हें लोग 'टैगा' कहा करते हैं। यद्यपि किसी समय में मध्य-यूरुप भी वन-प्रदेश था, किन्तु अब वहाँ के पठारों में ही थोड़े बहुत जंगल पाये जाते हैं जैसे जर्मनी के स्वार्ज़वाल्ड नामक प्रदेश में ब्लैक-फारेस्ट। इसके मैदान तो अब करीब करीब साफ़ हो कर डाले गये हैं। दक्षिण के महाद्वीपों में ऐसे जंगल केवल पहाड़ों के ढाल और पठारों में ही पाये जाते हैं क्योंकि जिन अक्षांशों में ये जंगल पाये जा सकते हैं उनमें पहुँचते पहुँचते ये महाद्वीप बहुत ही पतले और सँकरे हो जाया करते हैं।

शीतोष्ण वनों में हवा ठंडी और नम पाई जाती है। इन जंगलों के विषय में एक लेखक का कहना है कि इनकी आबोहवा का माध्यमिक



शीतोष्ण वन

मान ३८ से ४६ डिग्री तक पाया जाता है। किन्तु कभी कभी ५८ से १२२ डिग्री तक भी हो आया करती है। इस प्रकार यह सम्भव है कि

जाड़े की अत्यन्त सर्दी के साथ गर्मी के दिनों में बहुत ही अधिक गर्मी भी पाई जाय। यहाँ की जल-वृष्टि १२ से २५ इंच तक हुआ करती है और वह जाड़े के बीच में बर्फ के रूप में हुआ करती है। यहाँ का धरातल बहुत ही मामूली हुआ करता है जिसमें बालू, मिट्टी और कंकड़ मिले रहते हैं। इसलिये ऐसे स्थानों में रहने के लिये पेड़ों के अन्दर एक खास शक्ति होनी चाहिये। यहाँ की अत्यन्त ठंडक और जोरदार हवाओं से सुरक्षित रहने के साथ ही साथ इन पेड़ों को अपने खान-पान में भी बहुत ही मित-व्ययी होना पड़ता है, क्योंकि यहाँ की जमीन खाद और पानी से उतनी सम्पन्न नहीं पाई जाती। उनको बहुत ही धीरे धीरे उगना और खाने के लिये भोजन भी एकत्रित रखना पड़ता है। देवदार, सनोवर और चीड़ आदि के पेड़ इन गुणों से युक्त हुआ करते हैं। इनकी पत्तियाँ छोटी, मोटी और नुकीली हुआ करती हैं। इसलिये हवा के झोंकों का इन पर बहुत कम प्रभाव पड़ा करता है। यही नहीं, इनके गुच्छेदार मोटे भाग पर गर्मी का भी बहुत कम असर पड़ा करता है।

यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो इन पेड़ों की बनावट और इनका रहन-सहन इनकी भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार ही पाया जायगा। इनका तना नीचे की ओर मोटा, किन्तु ऊपर पतला हुआ करता है। और ऊपर जाकर सारा पेड़ ही नुकीला हो जाया करता है। इसका असर यह पड़ा करता है कि जोरदार से जोरदार हवा भी इनका कुछ बिगाड़ नहीं सकती। इसी मजबूती के लिये इनकी शाखें भी बहुत छोटी हुआ करती हैं। तने की लकड़ी के सम्बन्ध से शाखों और पत्तियों में बहुत कम

लकड़ी पाई जाती है और इसी तने की लकड़ी में ही इन पेड़ों की खुराक रस बन कर इकट्ठी रहा करती है। इस प्रकार ये पेड़ पैदा भी कम किया करते हैं और खाते भी कम ही हैं, किन्तु इकट्ठा अधिक किया करते हैं। इनका जीवन इनके चारों ओर की परिस्थितियों के अनुकूल ही मितव्ययी और मन्दगामी हुआ करता है। क्योंकि अधिक खर्चीले पेड़ हवा की थोड़ी खराबी में ही सत्यनाश हो जाया करते हैं"।

वनों के दावानल—लकड़ी के वनों में दावानल (आप से लग जाने वाली आग) से बड़ी हानि हुआ करती है। उत्तरी अमेरिका और साइबीरिया के वनों का बहुत सा भाग प्रतिवर्ष इसके द्वारा जल जाया करता है। यह आग बसन्त और गर्मी के दिनों में बिजली गिरने या लकड़ियों के आपस में रगड़ खा जाने से लग जाया करती है, और दोही चार दिन में सैकड़ों मील जंगल जला दिया करती है। इससे थोड़ा फायदा यह हुआ करता है कि एक साल जल जाने के बाद दूसरे साल पेड़ और भी अधिक तेज और गहन उगा करते हैं।

शीतोष्ण वनों में रहने वालों के पेशे—उपरोक्त शीतोष्ण वनों में रहने वालों का कोई एक निश्चित पेशा नहीं बतलाया जा सकता जो कि सब के लिये लागू हो सके। कारण इसका यह है कि न तो इन वनों की दशा ही एक सी पाई जाती है और न इसमें रहने वाले ही एक सी सामाजिक दशा में हैं। कहीं कहीं तो ये वन-प्रदेश अब तक वैसे ही गहन और जंगली जीवों से पूर्ण पाये जाते हैं और कहीं कहीं बिल्कुल साफ करके खेती के मैदानों और चरागाहों में परिवर्तित कर दिये गये हैं। इसी प्रकार कहीं कहीं तो इनके रहने वाले

अब तक वे ही आदि निवासी हैं और कहीं कहीं यूरोप तथा अन्य देशों के आगन्तुकों ने अपना अधिकार आ जमाया है। इस प्रकार यहाँ के रहने वालों का जीवन निम्नाङ्कित दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है।

(अ) जंगल के गहन-वन प्रदेशों में रहने वालों का जीवन—जंगल के गहन प्रदेशों में केवल दो ही उद्यम पाये जाते हैं; पहिला तो रोयेंदार जानवरों को पकड़ना और दूसरा लम्बरिंग या लकड़ी काटना। रोओं के लिये सब से प्रसिद्ध जानवर न्योला, ऊद्बिलाव, लोमड़ी और ख़रगोश हैं, गो, इन जंगलों में बड़े बड़े जानवर जैसे काले, भूरे और चितकबरे भालू तथा चितरे आदि भी पाये जाते हैं। ये जानवर जंगल के फल, फूल, पत्ती और जड़ों पर ही निर्भर रहा करते हैं।

इन रोओं को इकट्ठा करने वाले ट्रैपर्स या बहेलिये कहे जाते हैं। इनमें से अधिकाँश रेडइंडियन्स या रेडइंडियन्स और यूरोपीय लोगों के वर्णशंकर वंशज पाये जाते हैं। इनका जीवन बनजारों से बहुत कुछ मिलता-जुलता पाया जाता है क्योंकि साल के अधिकाँश भाग में इन लोगों को इधर उधर घूमना ही पड़ा करता है। वास्तव में इन लोगों का जीवन एक बड़ा ही खतरनाक और दुखमय जीवन हुआ करता है। यह सच है कि अधिकाँश रोयेंदार जानवर छोटे ही हुआ करते हैं किन्तु इनमें से भी बहुत से चिढ़ जाने और गुस्सा हो जाने पर बड़े खतरनाक हो जाया करते हैं। गर्मी के दिनों में मच्छड़ों के झुंड के झुंड इन पर हमला किया करते हैं। कुछ जानवर उनके शिकार और शिकार की खूराक को ही चुरा लिया करते हैं। जाड़े के दिनों में सर्दी बहुत और खाने को कम मिला

करता है। घर भी बहुत कम और बड़ी बड़ी दूर पाये जाते हैं। इस प्रकार आपत्ति आने पर कोई भी मददगार पास नहीं रहा करता। जंगलों में रास्ता भूल जाना या रात कर देना तो एक प्रकार से निश्चित मृत्यु ही है। कभी कभी तो एक झोपड़ी को छोड़कर उसके ठहरने को भी कोई सुरक्षित स्थान नहीं मिला करता। इस झोपड़ी का एक भाग खुला रहा करता है और वहीं तापने के लिये आग जला करती है।

रेड-इंडियन या गोरे—दोनों अकेलिये ही अपने फंदे एक कतार में दस या पन्द्रह मील तक बिछा दिया करते हैं और थोड़ी थोड़ी देर के बाद उन्हें देखने के लिये जाया करते हैं। इस प्रकार उन्हें बराबर फंसे हुए जानवरों को लाना और टूटे फूटे फंदों को ठीक करना पड़ा करता है। इंडियन ट्रैपर अपने को जाड़े से बचने के लिये चमड़े का लम्बा चोगा, चूहे के चमड़े की टोपी, कपड़े के नीचे ब्रीचेज़, कम्बलों के लम्बे मोजे और हिरन के चमड़े के दस्ताने पहिना करता है।

शिकार पर जाते समय वह अपने कमर बन्द में एक कुल्हाड़ी और एक लम्बा चाकू खोंसे रहा करता है और कंधे के ऊपर उसकी बन्दूक या राइफिल लटकी रहा करती है। वह बर्फ के ऊपर चलने वाले जूतों को पहिनता और पीछे एक छोटी सी स्लेज घसीटता जाता है। यह स्लेज पाँच या छः फ़ीट लम्बी, एक फुट चौड़ी और चिपटी लकड़ी की बना हुआ करती है जिसका पिछला हिस्सा कुछ झुका हुआ और ऊपर उठा रहा करता है। यह बहुत ही हल्की हुआ करती है, इसलिये इंडियन्स लोग अपने शिकार पर फेरा करते समय इसे अवश्य साथ में लिये रहते

हैं क्योंकि इससे उन्हें अपने शिकार को खाने में बड़ा सुभीता हुआ करता है। यह बहेलिया छोटे मोटे पेड़ों को छाँटता और उनकी टहनियों को इधर उधर हटाता हुआ गहिरी बर्फ़ के ऊपर लम्बे कदम धरता और मज़बूती के साथ आगे बढ़ता जाता है। रास्ता न होने पर भी वह बड़ी सफ़ाई और आसानी के साथ इधर उधर घूम फिर कर अपने फन्दों का निरीक्षण किया करता है। अन्त में वह फंसे हुये जानवरों को मार कर खाता और नया खाना लगा दिया करता है।

रोयेंदार जानवरों में ऊदबिलाव बहुत ही सुन्दर और कीमती माना जाता है। यह जंगल में पाई जाने वाली नदियों के किनारे रहा करता है और वहीं कभी पेड़ों को खोद कर गिराता और कभी नदी के पानी को ही मथा करता है। बहेलिया अकेले ही या दो एक दोस्तों के साथ शिकारगाह पर जाता और नदियों के किनारों और दरारों को भली प्रकार खोजा करता है। वह अपने फन्दों को दरारों या पानी के अन्दर लगा देने के बाद किनारे की झाड़ियों में मज़बूती के साथ बाँध दिया करता है। फन्दों की पहिचान के लिये पानी के ऊपर तैरने वाली चीज़ें भी बाँध दी जाया करती हैं। प्रातःकाल जाकर फंसे हुये जानवरों को मारता और उनके चमड़ों को उधेड़ लिया करता है। अगर पानी जम जाया करता है तो इनके पकड़ने में कुत्तों से मदद ली जाया करती है। उनके बिलों को नष्ट कर दिया जाया करता है और तब भागते हुये जानवर कुल्हाड़ी या भाले से मार डाले जाते हैं।

ये बहेलिये (ट्रैपर्स) जाड़े और वसन्त के प्रारंभिक काल में अपने रोओं (फर्स) को इकट्ठा किया करते हैं, किन्तु जब बर्फ पिघलने लग जाती है तो वे इनको लेकर 'हडसन वे कम्पनी' के किसी केन्द्र की ओर चल दिया करते हैं। शिकारगाहों से ये व्यापारिक केन्द्र कभी कभी तो सौ सौ मील की दूरी पर पाये जाते हैं, इसलिये कभी कभी तो पाँच या छः आदमी एकही साथ चला करते हैं और साथ में अपने बाल बच्चों को भी लेते जाते हैं, जिनमें से औरतें तो स्लेज खींचा करती है और लड़के फर्स के गट्ठरों में बाँध दिये जाते हैं।

इस प्रकार व्यापार के केन्द्र स्थान पर पहुँच कर ये 'फर्स' (रोयें) बंशी, कटिया, कारतूस, पिस्तौल, तमंचे, बन्दूक, राइफिल्स, बारूद, कम्बल, भोजन और अन्य आवश्यक चीज़ों के बदले में दे दिये जाते हैं। इन स्थानों में गरमी के दिनों में तो बड़ी चहल पहल रहा करती है किन्तु जाड़े के दिनों में एक सन्नाटा सा छा जाया करता है। यहाँ पर कम्पनी के अध्यक्षों के लिये चहारदीवारी और छोटे से उद्यान के साथ एक सुरक्षित मकान बना रहता है। गाय-बैल रखने के लिये दो एक बाड़े भी बने रहते हैं। क्रय-विक्रय के लिये इन केन्द्रों में लोहे की कटियों से लेकर सीने की मशीन और ग्रामोफोन तक रहा करते हैं। प्रत्येक केन्द्र में एक मैनेजर, एक पेशकार और बीस सिपाही तक पाये जाते हैं। कम्पनी की अध्यक्षता दिखाने के लिये एक झंडा भी फहराया करता है।

इन केन्द्रों में रहने वाले मैनेजर प्रायः युवा अवस्था में ही भेजे जाया करते हैं। यद्यपि उनकी तनख़्वाह थोड़ी ही हुआ करती है तो भी

इसका बहुत सा हिस्सा बच जाया करता है क्योंकि रहने और खाने पीने का सारा भार तो कम्पनी ही ले लिया करती है और अन्य खर्चों की यहाँ कोई ज़रूरत ही नहीं पड़ा करती। इस प्रकार हमने यह देख लिया कि 'फ़र-ट्रैपर्स' का जीवन चरागाहों के बनजारों से भी अधिक शुष्क और कठिन हुआ करता है।

प्राचीन 'फ़र-ट्रैपर्स' के पीछे ही पीछे कैनाडा के 'लम्बर मेन' या लकड़हारे आये। इनका भी जीवन उन्हीं की भाँति शुष्क और दुःखमय पाया जाता था। यद्यपि 'कैनाडा का एक बहुत बड़ा भाग जंगली पाया जाता है : किन्तु सबसे पहिले न्यूइंगलैंड, न्यूफाउण्डलैंड, नोवा स्कोटिया न्यूब्रन्सविक और सट लारेंस की तरेटी के जंगलों में ही काम शुरू किया गया था। यहाँ पर हमें यह भी जान लेना चाहिये कि वे जंगल पूर्ण-तया कानीफ़ेरस ही (नुकीली पत्तियोंदार सर्वदा हरे रहने वाले पेड़) नहीं पाये जाते; किन्तु कानीफेरस और डेसीड्यूअस (पतझार करने वाले पेड़) दोनों मिलकर पाये जाते हैं। आज भी लम्बरिंग का पेशा (लकड़ी काटने का) करीब करीब उन्हीं भागों और बृटिश कोलम्बिया में जहाँ कि प्रसिद्ध 'डगलस फर' पाया जाता है—किया जा रहा है।

कैनाडा के कानीफेरस जंगल अपनी मुलायम शहतीर के लिये बहुत प्रसिद्ध हैं, इसलिये इन भागों में रहने वालों का मुख्य उद्यम लम्बरिंग ही पाया जाता है। लकड़हारों के झुंड के झुंड सितम्बर के महीनों में अपने लकड़ी वाले अड्डों की ओर आया करते हैं और वहाँ जाड़े भर रहा करते हैं क्योंकि जाड़े के दिनों में लकड़ी आसानी के साथ काटी और बर्फ़ के ऊपर नदियों तक ढोई जा सकती है। चुने हुये पेड़ काट कर गिरा

लिये जाते हैं और तब उनकी शाखों को छाँट कर तने घोड़ों या सरकती हुई बर्फ़ के द्वारा सबसे निकट वाली नदी तक ले जाये जाते हैं। चूंकि नदियाँ जमी रहती हैं इसलिये बर्फ़ के ऊपर ये लट्ठे आसानी के साथ इकट्ठे किये जा सकते हैं। वसन्त में लकड़ी की कटाई बन्द कर दी जाती है और बर्फ़ के पिघल जाने से लट्ठे बहा कर चीरने वाले कारखानों तक पहुँचा दिये जाते हैं। ये कारखाने ज़्यादातर झरनों या जल-प्रपातों के पासही हुआ करते हैं क्योंकि यहाँ इनके द्वारा बिजली की शक्ति पैदा की जा सकती है। इसी कारण, ओटावा नदी पर ओटावा नामक नगर लम्बरिंग का मुख्य केन्द्र बन गया है।

यह लकड़ी केवल लकड़ी की चीज़ों और दियासलाई बनाने के ही काम में नहीं लाई जाती; किन्तु आजकल उससे और भी कई एक उपयोगी कारबार किये जाते हैं। शहतीर से तारकोल, राल, चूना और एक प्रकार की शराब भी निकाली जाने लग गई है। इसके अलावा बहुत से कारखानों में मुलायम लकड़ी पीस कर काग़ज़ की लुगदी बना ली जाती है जिससे बहुत हलका काग़ज़ बना करता है।

ट्रैपर्स और लकड़हारों के बाद खेती करने वालों का नम्बर आता है। बहुत से स्थानों में लोगों ने जंगलों को साफ कर खेती के मैदान बना लिये हैं और वहीं जमकर खेती करने लग गये हैं। खेती करने के अतिरिक्त ये लोग चरागाही और पोल्ट्री (मुर्गियाँ पालना) का भी काम किया करते हैं। पूर्वी कैनाडा और न्यूइंगलैंड में जौ, जई, राई, फल, तरकारी और डेमरी की अच्छी आमदनी पाई जाती है।

कैनाडा की भाँति साइबीरिया के टैगा में भी ट्रैपर्स, लकड़हारे,

चरवाहे और काश्तकार पाये जाते हैं; किन्तु यहाँ के जंगलों में रहने वालों का मुख्य उद्यम रोयेदार जानवरों का शिकार करना ही पाया जाता है। क्योंकि लम्बरिंग के लिये उपयोगी पेड़ों के होते हुए भी यह उद्यम नदियों और आर्कटिक महासागर के जमे रहने के कारण विशेष रूप से नहीं किया जा सकता। इसलिये यहाँ के समोयद, याकूत और उस्याक लोग अब भी उसी प्रारंभिक दशा में पाये जाते हैं। हाँ, भविष्य में यदि आमदरफ़्त के साधनों:—रेलों, सड़कों और तार आदि का अच्छा प्रस्तार किया जा सका तो अवश्य इनकी आर्थिक उन्नति बहुत कुछ बढ़ जायेगी।

जंगल के साफ किये हुए प्रदेशों के उद्यम—उत्तरी अमेरिका और यूरेशिया के उन प्रदेशों में जहाँ कि जंगल साफ कर डाले गये हैं, कई प्रकार के उद्यम पाये जाते हैं। स्कैन्डीनैविया को ही लीजिये—यहाँ गल्फ स्ट्रीम के प्रभाव के कारण उत्तर की ओर बहुत दूर तक जंगली पेड़ पाये जाते हैं। सब से उत्तरी भाग में इन पेड़ों की बाढ़ बिलकुल मारी जाती है और ये रेन्डीयर घास में परिवर्तित हो जाते हैं। स्वीडेन के बहुत से भाग इतने दलदल हो जाया करते हैं कि वहाँ मूज नामक हिरनों को छोड़ कर और कोई भी जानवर नहीं पाये जाते। सब से उत्तरी भाग में लैप लोगों के वंशज टन्ड्रा में रहने वालों का सा जीवन व्यतीत किया करते हैं। यद्यपि वे लोग थोड़ी बहुत खेती भी किया करते हैं; किन्तु अधिकतर अकाल ही पड़ा रहता है और तब वर्च की छाल और रेन्डीयर घास ही खाने के काम में लाई जाती है।

यहाँ के असली जंगली भागों में कैनाडा के ही से उद्यम पाये जाते

हैं। गर्मी के दिनों में शहतीर समुद्र के किनारे बहा कर लाई जाती है और वहाँ सैकड़ों कारखाने चला करते हैं। जहाज और नावें खूब बनाई जाती हैं क्योंकि नार्वे और स्वीडेन के लोग पैदायशी मल्लाह हुआ करते हैं। इनके अतिरिक्त काग़ज और दियासलाई का भी रोजगार किया जाता है। जिन भागों में न तो खेती ही की जा सकती है और न लक-ड़िहारी हो। वहाँ लोग मछलियों का शिकार किया करते हैं। प्रतिवर्ष हज़ारों आदमी लाफडन और उसके आस पास के समुद्रों में मछली मारने का काम किया करते हैं। बहुत से लोग किनारे पर चलने वाली नावों में नौकरी कर लिया करते हैं। औरतें और बच्चे घरों में रह कर थोड़ी बहुत खेती किया करते हैं।

इस प्रकार प्रति वर्ष जंगल के बहुत से भाग खेती में परिवर्तित किये जा रहे हैं; किन्तु इसकी सफलता वसन्त ऋतु की गर्मी पर ही अधिक निर्भर रहा करती है। इस प्रकार लोफडन के आसपास तक चोकन्दर, पटसन, सन और शलजम की खेती की जाया करती है। नार्वे और स्वीडन के अधिकाँश किसान बहुत ही सीधे सादे पाये जाते हैं और खेती के आधुनिक उपयोगों का बहुत कम प्रयोग किया करते हैं। हाँ, बहुतेरे अपने रोजमर्रा के काम में बड़े चतुर पाये जाते हैं। यहाँ का प्रायः प्रत्येक किसान अपनी आवश्यकता का सारा काम स्वयं कर लिया करता है। वह खेती के अतिरिक्त बढ़ई, लोहार, चमार, मल्लाह और मजदूर सभी का काम स्वयं किया करता है। औरतें घर का काम-काज संभाला करती हैं। इनके घर बहुत ही साधारण हुआ करते हैं और उनके लिये प्रत्येक किसान अपने ही पेड़ों की लकड़ी का प्रयोग किया करता है।

जाति-पाँति का कोई भेद भाव नहीं पाया जाता, इस प्रकार मालिक और नौकर एक ही साथ काम करते और खाते पीते हैं। दो चार बड़े बड़े नगरों में व्यापार, डाक्टरी, लेनदेन, पढ़ने और पढ़ाने आदि के सभी उद्यम भी पाये जाते हैं।

जंगलों के रहने वालों के मकानात और उनकी रहन सहन—हम पहिले ही बता चुके हैं कि जंगलों में मकान बनाने के लिये लकड़ी ही सबसे उपयोगी वस्तु है। इसलिये यहाँ पर विशेषतया लकड़ी के ही मकानात पाये जाते हैं। हाँ, यह बात अवश्य है कि ये मकानात कई प्रकार के पाये जाते हैं। जिस जगह के निवासी जितने अधिक सुरक्षित पाये जायँगे वहाँ उतने ही अधिक अच्छे और सुख-प्रद मकान भी पाये जायँगे। इसके साथ ही साथ खाने पीने और रहन-सहन के बारे में भी यही कहा जा सकता है। यहाँ जंगलों के आदि निवासी जंगली जीवों के गोश्त और वहाँ के फल फूल पर ही अपना जीवन निर्वाह किया करते हैं, साफ किये हुए सभ्य और सुशिक्षित प्रदेशों में जीवन की आधुनिक सभी सुख सामग्रियाँ पाई जाती हैं। इसके साथ ही साथ यह भी आशा की जाती है कि थोड़े दिनों में व्यापार का विस्तार और प्रभाव जंगल के घने से घने भागों में रहने वालों तक को भी संसार की सभी सुख सामग्रियाँ उपलब्ध करा देगा।

संसार के अन्य कानीफेरस जंगल—उपरोक्त पंक्तियों में हमने संसार के दो मुख्य कानीफेरस जंगलों का ही वर्णन किया है; किन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिये कि इनके सिवा और स्थानों में कानीफेरस जंगल पाये ही नहीं जाते। अमेरिका के संयुक्त राज्यों के दक्षिण और

दक्षिण-पूर्व में भी समुद्र तट के मैदानों में, जहाँ बलुहाई और कुछ शुष्क ज़मीन पाई जाती है, कानीफेरस जंगल हैं। इनमें लम्बरिंग बड़े ज़ोर के साथ की जाया करती है और तार, तारकूल, चूना और पेड़ों के रस की शराब अच्छी मिक़दार में बाहर भेजी जाया करती है। इसी प्रकार जार्जिया के सैवन्नाज में भी ये चीज़ें खूब पैदा हुआ करती हैं। इसी प्रकार इंगलैंड के दक्षिण-पूर्व कलविच और वैगशाट में भी शहतीर के पेड़ पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त ऊँचे पहाड़ों के ढालों पर भी—(हिमालय और आल्पस) बहुमूल्य शहतीर के जंगल पाये जाते हैं। इसका कारण वहाँ की जलवायु पर ऊँचाई का प्रभाव है। पहाड़ी लोगों के लिये ये जंगल बड़े ही उपयोगी हुआ करते हैं क्योंकि इन्हीं, के द्वारा उन्हें खाने को भोजन और रहने के लिये लकड़ी मिला करती है।

उपरोक्त जंगलों का वहाँ के रहने वालों पर प्रभाव और उनका भविष्य—अब तक में हमने यह तो भली प्रकार जान ही लिया कि कानीफेरस जंगलों में रहने वाले ट्रैपर्स और लकड़हारों का जीवन टन्ड्रा के निवासियों थोड़ा बहुत मिलता-जुलता अवश्य पाया जाता है, किन्तु उपरोक्त पंक्तियों से यह भी स्पष्ट है कि इनका जीवन उनकी अपेक्षा कहीं अधिक शान्त, सरल और सुव्यवस्थित हुआ करता है। इन लोगों को उनकी तरह दिन रात अपने भोजन और वस्त्र की ही चिंता नहीं करनी पड़ती, क्योंकि इन जंगलों में उनके जीवन की साधारण आवश्यकतायें आसानी के साथ पूरी हो जाया करती है; अतः ये लोग एक स्थान पर जम कर रह सकते और अपनी आय में से बहुत कुछ बचा कर भविष्य के लिये एकत्रित कर सकते हैं। यही कारण है कि इनके

पास गृहस्थी का सामान अधिक पाया जाता है। यही नहीं, बल्कि इनको इस बात का भी थोड़ा बहुत अवकाश मिल जाया करता है कि वे अपनी मानसिक उन्नति भी कर सकें। जिसमें आगे की प्रत्येक पीढ़ी जीवन-संग्राम के लिये अधिक सुसज्जित होती जाती है। खेती करने के कारण इन लोगों को व्यापार और मित-व्ययिता का भी परिज्ञान होता जाता है।

उपरोक्त जंगलों का भविष्य भी बहुत ही उज्ज्वल प्रतीत होता है। यद्यपि वर्तमान प्रगति को देखते हुये उनका अस्तित्व ही खतरे में मालूम होता है, क्योंकि आजकल इन जंगलों में कुल्हाड़ी का स्थान हल बड़ी तेजी के साथ लेता जा रहा है, तौ भी यह निश्चित है कि इनका कुछ न कुछ भाग सदैव ही रोओं और शहतीरों के लिये सुरक्षित रक्खा जायगा। इनके जो भाग काट कर चरागाह और उपजाऊ खेत बना लिये गये हैं या बनाये जा रहे हैं वे अवश्य एक दिन नाज के कोठार माने जाएँगे और वहाँ सैकड़ों आदमियों का भरण-पोषण हो सकेगा। यही नहीं, वर्तमान समय में इन जंगलों से एक और नई आशा की जा रही है और वह है, इनकी खनिज-पैदावार की। कैनाडा और यूरेशिया दोनों के जंगली भागों में कोयले, लोहे, ताँबे, पारे और सोने की खानें पाई जाती हैं, किन्तु अभी तक इनका यथेष्ट उपयोग नहीं किया जा सका। कैनाडा में तो सुपीरिअर और ह्यूरन झीलों के आसपास लोहा, ताँबा और निकिल काफ़ी तादाद में निकाले जा रहे हैं। सडबरी इसके लिये बहुत ही प्रसिद्ध स्थान है। इसी प्रकार साइबीरिया में भी अल्टाई के आसपास का प्रदेश खनिज पदार्थों से भरा-पुरा पाया जाता है। किन्तु इन सब बातों के

लिये आवश्यकता है, आमदरफ्त के सुभीतों की। अभी तक इन जंगलों में रेलों और सड़कों आदि का बहुत कम प्रचार पाया जाता है, किन्तु आशा की जाती है कि नये आगन्तुकों और समय के परिवर्तन के साथ थोड़े ही दिनों में ये असुविधायें बहुत कुछ दूर कर दी जायँगी। इस प्रकार ये जंगल भी कुछ दिनों के बाद जंगल न रह कर क्रय-विक्रय और व्यवसाय के एक नूतन क्षेत्र बन जायँगे और यहाँ के रहने वाले भी बाहरी लोगों के समागम में आकर अधिक सभ्य और सुशिक्षित होते जायँगे।

आठवाँ अध्याय

(ब) संसार के डेसी-ड्यूअस अर्थात् झाड़-वन-प्रदेश

शीतोष्ण कटिबन्ध के दक्षिणी और उत्तरी भागों में जहाँ जल-वृष्टि कुछ अधिक, जलवायु ऊष्ण-प्रधान शीतोष्ण और धरातल कुछ अधिक उपजाऊ पाया जाता है वहाँ कानीफेरस जंगलों के विरुद्ध डेसी-ड्यूअस जंगल पाये जाते हैं। डेसी-ड्यूअस जंगलों के पेड़ नीचे पतले किन्तु ऊपर की ओर झखड़े हुआ करते हैं। इनकी पत्तियाँ चौड़ी, चिपटी और पतली हुआ करती हैं। ये प्रतिवर्ष पतझड़ के दिनों में गिर जाया करती हैं और उनकी जगह पर नई पत्तियाँ निकल आया करती हैं।

यह तो पहिले ही बता चुके हैं कि कानीफेरस और डेसी-ड्यूअस जंगलों को भिन्न करने वाली कोई ख़ास रेखा नहीं बताई जा सकती। बहुत से स्थानों पर दोनों प्रकार के पेड़ मिले-जुले पाये जाते हैं। इसका कारण केवल भौगोलिक परिस्थितियों की विभिन्नता ही हुआ करती है। जहाँ पर जिस प्रकार के पेड़-पौधों के उगने योग्य ज़मीन, जल-वृष्टि और जलवायु पाई जाती है, वहाँ वे ही पेड़-पौधे उगा करते हैं।

बाहर से देखने में ये जंगल एक उद्यान की भाँति मालूम हुआ करते हैं। इनके बीच बीच में हरे भरे चरागाह भी पाये जाते हैं। इनके मुख्य पेड़ देवदार, चिनार, काहू, हलद्वानी और बीच हैं। जहाँ 'बीच' के पेड़ पाये जाते हैं वहाँ उनके नीचे बड़ी सघन छाया रहा करती है, क्योंकि इन

पेड़ों में बहुत ही गुच्छेदार पत्तियाँ हुआ करती हैं। ऐसे पेड़ यूरोप में स्कैन्डीनेविया और उत्तरी स्पेन के बीच से लेकर रूस के स्टेप्स और कानीफेरस जंगलों के बीच तक पाये जाते हैं। इसमें बृटिश द्वीप समूह, फ्राँस, बेल्जियम, हालैंड और मध्य-यूरोप का बहुत सा भाग शामिल है, ज़िसमें कई एक प्लेटो, पहाड़ी ढाल, दलदल और रेतीले ऊसर पाये जाते हैं।

मानव समाज की प्रारंभिक दशा में जब लोग इतने सभ्य और सुशिक्षित नहीं पाये जाते थे, इन जंगलों में बहुत कम लोग रहा करते थे; क्योंकि उस समय उनके अस्त्र-शस्त्र पत्थरों और हड्डियों के ही हुआ करते थे जिनसे ये जंगल काटे नहीं जा सकते थे; किन्तु जैसे ही उसने लोहे का प्रयोग सीखा, वैसे ही अपनी कुल्हाड़ियों को लेकर इन जंगलों के ऊपर हमला कर दिया और इनके बहुत से भागों को काट काट कर अपने और अपने जानवरों के लिये स्थान बना लिया। चूँकि यहाँ उसका जीवन अधिक आसानी के साथ बीत सकता था, इसलिये यहाँ लोगों की संख्या भी अधिक होती गई और धीरे धीरे ये जंगल भी अधिक साफ़ होते गये। यही नहीं, यहाँ पर मनुष्य ने अपनी आवश्यकताओं को पूरी करने के लिये नये नये उद्योग भी सीखे। धीरे धीरे वह बढ़ई, लोहार और जुलाहों का भी काम करने लगा और अपने रहने के लिये अच्छे अच्छे मकान भी बनाने लगा। इस प्रकार समाज की उन्नति होती गई और यह बढ़ते बढ़ते अपनी वर्तमान दशा में जा पहुँची।

आजकल इन जंगलों के साफ़ किये हुये प्रान्तों में गेहूँ, जौ, राई, और ओट आदि की अच्छी खेती की जा रही है। इसके लिये नाना प्रकार के वैज्ञानिक प्रयोग निकाले गये हैं जिनका विस्तृत विवेचन हम आगे

के किसी अध्याय में करेंगे । बेल्जियम हालैंड और जर्मनी में ओट की खेती घोड़ों के लिये अधिक की जाया करती है । पटसन से फलालैन का कपड़ा बनाया जाता है और चोकन्दर से चीनी बनाई जाती है ।

उपरोक्त प्रदेशों के बहुत से भागों में चरागाही का काम भी बड़ी तेजी के साथ किया जा रहा है । डेनमार्क इसके लिये सब से प्रसिद्ध देश है । यहाँ तो वास्तव में आधे से भी ज्यादा लोग अपना जीवन इसी उद्यम के द्वारा बिताया करते हैं । इसके लिये उन्होंने तरह तरह के वैज्ञानिक उपयोगों का प्रयोग प्रारंभ कर दिया है । जानवरों की पहिचान उनका पालन-पोषण, और उनके द्वारा उपलब्ध चीजों का यथेष्ट क्रय-विक्रय डेनमार्क वालों से बढ़ कर आज और कोई भी नहीं जानता । सचमुच इसी व्यवसाय ने उनके देश को दिवालिया होने से बचाया । आज उनके यहाँ हजारों बीघे ज़मीन चरागाही के काम में लाई जा रही है और उनके यहाँ का बना हुआ दूध, मक्खन और पनीर संसार के सभी प्रमुख नगरों में बेचा जा रहा है ।

यूरोप के डेसी-ड्यूअस जंगलों से मिलते जुलते उत्तरी अमेरिका में भी डेसी-ड्यूअस जंगल पाये जाते हैं, जो कानीफेरस वनों के दक्षिण की ओर फैले हुये हैं । इनके भी अधिकांश भागों में उपरोक्त उद्यम किये जाते हैं । इसी प्रकार हमने यह देख लिया कि रेगिस्तानों, घास के मैदानों, कानीफेरस और डेसी-ड्यूअस जंगलों तथा उनके स्थानापन्न खेती के मैदानों और चरागाहों का जीवन उत्तरोत्तर शांत, सरल और सुखमय होता जाता है । जहाँ रेगिस्तान वालों को पेट भर खाना मिलना भी दुष्वार हुआ करता है, घास के मैदान वाले भर पेट खाने को तो अवश्य पाया करते

हैं, किन्तु उन्हें कानी-फेरस और डेसीड्यूअस जंगलों में रहने वालों की अपेक्षा कहीं अधिक मिहनत करनी पड़ा करती है। जंगलों में रहने वाले लोग भर पेट खाना खाते हुये कुछ सभ्य और सुव्यवस्थित जीवन भी बिता सकते हैं, किन्तु इन जंगलों का स्थान लेने वाले चरागाहों और खेती के मैदानों में लोग इन सब की अपेक्षा अधिक सभ्य, सुव्यवस्थित, धनी और सुशिक्षित पाये जाते हैं।

भूमध्य रेखा के निकटस्थ वन-प्रदेश—डेसी ड्यूअस जंगलों को पार कर जैसे ही जैसे हम विषुवत् रेखा के पास पहुँचते जाते हैं वैसे ही वैसे जल-वृष्टि अधिक मिलने लग जाती है। यहाँ तक कि भूमध्यरेखा पर करीब करीब रोज़ बारिश हुआ करती है। इन जंगलों के बाद पहिले गरम रेगिस्तान मिला करते हैं और तब मामूली चरागाह जो आगे बढ़ते हुये अधिक जंगली होते जाते हैं; यहाँ तक कि अन्त में हम भूमध्य रेखा के पास अत्यन्त सघन और करीब करीब अछूते जंगलों में जा पहुँचते हैं।

ऊष्ण वनों का विस्तार—संसार के ऊष्ण वन विषुवत् रेखा के दोनों ओर पाये जाते हैं। एशिया में मलाया प्रायद्वीप, पूर्वी द्वीप समूह और भारतवर्ष का मध्य भाग अफ्रीका में काँगों-वेसिन का अधिकांश भाग, और दक्षिणी अमेरिका में अमेजन का वेसिन इन जंगलों के मुख्य केन्द्र-स्थान हैं।

ऊष्ण वनों का प्राकृतिक सौन्दर्य—विषुवत् रेखा के दोनों ओर पानी और गर्मी की अधिकता से हज़ार तरह के पेड़ और पौधे उगा करते हैं। शीतोष्ण प्रदेशों के छोटे छोटे पेड़ यहाँ अत्यन्त ऊँचे हो जाया

करते हैं, और उनके बीच बीच में सैकड़ों तरह की बेल और बल्लरियाँ लपटी रहा करती हैं। निचले हिस्से में न जाने कितने क़िस्म के छोटे छोटे पौधे पाये जाते हैं। इस प्रकार इन सब पेड़ और पौधों में हवा और सूरज की रोशनी के लिये एक अजब क़िस्म का संग्राम छिड़ा रहता है।



अमेजन के घने वन

न जाने कितने पेड़ तो दूसरों के ऊपर ही निर्भर रहा करते हैं। ऊपर जाकर इनकी शाखें और पत्तियाँ एक दूसरों से इस प्रकार गझिन हो जाया करती हैं कि जेठ के दिनों में भी सूरज की रोशनी नीचे नहीं पहुँच पाती। इसलिये इन जंगलों के निचले हिस्सों में एक प्रकार से अँधेरा ही रहा करता है। देखने में ये जंगल अत्यन्त ही गंभीर प्रभावशाली मालूम हुआ करते हैं। कोई यात्री तो जाकर यहाँ के पेड़-पौधों की प्रभुता को ही देख कर मुग्ध हो जाया करता है और किसी को यहाँ के

जीव-जन्तुओं की विचित्रता और विभिन्नता ही ने अवाक् बना रक्खा है। बहुतेरे तो यहाँ की गंभीरता को ही देख कर प्रसन्न हो गये हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि इन जंगलों की शोभा और महिमा एक विचित्र ढंग की पाई जाती है। प्रकृति-विशेषज्ञ मिस्टर वैलेस इस जंगल की शोभा निम्नाङ्कित शब्दों में बयान करते हैं—"विषुवत् रेखा के निकट वाले ऊष्ण वनों में एक विचित्र ही प्रकार की शोभा और गंभीरता पाई जाती है। किन्तु रंगों की विभिन्नता और सुन्दरता बहुत ही कम हुआ करती है। अत्यन्त ही मोटे तनों के पेड़, उनमें कहीं कहीं बहुत ही बड़े खोखलों का होना, बहुत ही लम्बी और मोटी वरुआहें, पेड़ों के चारों ओर लपटी हुई भिन्न भिन्न प्रकार की बेलें और कहीं कहीं पर ताड़ों के सुन्दर गुच्छ—ये ही यहाँ की सबसे आश्चर्यजनक और आकर्षक चीजें हैं। चारों ओर एक अजीब मनहूसियत और अँधियारी छाई रहा करती है और सचमुच ही थोड़ी देर में नीले आकाश और सूर्य की रोशनी को देखने के लिये जी ऊबने लग जाया करता है।"

ऊष्ण वनों से मिलने वाली चीजें—ऊष्ण वनों के पेड़ों से कई प्रकार की उपयोगी चीजें मिला करती हैं। कोई तो दवा के काम में लाई जा सकती है और किसी से मकान और लकड़ी की चीजें बनाई जा सकती हैं। बहुत से पेड़ केवल जलाने के ही काम आया करते हैं। कुछ पेड़ (आबनूस और तुन्द) अपनी लकड़ी की सुन्दरता के लिये प्रसिद्ध हैं और कुछ अपने रस के लिये जैसे रबड़ (ब्राज़ील और अफ्रीका में) और गटा पार्चा (पूर्वी द्वीप समूह) के पेड़।

ऊष्ण वनों के जीव-जन्तु—ऊष्ण वनों में पेड़ और पौधों की इतनी

अधिक सघनता पाई जाती है कि मनुष्य और बड़े बड़े जंगली जीव बहुत ही कम संख्या में पाये जाते हैं। यद्यपि कान्गो और अमेजन दोनों वन प्रदेशों में शेर, चीते, हाथी, बन्दर, जेब्रा, जिराफ़ और गैंडे आदि बड़े बड़े जानवर पाये जाते हैं तौ भी ये जंगल के बहुत थोड़े हिस्से में ही प्रवेश कर पाते हैं। हाँ, छोटे मोटे कीड़े-मकोड़ों की अवश्य भरमार पाई जाती है। इन जंगलों में केवल वे ही जानवर पाये जा सकते हैं जो कि पेड़ों के ऊपर आसानी से आ जा सकें। यों तो प्रायः प्रत्येक पेड़ की प्रत्येक डाल पर दो चार कीड़े-मकोड़े (तरह तरह के साँप, बिच्छू, विषखोपरा और गिरगिटान आदि) पाये जाते हैं। हज़ारों रंग की छोटी मोटी चिड़ियों की भी काफ़ी भरमार रहा करती है जिनमें यहाँ के रंग विरंगे तोते अधिक प्रसिद्ध हैं। नदियों में दरियाई घोड़े, मगर, घड़ियाल और कछुये आदि खूब पाये जाते हैं।

जंगली जानवरों की भाँति आदमियों को भी यहाँ रहने में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा करता है। एक तो यहाँ की जलवायु ही बड़ी नम और सीड़दार पाई जाती है, दूसरे पत्तियों के सड़ने से बदबू बहुत हुआ करती है। इससे तरह तरह की बीमारी का तो खतरा बना ही रहा करता है। घास और पेड़ पौधों की सघनता इतनी अधिक हुआ करती है कि दो या तीन फीट से ज्यादा चौड़े पगडंडी रास्ते पाये ही नहीं जा सकते। थोड़ी दूर चलने ही में डालियों को काटते और हटाते हुये जान ऊब जाया करती है। उस पर भी विषैले कीड़े-मकोड़ों और धोखेबाज़ जंगली जानवरों का प्रतिक्षण भय लगा रहता है। रास्ते भी आज बने और कल फिर मिट गये। कोई स्थान आज पेड़ों को काट

छाँट या जलाजुलू कर साफ किया गया कि तीसरे दिन फिर वैसा का वैसा हो जाया करता है। अगर किसी स्थान में कुछ लोगों ने झोपड़े डालडूल कर खेती भी शुरू की तो पानी और घास की अधिकता के मारे कुछ होने भी नहीं पाता। आजकल की सुख सामग्रियों की तो यहाँ कोई चरचा ही नहीं की जा सकती। इस लिये ज़मीन और पानी के काफ़ी होते हुये भी यहाँ बहुत कम लोग पाये जाते हैं।

ऊष्ण वनों में रहने वालों के उद्यम—उद्यमों के विचार से जंगलों में या तो जंगली जानवरों का शिकार किया जाय या नदियों में जल जीव पकड़े और मारे जायँ; लकड़ी काटी जाय या जंगली पैदावार जैसे रबड़, गटापार्चा, गोंद, बेरियाँ और औषधियाँ इकट्ठी की जायँ। इनके अतिरिक्त जंगलों के साफ़ हिस्सों और इनके किनारों पर चरागाही और खेती भी की जा सकती है।

ऊष्ण वनों के निवासी-पिगमी लोग—अफ्रीका के जंगली निवासियों में पिगमीज़ सबसे विचित्र माने जाते हैं। ये लोग बहुत ही छोटे (१$\frac{१}{२}$ व ४ फीट) मगर हट्टे कट्टे हुआ करते हैं। यद्यपि पहिले बहुत से लोगों का यह ख्याल था कि ये लोग केवल काल्पनिक पात्र हैं किन्तु अब आधुनिक अनुसन्धान कर्त्ताओं ने इनके अस्तित्त्व को भली प्रकार निश्चित कर दिया है। इनका जीवन अब तक बिल्कुल ही असभ्य और पत्थर के ज़माने के लोगों का सा पाया जाता है। वास्तव में ये लोग चतुर जानवरों से थोड़े ही अधिक अच्छे हुआ करते हैं। न तो इन्हें किसी प्रकार की कारीगरी और दस्तकारी का ही ज्ञान है और न शिक्षा समीक्षा का ही। इनके पास किसी प्रकार के भी घरेलू बर्तन या भाँडे नहीं पाये

जाते, यहाँ तक कि मामूली खाना पकाने की भी कोई चीज़ नहीं हुआ करती। इनकी सारी कारीगरी बहुत ही भद्दे जाल, फंदे और लकड़ी या पत्थर के औजारों में ही पाई जाती है। सभ्य समाज के खेल कूद, गान तान और पारस्परिक प्रेमालाप का तो यहाँ नाम निशान तक नहीं पाया जाता। इनका न तो कोई प्राचीन ही इतिहास है और न भविष्य में उसे बनाने की चेष्टा ही। कहने का तात्पर्य यह है कि ये लोग मानव समाज की प्रारंभिक दशा के प्रज्वलित नमूने हैं जिनमें आज तक भी किसी प्रकार के ऊँचे विचार या उन्नति नहीं पाई जाती।

इनका रहन-सहन—संसार की अन्य शिकारी जातियों की भाँति पिगमी लोग भी एक स्थान पर घर बना कर नहीं रहा करते क्योंकि उनको सदैव ही अपने खाने के लिये शिकार की तलाश में इधर उधर घूमना पड़ा करता है। इनका सबसे प्रिय भोजन अनन्नास है इसलिए जब उन्हें इसकी जरूरत पड़ा करती है तो जंगल के किसी साफ हिस्से के पास जा कर घास-पात की झोपड़ियों में टिक जाया करते हैं और जब उनका क्रयविक्रय समाप्त हो जाया करता है तो फिर जंगल के घने भागों में घुस जाया करते हैं। इनका झोपड़ा मधुमक्खी के छातों का सा बना होता है। दो चार मोटी लकड़ियाँ जमीन में गाड़ कर ऊपर की ओर झुका और बाँध दी जाती हैं। तब उनके ऊपर बेल, घास-फूस और ताड़ के पत्ते डाल दिये जाते हैं। इनके भीतरी और बाहरी भाग मिट्टी से पुते रहा करते हैं। चूँकि जंगलों में मिट्टी और पत्तों की कमी नहीं पाई जाती इसलिए इन लोगों को अपनी झोपड़ियाँ बनाने में अधिक कठिनाई भी नहीं पड़ा करती। ये लोग एक झोपड़ी में तीन या चार महीने

से अधिक नहीं रहा करते क्योंकि ये लोग खेती पाती तो कुछ करते नहीं, बस जंगली जानवरों को खोजा और मारा करते हैं।

कपड़े—चूँकि इन जंगलों में गर्मी बहुत ही अधिक पड़ा करती है इसलिए ये लोग कपड़े बहुत ही कम या बिल्कुल ही नहीं पहिना करते। आदमी लोग ज्यादातर एक लंगोटी लगाये रहते और औरतें पत्तियों का एक गुच्छा बाँधे रहा करती हैं। गहने तो फूल और पत्तियों तक के भी नहीं पहिने जाते, हाँ अगर उनको यूरोपीय कपड़ों का एक चिथड़ा भी मिल जाय तो उसे बड़े चाव से अपने शरीर पर लपेट लेंगे।

खान-पान—इन जंगलों में खाने की कमी तो पाई नहीं जाती क्योंकि खेती-पाती न करने पर भी जंगली जानवरों का गोश्त और जलजीव तो मिल ही जाया करते हैं। जंगली कंदमूलों और फलफूलों की भी अच्छी भरमार रहा करती है। इसके अलावा शहद तो बहुत ही स्वादिष्ट भोजन माना जाता है। जानवरों के शिकार में तीर और कमान ही अधिक प्रयोग किया जाता है जिसके चलाने में ये लोग इतने चतुर हुआ करते हैं कि चार चार बाण एक ही साथ ऐसी तेजी से छोड़े जाते हैं कि पहिला और आखिरी बाण निशाने पर करीब करीब एक ही साथ लगा करते हैं। अगर संयोग से कोई तीरन्दाज निशाना चूक जाय तो उसी वक्त मारे गुस्से के तीर और कमान दोनों तोड़ डाले जाते हैं। अपने छोटे छोटे बाणों से ये लोग हाथी ऐसे बलिष्ठ जानवर को भी मार डाला करते हैं। इनका सारा शिकार केवल गोश्त के ही लिये हुआ करता है, यहाँ तक कि हाथियों को भी मार कर उनके हाँथी दाँत जो हमारे लिए इतने मूल्यवान हुआ करते हैं, फेंक दिये जाते हैं। तीर-कमान को छोड़ कर

इनके पास छोटे छोटे भाले भी हुआ करते हैं, किन्तु ढाल नहीं पाई जाती। मछलियाँ मारने में केवल एक डोर और गोश्त का टुकड़ा ही काफी हुआ करता है। खाना पकाने का ज्ञान तो इन्हें होता नहीं इसलिये गोश्त और फल कच्चे ही खाये जाते हैं। कभी कभी भून जरूर लिया जाता है और वह इस प्रकार कि जमीन में एक गड्ढा खोद कर लकड़ी और पत्तियाँ भर दी जाती हैं, उसके ऊपर गोश्त रख कर फिर पत्तियाँ रख दी जाती हैं और तब आग जला दी जाती है।

अनन्नास का इन्हें खास शौक हुआ करता है। इसलिये इसके लिये ये लोग जंगल के साफ हिस्से में जहाँ कि इसके पेड़ पाये जाते हैं झोपड़े डालकर टिक जाया करते हैं। वहीं पर ये लोग किसी जानवर को मार कर पेड़ पर लटका दिया करते हैं और उसके गोश्त के साथ अनन्नासों का बदला किया करते हैं। कभी कभी तो ये लोग कच्चे अनन्नासों के किसी एक पेड़ पर अपना तीर मार दिया करते हैं और मालिक को यह बताकर कि हम अमुक पेड़ के फल लेंगे जंगल में चले जाया करते हैं। पेड़ों का मालिक इन छोटे छोटे सिपाहियों को इतना डरा करता है कि इनके आने तक उस पेड़ का एक फल भी नहीं तोड़ा करता।

इनके उद्यम—पिगमी लोग शिकार करने, तीर-कमान, जाल और फंदे बनाने के सिवा और कोई उद्यम नहीं किया करते। जब उनको कंदमूलों, फलों, तम्बाकू, चाकू या हथियारों आदि की आवश्यकता पड़ा करती है तो दूसरी जातियों से जंगली जानवरों के गोश्त, चमड़ों, हाथी-दातों और रोओं आदि के साथ बदल लिया करते हैं। कभी कभी ये

लोग खेती-पाती करने वाली जातियों पर अपने विषैले बाणों को लेकर हमला भी कर दिया करते हैं और उन्हें लूट पाट लिया करते हैं। मछली मारना भी इनका एक खास उद्यम हुआ करता है। इसके अतिरिक्त जंगल के कोने कोने को जानने और जंगली-जीवन में बहुत ही होशियार होने के कारण कभी कभी ये लोग दूसरी जातियों और नये आगन्तुकों के लिए पथ-प्रदर्शक का भी काम किया करते हैं। वास्तव में इनका जीवन बड़ी ही कठिनाई का जीवन हुआ करता है किन्तु परमात्मा ने इन्हें उसके योग्य सारी शक्तियाँ भी प्रदान कर रक्खी हैं।

इनका गृहस्थ-जीवन— पिगमी लोगों की प्रत्येक झोपड़ी में आठ, या नौ आदमी रहा करते हैं। इनमें से सब लोग किसी एक आदमी को अपना मुखिया चुन लिया करते हैं और उसका कहना माना करते हैं। मुखिया का काम झगड़ों को निपटाना और पड़ाव के उखड़ने या पड़ने का निश्चय करना है चूँकि इन लोगों को हमेशा इधर उधर घूमना पड़ा करता है इसलिए इनके पास गृहस्थी का सामान बहुत ही थोड़ा और हल्का हुआ करता है। वह जंगली पेड़ों के रेशों से बने हुए थैलों में भर कर ले जाया जाता है।

चूँकि ये लोग एक ऐसे प्रदेश में रहा करते हैं जहाँ कि बारिश बहुत ही अधिक हुआ करती है इसलिए इनके अन्दर पानी की एक घृणा सी उत्पन्न हो जाया करती है। शायद इसी कारण ये लोग पीने और नहाने धोने में भी बहुत कम पानी का प्रयोग किया करते हैं। बड़ी बड़ी नदियों के होते हुए भी ये लोग तैरना बिल्कुल नहीं जाना करते और इनका जीवन प्रतिक्षण खतरे में रहा करता है। इसलिये स्वभावतः इनकी आँखें

और इनके कान बहुत ही तेज हुआ करते हैं। छोटी से छोटी चीज को भी जल्दी से देख और पतली से पतली आवाज को भी सुन लिया करते हैं। जंगली जानवरों का पता लगाने में तो ये लोग गजब ही कर दिया करते हैं।

कान्गो नदी के जंगलों के एक यात्री द्वारा इनके जीवन का अधोलिखित वर्णन पढ़ने योग्य है।

"ये लोग प्रत्येक जंगली मार्ग के विषय में बहुत ही धीरे धीरे बातचीत कर लिया करते हैं और इतने दबे पाँव आगे की ओर बढ़ा करते हैं कि किसी प्रकार की आहट न हो सके। आगे चलते वक्त इनकी आँखें बड़ी तेजी के साथ चारों ओर फिरा करती हैं जिससे किसी तरफ कोई चीज देखने में रह न जाय। जरा सी भी आहट पाने पर फौरन ही चौकन्ने हो जाया करते हैं। एक आदमी की अपेक्षा दो आदमी अधिक तेजी के साथ आगे बढ़ सकते हैं। अगर आगे जाने वाला कोई गलती कर जाता है तो पीछे वालों को थोड़े से ही इशारों में उचित मार्ग बता दिया जाता है। यह काम ज्यादातर उँगलियों या आँख के इशारों से ही किया जाता है। अगर संयोगवश दोनों ही गलती पर हुए तो फिर आगे पीछे वाले दोनों ही बड़ी सावधानी और होशियारी के साथ ठीक मार्ग खोजने में लग जाया करते हैं। उसके लिये रास्ते की एक एक लकड़ी और पत्ती बहुत धीरे धीरे हटाई जाती है। जब ये लोग एक दूसरे की आँख से ओझल हो जाया करते हैं तो सीटियों या जंगली चिड़ियों के स्वरों में बातचीत कर लिया करते हैं।

"इस प्रकार जब वे एक दूसरे के निकट पहुँच जाते हैं तो या तो

उँगलियों के द्वारा बातचीत की जाती है या छाती अथवा जंघे पर थपथपा कर ध्यान आकर्षित किया जाता है। संयोगवश किसी को पीछे फिर कर देखना पड़ जाया करता है तो उस समय उसकी हालत देखने योग्य हुआ करती है। कितनी गंभीरता और शांति के साथ वह अपने चारों ओर की चीजों को देखता और किसी प्रकार की भी आवाज न होने देने को बचाया करता है। यदि इतने पर भी कोई लकड़ी या पत्ती खड़क ही जाय तो फौरन एक पाँव पर खड़ा हो कर पत्थर की मूर्ति बन जाया करता है, और इस बात का पता लगाया करता है कि कहीं उसके आसपास वाले जानवरों को उसका पता तो नहीं लग गया।"

इस प्रकार हमने यह देख लिया कि पिगमियों की वर्तमान दशा उनकी भौगोलिक परिस्थितियों का ही फल है। जैसी अवस्था में ये लोग पड़ गये हैं उसके अनुसार बहुत कुछ उद्योग किया करते हैं इसलिये हम लोग इनकी बुराइयों के लिये इन्हें दोषी नहीं ठहरा सकते। यदि आज हम लोग भी उन्हीं की अवस्था में पड़ गये होते तो शायद हमारी भी यही दशा होती। हमें तो इसमें भी संदेह है कि हम लोग इनकी तरह इन भौगोलिक परिस्थितियों से लड़ भी सकते ?

जंगलों के किनारे पर पाई जाने वाली जातियाँ—उपरोक्त जंगलों के बाहिरी किनारों पर वे जंगली जातियाँ पाई जाती हैं जो साफ किये हुये भागों में खेती और कुछ चरागाही का काम किया करती हैं। नई होने के सबब से जमीन खूब ही उपजाऊ हुआ करती है और ऊष्ण कटिबन्ध में होने के कारण बारिश भी खूब हो जाया करती है इसलिये ऊष्ण प्रदेशों के लगभग सभी नाज और फल जैसे—चावल,

कपास, ईख, केले, अनन्नास, और आलू आदि थोड़ी ही मिहनत से पैदा किये जा सकते हैं। यहाँ खेती और घर का सारा काम-काज औरतें ही किया करती हैं। मर्दों का काम लड़ना, शिकार खेलना और ऐश करना ही हुआ करता है। चूंकि यहाँ पर जीवन निर्वाह के लिये अधिक मिहनत नहीं करनी पड़ती इसलिये लोग ज्यादातर सुस्त और संकीर्ण विचारों के पाये जाते हैं। थोड़ी ही तकलीफ़ मालूम होने पर एक स्थान के खेत-पात दूसरे स्थान के बदले में छोड़ दिये जाते हैं और वहाँ फिर नये सिरे से काम प्रारंभ किया जाता है। मध्य अफ्रीका में पहिले पाई जाने वाली गुलामों की तिजारत ने इस बुराई को बहुत बढ़ा दिया था। क्योंकि उस समय में गाँवों और खेतों पर बराबर हमले किये जाते थे और कभी कभी तो प्रान्त के प्रान्त उजाड़ दिये जाते थे। इसका दुष्परिणाम यह होता था कि यहाँ के रहने वाले न तो एक स्थान पर जम कर रह ही सकते थे और न अपनी उन्नति ही कर सकते थे।

ब्राजील के जंगल और उनके रहने वाले—रबड़ की पैदावार के मुख्य स्थान होने के कारण ब्राजील के जंगलों का संसार के और जंगलों में बहुत ही ऊँचा स्थान माना जाता है। ये जंगल अमेजन नदी के बेसिन में हजारों मील फैले हुये हैं। इनकी लम्बाई लगभग १५०० मील और चौड़ाई १२०० मील मानी जाती है। ये जंगल अपनी जल-वृष्टि, जल-वायु और प्राकृतिक सुन्दरता में कान्गो के जंगल से ही मिलते-जुलते पाये जाते हैं और भौगोलिक भाषा में सेल्वाज कहे जाते हैं।

इन जंगलों में भी दो दो सौ फीट ऊँचे पेड़ पाये जाते हैं जिनके चारों ओर लतर और बल्लरियाँ लिपटी रहा करती हैं। यहाँ की आबो-

हवा अत्यन्त ही नम होने के कारण घास-पात और छोटे-मोटे पेड़ तो असंख्यों की तादाद में उगा करते हैं। इस विचार से अमेजन और कान्गों के जंगलों में बहुत थोड़ा अन्तर पाया जाता है। जीव-जन्तुओं में भी बहुत कुछ समानता पाई जाती है। हाँ इन जंगलों में अफ्रीका के से शेर और हाथी अलबत्ता नहीं पाये जाते। यहाँ के बड़े बड़े जंगली जीवों में प्यूमा और जागौर सब से अधिक प्रसिद्ध हैं। छोटे जीव-जन्तुओं की तो बात ही क्या कहनी है। तरह तरह की चीटियों और मकड़ियों से लेकर साँप, विषखोपरे और बन्दर आदि सभी भरे पड़े हैं। इनमें से कुछ का काटना तो अफ्रीका की सीसी मक्खियों का सा ही दुखद हुआ करता है।

इन जंगलों में रहने वाले या तो जंगली इंडियन्स या इंडियन्स और नये यूरोपियन आगन्तुकों के वंशज पाये जाते हैं। किन्तु यह बात जान लेने योग्य है कि असली इंडियन्स अब जंगल के उन्हीं भागों में पाये जाते हैं जहाँ यूरोपीय लोगों का अभी तक कोई प्रभाव नहीं पहुँच सका। इन रेडइंडियन्स का जीवन भी अफ्रीका के पिगमियों से मिलता जुलता पाया जाता है। इनमें से भी अधिकांश लोग बिलकुल असभ्य और अशिक्षित पाये जाते हैं जिनका मुख्य उद्यम जंगली जानवरों का शिकार और जंगल की पैदावार का इकट्ठा करना ही हुआ करता है। जो चीजें इनके खाने पीने से बच जाया करती हैं उन्हें ये लोग बाहरी व्यापारियों के हाथ जोकि महीने महीने या दो दो महीने में फेरा किया करते हैं, बेच डाला करते हैं। इनके रहने के मकान भी वही घास-फूस और मिट्टी के भद्दे झोपड़े हुआ करते हैं। लकड़ी और मिट्टी के दो चार बर्तन के

अतिरिक्त इनके पास भी कोई भाँड़े बर्तन नहीं पाये जाते। इनके यहाँ भी घर का सारा काम-काज औरतें ही किया करती हैं क्योंकि आदमियों को तो अपने ही काम से फुरसत नहीं मिला करती। गोश्त और जंगल के फल फूल ही इनके मुख्य खाद्य पदार्थ हैं। गर्मी के दिनों में तो ये लोग जंगल के भीतरी भागों में घुस जाया करते हैं, किन्तु गर्मी के बाद किसी नदी के किनारे चले जाया करते हैं। इस प्रकार इनका भी जीवन बनजारों का ही जीवन हुआ करता है। यह तो हम पहले ही बता चुके हैं कि यहाँ के लोगों का मुख्य उद्यम रबड़ का इकठा करना ही हुआ करता है यद्यपि अमेजन की पूर्वी तरेटी में कुछ लोग तम्बाकू, कहवा, कोको, अखरोट, केले, ईख और चावल आदि की खेती भी किया करते हैं। रबड़ जंगल के पेड़ों के दूध से बनाई जाती है। यह दूध कई किस्म के पेड़ों से पाया जा सकता है। सबसे प्रसिद्ध पेड़ ऐश (कड़ी छाल का पेड़) से मिलता-जुलता हुआ करता है और बहुत ऊँचा पाया जाता है। जो मनुष्य इसका रस या दूध इकठा करता है वह पहिले जाकर पेड़ में एक गड्ढा काट देता है। जब दूध चूने लगता है तो उसे मिट्टी या टीन के बर्तनों में इकठा कर लिया करता है। दूसरे दिन वह दूध औटा कर कड़ा कर लिया जाता है।

वास्तव में रबड़ एकत्रित करने वालों का भी जीवन बड़ी मुश्किल और मशक्कत का जीवन है। वह अकेले ही या कभी कभी एक और आदमी के साथ लकड़ी और घास-फूस की भद्दी झोपड़ी में रहा करता है। जब उसे रबड़ के पेड़ मिल जाया करते हैं तो घने जंगल में पहिले काट-कूट कर रास्ता बनाया करता है। प्रातःकाल चार ही बजे उठ कर

थोड़ी सी काफी (कहवा) पीता और तब अपनी बन्दूक, कुल्हाड़ी और टीन के प्यालों को लेकर पेड़ों का फेरा किया करता है। यह काम ज्यादातर वैसे ही हुआ करता है जैसे हमारे यहाँ ताड़ी वालों का । फेरा लगा



रबड़ के पेड़ों से दूध निकालना

चुकने पर घर वापस आता और सूखे गोश्त तथा सूखी छीमियों का भोजन किया करता है । इसके बाद फौरन ही पेड़ों पर लगाये प्यालों का दूध इकट्ठा करने के लिये चल दिया करता है। लौट कर फिर उस छोटी सी धुआँधार झोपड़ी में आग जला कर दूध को औटाया करता है

और तब उसका खोया बनाकर एक गोला बना लिया करता है। गोला बनाने के लिये कुछ साँचे हुआ करते हैं जिनमें वह चुरिहारों की तरह काम किया करता है।

उपरोक्त काम के लिये उसको एक विशेष प्रकार के ईंधन की भी आवश्यकता हुआ करती है जिसे उसको पहिले से ही इकठा करना पड़ा करता है। दूध को औटाते औटाते रात हो जाया करती है। और तब वह कुछ खा-पीकर सो जाया करता है। प्रातःकाल उठ कर उसे फिर उसी धंधे में लग जाना पड़ा करता है। इस प्रकार का जीवन बिताने से उसे गठिया और बुखार तो हुआ ही करते हैं कभी कभी किसी जहरीले कीड़े मकोड़े के काट लेने से फौरन ही मर जाया करता है। ताजा गोश्त और ताजा खाना तो उसके लिये बड़े भाग्य की ही बात हुआ करती है।

जङ्गलों का वहाँ के निवासियों पर प्रभाव—चूँकि अमेजन और कान्गो दोनों के जंगल बहुत ही घने पाये जाते हैं और आबोहवा अत्यन्त ही नम और सीड़दार रहा करती है इसलिये इन प्रदेशों में सड़कों और रेलों आदि का तो अभी नाम निशान तक नहीं पाया जाता। यहाँ आने जाने के लिये नदियाँ ही सब से अधिक सुगम और उपयोगी हुआ करती हैं। कान्गो की अपेक्षा अमेजन इस बात के लिये अधिक उपयुक्त पाई जाती है। इस नदी में लगभग ३००० मील तक छोटे मोटे जहाज आ जा सकते हैं। 'मनोज' जोकि अमेजन और रायनीग्रो के संगम पर बसा हुआ है, रबड़ इकठा करने का मुख्य केन्द्र स्थान है और इसके मुहाने पर 'पारा' इस रबड़ को बाहर भेजने का सबसे प्रसिद्ध बन्दरगाह है।

इस प्रकार जंगलों के रहने वालों के विषय में कुछ पढ़ लेने के बाद अब हम यह देख सकते हैं कि भौगोलिक परिस्थितियों का मनुष्य के रहन सहन और आचार विचार पर कितना प्रभाव पड़ा है। बोर्नियो के माकू जो कि अब तक मनुष्य का गोश्त खाया करते हैं, अफ्रीका के पिगमी, अमेजन की तरेटी के रबड़ एकत्रित करने वाले इंडियन्स और भारतवर्ष के कोल और भील आदि सब इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। जहाँ के लोगों में जितनी ही अधिक मानसिक और शारीरिक शक्ति इन परिस्थितियों से लड़ने की आती जाती हैं वे उतने ही अधिक सभ्य होते जाते हैं। यदि आज पिगमी और माकू लोग खेती और मिहनत करना पसंद नहीं करते तो यह इनके चारों ओर की प्रकृति का ही दोष है। जब उन्हें बिना मिहनत के ही खाने पीने को मिल जाया करता है तो फिर वे मिहनत क्यों करने लगे। मनुष्य का यह स्वभाव है कि वह थोड़ी सी थोड़ी मिहनत में अधिक से अधिक लाभ चाहा करता है। चूँकि इनकी परिस्थितियाँ इनकी आवश्यकताओं को बहुत ही संकीर्ण बना दिया करती हैं, इसलिये ये लोग अपने विचारों में भी अधिक विकाश नहीं कर सकते।

इन जंगलों का भविष्य—शीतोष्ण वनों की भाँति ऊष्ण वनों का भी भविष्य बहुत उज्ज्वल बनाया जा सकता है। यदि किसी समय इन जंगलों में आमदरफ्त के सुभीते बढ़ाये जा सके तो इनकी जंगली पैदावार भी कई गुना बढ़ाई जा सकती है। यही नहीं, आगे चल कर भविष्य में इन जंगलों का बहुत सा भाग चरागाहों और खेतों में भी परिवर्तित किया जा सकता है। यहाँ के रहने वाले आदि निवासियों

की भी दशा आगे चलकर बहुत कुछ सुधारी जा सकती है। क्योंकि बाहिरी लोगों के समागम में आने जाने से उनकी मानसिक और सामाजिक उन्नति होना निश्चित ही है।

नवाँ अध्याय

संसार के ऊँचे पहाड़ों और प्लेटुओं पर का जीवन

अभी तक तो हमने मनुष्यों के जीवन का विचार अक्षांशों के सम्बन्ध से किया । अब हमें इसका अध्ययन ऊँचाई के विचार से करना चाहिये । वास्तव में अच्छे और ऊँचे पहाड़ अपने ही में एक भिन्न देश माने जा सकते हैं क्योंकि इनके नीचे से लेकर सब से ऊपरी भाग तक में पिछले अध्यायों के सभी जीवन पाये जा सकते हैं । इनके आसपास की तरेटियों में खेती और चरागाही की जा सकती है । उसके बाद डेसीड्यू अस जंगलों के पेड़ पाये जाते हैं जो कि और ऊपर जाकर कानीफेरस पेड़ों में परिवर्तित हो जाया करते हैं । यहाँ लम्बरिंग की जाया करती है । इसके बाद फिर घास पाई जाती है जहाँ चरागाही की जा सकती है और फिर इनके बाद टन्ड्रा की सी घास मिला करती है जो कि और ऊपर जाकर अटल बर्फ से ढक जाया करती है । इस प्रकार एक ही पहाड़ में हमें टन्ड्रा, टैगा, स्टेप और ऊष्ण-वन-प्रदेशों के सभी दृश्य दिखाई दे सकते हैं । ऐसी विभिन्नता का कारण यही है कि आबोहवा को बदल देने में ऊँचाई का बड़ा प्रभाव पड़ा करता है । साधारणतया ३०० फीट की ऊँचाई एक डिग्री ताप कम कर दिया करती हैं । इसीलिये हिमालय पहाड़ के सब से ऊँचे भागों में टन्ड्रा की सी अटल बर्फ जमा रहा करती है ।

पहाड़ों का प्राकृतिक दृश्य—पहाड़ों का प्राकृतिक दृश्य वास्तव में

देखने योग्य हुआ करता है किन्तु यह बहुत अंशों में उनकी स्थिति पर ही निर्भर रहा करता है। हिमालय पहाड़ को ही लीजिये, यदि हम इसकी सब से ऊँची चोटी पर चढ़ कर इसके उत्तर और दक्षिण की ओर देखें तो पृथ्वी और आकाश का अन्तर पाया जायगा। जहाँ दक्षिण की ओर हरे भरे मैदान, चट्टानों को तोड़ने वाली निर्मल नदियाँ और मनोहर जल-प्रपात पाये जायँगे, वहीं उत्तर की ओर एक ऊसर और उजाड़ तिब्बत का पठार देखने में आयेगा। यदि आप यही बात आल्पस के ऊपर से करें तो आपको उसके दोनों ओर हरे भरे और सुहावने देश देखने में आवेंगे। कहने का तात्पर्य यह है कि पहाड़ों का सौन्दर्य बहुत कुछ उनकी स्थिति और उनके रुख पर ही निर्भर रहा करता है। यही नहीं, इस सौन्दर्य का मिलना और न मिलना एक और बात पर भी निर्भर है और वह है, दर्शक के चढ़ने का स्थान। उत्तरी अमेरिका के राकी पहाड़ों पर यदि कोई आदमी संयुक्त राज्यों की ओर से चढ़ता है तो पहिले उसे चरागाह मिलते हैं फिर डेसीड्यूअस जंगलों के साखू, सागौन और देवदार आदि पेड़, फिर कानी-फेरस जंगलों के पेड़ जैसे शहतीर और झाऊ आदि। फिर छोटी छोटी झाड़ियाँ और घास जो कि अन्त में बर्फ पर पहुँचा देगी। किन्तु जब वह प्रशान्त महासागर की ओर से जाता है तो पहिले मछली मारने योग्य समुद्री किनारा, फिर सिरा नेवादा आदि पहाड़ी श्रेणियाँ और फिर एक अधिकतर सूखा और उजाड़ पठार जो कि महान बेसिन के नाम से पुकारा जाता है। यहाँ पर एक बात और भी समझ लेना चाहिये कि किसी भी पहाड़ में उपरोक्त प्राकृतिक अंगों का विस्तार उसकी स्थिति के अनुसार ही हुआ करता है। यद्यपि आल्पस के करीब करीब सारे विभाग हिमालय

में भी पाये जाते हैं तौ भी शीतोष्ण काटिबन्ध में होने के कारण आल्प्स शीतोष्ण कटिबन्ध की पैदावारों के लिये और हिमालय ऊष्ण कटिबन्ध के निकट होने के कारण ऊष्ण कटिबन्ध की पैदावारों के लिये अधिक उपयुक्त है। जहाँ पहिले में कानीफेरस पेड़ों की अधिकता पाई जाती है वहाँ हिमालय में डेसीड्यूअस पेड़ों की प्रचुरता रहा करती है।

पहाड़ों पर होने वाले उद्यम—साधारणतया अच्छे और ऊँचे पहाड़ों पर हर प्रकार के उद्यम पाये जा सकते हैं। खेती, लम्बरिंग और



एन्डीज के किसान

चरागाही सभी के लिये अच्छा अवकाश रहा करता है। उदाहरणार्थ आल्प्स को ही लीजिये, पहिले उसके नीचे पो नदी की तरेटी में सम्पन्न देश की सारी बातें—खेती, गाँव, नगर और अच्छी जन संख्या—पाई

जाती हैं। जैसे ही हम उसके दक्षिणी ढाल के पास पहुँचते हैं वैसे ही जन संख्या कम पाई जाती है किन्तु जहाँ जलवृष्टि और जमीन अच्छी है वहाँ शहतूत और अंगूर आदि के बगीचे लगाये जाते हैं। इसके ऊपर कुछ खेती के मैदान और डेसी-ड्यूअस पेड़ पाये जाते हैं। इसके और ऊपर कानी-फेरस पेड़ पाये जाते हैं जहाँ लम्बरिंग भली प्रकार की जा सकती है। जो स्थान पेड़ों को काट कर साफ कर डाले गये है वहाँ भेड़-बकरी और ढोर चराये जाते हैं। इनके और ऊपर घास के लम्बे चौड़े चरागाह पाये जाते हैं जो कि वसन्त के दिनों में तरह तरह के फूलों से ढक जाया करते हैं। यहाँ यद्यपि खेती-पाती नहीं की जा सकती पर गर्मी के दिनों में जानवर खूब चराये जाते हैं। इसके और ऊपर जीवन-निर्वाह की कठिनता अधिक होने के कारण लोग बहुत ही कम रहा करते हैं; किन्तु शौकीन लोग घूमने और बर्फ के ऊपर खेले जाने वाले खेलों को खेलने के लिये जरूर जाया करते हैं। इनके उत्तरी ढाल पर भी करीब करीब ये ही बातें पाई जाती हैं; केवल अंगूर और शहतूत के बाग नहीं लगाये जाते क्योंकि उधर की आबोहवा उतनी गरम नहीं है जितनी की दक्षिण की। इस प्रकार हमने देख लिया कि स्विटजर लैंड ऐसे पहाड़ी प्रान्तों में खेती, चरागाह, लम्बरिंग और डेअरी फार्मिङ्ग आदि के सभी उद्यम आसानी के साथ किये जा सकते हैं। यही नहीं छोटी मोटी और हल्की चीजों की कारीगरी का भी अच्छा प्रचार पाया जाता है। चूंकि इन देशों में अक्सर कोयले और लोहे की कमी पाई जाती है इसलिये यहाँ के झरने और यहाँ की नदियाँ बिजली की शक्ति पैदा करने के काम में लाई जाती हैं। यही कारण है कि स्विटजरलैंड और उत्तरी पूर्वी इटली में कोयले और लोहे

के न होते हुए भी चमड़े कपड़े और छोटी मोटी चीजें जैसे लकड़ी की मेज, कुर्सी और घड़ी आदि के बड़े बड़े कारखाने पाये जाते हैं। इन प्रान्तों में छोटी ही छोटी चीजों की कारीगरी होने का एक कारण और भी है और वह है, आमदरफ्त के सुभीतों की कमी। रेलों और सड़कों का कम प्रसार होने के कारण बड़ी बड़ी चीजों का क्रय विक्रय आसानी के साथ नहीं किया जा सकता। इसलिए स्वभावतः ये लोग छोटी छोटी चीजों की ही कारीगरी में विशेष ध्यान दिया करते हैं। भारतवर्ष के काश्मीर और यूरोप के स्विटजर लैंड तथा नर्वे आदि पहाड़ी देशों में—जहाँ कि प्राकृतिक सौन्दर्य भरा पड़ा है—बाहरी दर्शकों के आगत-स्वागत का प्रबन्ध भी यहाँ के लोगों का एक मुख्य कारबार हुआ करता है। यही कारण है कि इन देशों में सैकड़ों होटल पाये जाते हैं जहाँ हजारों आदमियों का जीवन निर्वाह हुआ करता है। भारतवर्ष के काश्मीर राज्य को इस मद्द से करीब करीब गर्मी के दो महीनों में ही उतना रुपया मिला करता है जितना कि साल भर की खेती पाती से।

यह तो हम पहिले ही बता चुके हैं कि भिन्न भिन्न पहाड़ों की पैदावार उनकी स्थिति पर ही निर्भर रहा करती है। उदाहरणार्थ हम यह बता सकते हैं कि हिमालय पहाड़ के ढालों पर कानीफेरस पेड़ों की अपेक्षा डेसीड्यूअस पेड़ अधिक पाये जाते हैं। यही नहीं, जहाँ आल्प्स के ढालों पर अंगूर, शहतूत और शाहबलूत के पेड़ पाये जाते हैं वहाँ हिमालय के ढालों पर चाय और ऐन्डीज के ढालों पर कहवा बोया जाता है। यह सब किसी स्थान की जलवायु पर उसकी ऊँचाई का प्रभाव है।

आजकल पहाड़ों का एक और उद्यम अधिक प्रसिद्ध होता है और

वह है, खानिज पदार्थों का निकालना उदाहरणार्थ हम यह बता सकते हैं कि अल्टाई में सोने की और एन्डीज तथा राकी पहाड़ों में सोने और चाँदी



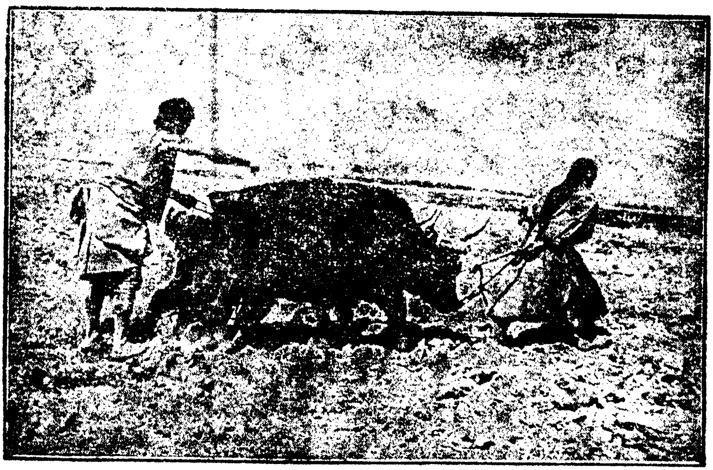
ऐन्डीज पर्वत पर खेती

की खानें पाई जाती हैं। इनके अतिरिक्त तरह तरह के पत्थरों की आमदनी भी एक अच्छी आमदनी हुआ करती है।

पहाड़ी प्रान्तों के निवासी—संसार के पहाड़ों का जो प्रभाव वहाँ के रहने वालों पर पड़ा करता है उसे हम कई प्रकार से देख और समझ सकते हैं। सब से पहिली बात तो यह हुआ करती है कि ये पहाड़ अपने निवासियों के प्रति मैदानों की भाँति अधिक उदार न होकर कुछ कृपण और कठोर हुआ करते हैं। इसका स्वाभाविक फल यह हुआ करता है कि वहाँ के लोग अधिक मिहनती और मजबूत पाये जाते हैं। नैपाल के

गुरखे और अफगानिस्तान के पठान इसके अच्छे उदाहरण हैं। चूंकि प्रकृति इनके प्रति अपनी कठोरता दिखाया करती है इसलिए ये लोग भी अपने जीवन के प्रत्येक अंग को उसी कठोर दृष्टि से देखा करते हैं। अफगानों और सरहद्दी जातियों की मरने और मार डालने वाली प्रवृत्ति का मुख्य कारण उनकी भौगोलिक परिस्थितियाँ ही हैं। दूसरी बात यह है कि ये पहाड़ अपने निवासियों को संसार के और लोगों के सम्पर्क में बहुत कम या बिल्कुल ही नहीं आने देते। हिमालय पहाड़ आज तक भारतवर्ष और तिब्बत के पारस्परिक समागम में आड़ और रुकाव माने जाते हैं। यही हाल यूरोप के पायरनीज और अमेरिका के एन्डीज तथा राकी पहाडों का पाया जाता है। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ करता है कि इन प्रदेशों के रहने वाले एक प्रकार से संसार के और भागों से अलग रहा करते हैं, इसलिये उनके अन्दर वाह्य संसार के प्रति एक उदासीनता सी आ जाया करती है। वे अपने ही भावों और आचार-विचारों में मग्न रहा करते हैं। वाह्य परिवर्तन का उनके ऊपर बहुत कम प्रभाव पड़ा करता है; इसलिये इन प्रदेशों के रहने वालों में पुरानी ही सामाजिक और धार्मिक रूढ़ियाँ पाई जाया करती हैं। इनके आचार विचार और इनका रहन सहन बहुत अंशों में पुराना ही पाया जाता है। यही कारण है कि आसाम और छोटा नागपुर की पहाड़ियों में पाये जाने वाले लोग आज भी करीब करीब वैसे ही हैं। जैसे कि उनके पूर्वज आजसे दो हजार वर्ष पीछे थे। नैपाल और भूटान के रहने वालों के अचार विचार उनक वेष भूषा, और उनके भाषा तथा भाव आज भी थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ ज्यों के त्यों पाये जाते हैं। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि पहाड़ी

प्रांत परिवर्तन और नूतनता के बाधक होते हुये भी प्राचीनता के अच्छे संरक्षक हुआ करते हैं। तीसरी बात यह हैं कि इस प्रकार का एकान्त निवास यहाँ के रहने वालो में स्वाभिमान और स्वदेश प्रेम , स्वदेश से हमारा अभिप्राय जाति विशेष के रहने के प्रान्त से ही है, पैदा कर देता है। मध्य भारत की राजपूत रियासत इसके अच्छे उदाहरण हैं। वहाँ के बुंदेलों, बघेलों और चंदलों में आज तक भी जो कुछ जाति प्रेम और छत्रियत्व पाया जाता है उसका बहुत कुछ श्रेय उनकी भौगोलिक परिस्थितियों को ही है। इसी प्रकार सरहद पर पाई जाने वाली जातियों का स्वातंत्र्य-प्रेम उन पहाड़ियों के स्वतंत्र जीवन का ही परिणाम कहा जा सकता है।



याक द्वारा खेती

पठारों पर रहने वालों का जीवन—ऊँचाई के विचार से पहाड़ों

के वाद पठारों का नम्बर आया करता है। इसलिये यह भी निश्चित है कि संसार के पठार पहाड़ों के ही निकट पाये जायँगे। एशिया, यूरोप और अमेरिका के सभी पहाड़ों के निकट पठारों का कुछ न कुछ अंश अवश्य पाया जाता है। एशिया में इसका सबसे अच्छा उदाहारण तिब्बत का पठार है जो कि अपने चारों ओर ऊँचे पर्वतों से ढका हुआ है। इसका उत्तरी भाग तो अधिकांश में ऊसर, उजाड़ और सूखी हवाओं से प्रभावित पाया जाता है, इसलिये स्वभावतः यहाँ बहुत कम लोग रहा करते हैं जो लोग रहते भी हैं वे ज्यादातर बनजारों की भाँति इधर उधर घूमते और अपने भेड़, बकरी, याक (एक प्रकार का लद्दू भैंस) और कभी कभी ऊँटों के झुंडों को चराया करते हैं। इन जानवरों में याक यहाँ वालों को रेन्डीयर और सहारा वालों को ऊँट। क्योंकि इसी जानवर से उनके खाने को गोश्त, और पहिनने को कपड़ा मिला करता है, तथा यहि जानवर उनके लिये बोझा ढोने और आने जाने में सबसे अधिक काम दिया करता है। तिब्बत के इस उत्तरी भाग में आप हफ्तों चले जाइये और आपको कभी कभी तो एक भी आदमी की सूरत न दिखाई पड़ेगी। वास्तव में तिब्बत का दक्षिणी हिस्सा ही अधिक प्रसिद्ध है क्योंकि यहाँ हमें नदियों की हरी भरी लम्बी तरेटियाँ मिला करती हैं जिनकी जलवायु भी बहुत अच्छी पाई जाती है। यहाँ हमें लोग भी अधिक रहते मिलेंगे। इनमें से कुछ तो खेती-पाती का काम करते और कुछ पठार के ऊँचे भागों में भेड़, बकरी और ढोर चराया करते हैं।

यहाँ की सबसे प्रसिद्ध तरेटी 'साम्पू' या ऊपरी ब्रह्मपुत्रा की तरेटी है। इसमें और इसी प्रकार की दो चार और तरेटियों में जहाँ धरातल अधिक उपजाऊ पाया जाता है और सिंचाई का कुछ प्रबन्ध किया जा सकता है, अनन्नास और शफतालू आदि फल तथा गेहूँ, जौ और मटर आदि बोये जाते हैं। इसके अतिरिक्त थोड़ा बहुत चरागाहो का भी काम किया जाता है! एक यात्री जो भारतवर्ष से चलकर शिकिम के रास्ते से होता हुआ तिब्बत के पठार पर पहुँचा वह अपने अनुभव को इस प्रकार बताता है कि "तिब्बत के इस भाग की सुन्दरता को अनुभव करने के लिये यह आवश्यक है कि पहिले प्रत्येक आदमी पहाड़ों की तरेटी की अत्यधिक जलवृष्टि, गर्मी और नमी की कठिनाइयों का कुछ न कुछ अनुभव कर ले। बादलों और कुहरे से ढकी हुई अटल बर्फ के दृश्य को लगातार देखते देखते हताश हो ले। शिकिम की घने जगलों और बाँस की कोटों से भरी-पुरी वादियों में कुछ भ्रमण कर ले। तब वह आदमी इतने दिन की कठिन यात्रा के बाद विभाजक श्रेणी के दर्रे को पार कर एक ही क्षण में एक दूसरी दुनिया में जा पहुँचता है। यहाँ उसे मालूम होता है कि अब तो वह एक ऊँचे पठार में जो चौड़ी वादियों, गोलाकार बर्फ से ढकी हुई पहाड़ी चोटियों और हरे-भरे चरागाहों से भरा-पुरा है—पहुँच गया है, जहाँ बादलों और कुहरे के स्थान में सूर्य की सुन्दर रोशनी और गर्मी पाई जाती है।

लासा जो तिब्बत की राजधानी है इसी प्रकार की एक तरेटी में स्थित है। सन् १९०४ ई० में जो अंग्रेजी मिशन तिब्बत भेजा गया था उसके सदस्य यहाँ के निवासियों और उनके गाँवों की गन्दगी को देखकर

घबरा गये थे। यहाँ की सबसे विचित्र बात यहाँ के लोगों के धार्मिक विचार हैं। यद्यपि कहने के लिये ये लोग बौद्ध धर्म के अनुयायी माने जाते हैं तो भी वास्तव में इनका धर्म अब भूतों और प्रेतों का ही धर्म रह गया है। प्रत्येक पहाड़ी कन्दरा या खोह, भीत का सूराख, और पत्थरों की दरार भूतों और प्रेतों के निवास-स्थान माने जाते हैं जिनको दूर रखने के लिये भाँति भाँति के यंत्र, मंत्र, टोटके और पूजा पाठादि किये जाते हैं। जगह जगह पर इसके लिये निशान और झँडे गाड़े गये हैं। चूँकि इसके लिये पुजारियों की अधिक आवश्यकता पड़ा करती है इसलिये यहाँ के साधुओं—जो केवल लासा में पचीस हजार से अधिक पाये जाते हैं—और साधारण जनता के रहन-सहन में बड़ा अन्तर पाया जाता है। इसका अनुमान वे ही लोग भली प्रकार कर सकते हैं जिन्होंने किसी आदि जाति के गाँव में टोटकादिक जानने वाले पंडित जी को देखा हो।

ऐन्डीज पहाड़ों के पीरु और बोल्विया पठारों में जलवायु उतनी विषम नहीं पाई जाती जितनी तिब्बत में। इसका कारण यह है कि तिब्बत समुद्र से बहुत दूर और चारों ओर ऊँचे पहाड़ों से ढका हुआ है। पीरु और बोल्विया यद्यपि पहाड़ों से घिरे हुये हैं तो भी समुद्र और विषुवत् रेखा के बहुत निकट हैं। यह पठार २½ मील के लगभग ऊँचा पाया जाता है और इसके आस पास की पहाड़ी चोटियाँ २०००० फीट से अधिक ऊँची पाई जाती हैं।

चूँकि तिब्बत की भाँति ये पठार भी अपने चारों ओर ऊँचे पहाड़ों से घिरे हुये हैं इसलिये जलवृष्टि इनमें भी बहुत कम पाई जाती है। इसका स्वाभाविक परिणाम यही पाया जाता है कि यहाँ भी घास के

अतिरिक्त और किसी प्रकार के भी बड़े पेड़ अधिक संख्या में नहीं पाये जाते । इससे यह साफ़ जाहिर है कि यहाँ के निवासियों का भी मुख्य उद्यम भेड़, बकरी और ढोर चराना ही पाया जायगा । यहाँ के सबसे



पहाड़ी लद्दू घोड़े

उपयोगी और प्रसिद्ध जानवर 'लामा' (याक की तरह का बैल) अल्पाका और विकून हैं । वास्तव में लामा का यहाँ वही स्थान माना जाता है जो कि 'याक' का तिब्बत में । इन जानवरों से खाने को गोश्त और पहिनने के कपड़े मिला करते हैं । इसके अलावा 'लामा' सवारी और बोझ ढोने के भी काम में लाया जाता है ।

पीरू और बोल्विया पठारों की सब से अधिक उपयोगिता इनकी चाँदी की खानों में मानी जाती है । सन् १५४५ ई० से लेकर आज तक

में लगभग ६० करोड़ पौंड की चाँदी निकाली जा चुकी है। इसकी सबसे प्रसिद्ध खान बोल्विया में पोटोसी और पीरु में सीरो डी पैस्को हैं। चाँदी के अतिरिक्त इन पठारों में टीन और ताँबे की भी अच्छी खानें पाई जाती हैं। इस प्रकार खान खोदना भी यहाँ के लोगों का एक मुख्य उद्यम पाया जाता है। किन्तु इसकी अधिक उन्नति इसलिये नहीं की जा सकती कि अधिक ऊँचाई पर होने के कारण यहाँ की हवा बहुत ही झीनी पाई जाती है जिससे मैदानों में रहने वाले लोग यहाँ अच्छी तरह काम नहीं कर सकते। क्योंकि उन्हें साँस लेने में बड़ी तकलीफ हुआ करती है। सिर का दर्द, बुखार, उल्टी, आँखों और नाखूनों का नीला हो जाना और मूर्छा आदि अनेकों पहाड़ी बीमारियाँ हो जाया करती हैं। इसी कारण यहाँ रेलों और सड़कों का भी अच्छा प्रचार नहीं किया जा सकता क्योंकि बाहरी लोग तो काम कर ही नहीं सकते और यहाँ के रहने वाले करना ही नहीं चाहते।

जब स्पेन वाले पहिले पहल यहाँ आये तो उन्हें यहाँ 'इन्का' (इंडियन्स की जाति विशेष) लोगों का राज्य मिला। ये लोग अपने आसपास वाले और इंडियन्स की अपेक्षा कहीं अधिक सभ्य और चतुर पाये जाते थे क्योंकि इनका एक साम्राज्य था और उसमें अच्छी अच्छी सड़कों, नहरों और इमारतों की अच्छी संख्या पाई जाती थी। 'कुज्को' में जो इनकी राजधानी थी, बहुत से अच्छे अच्छे मकानातें और मन्दिर थे। इनका मुख्य पेशा खेती था और उसकी खास पैदावार मक्का मानी जाती थी। अपने आल्पाका और लामा के बालों से ये लोग सुन्दर सुन्दर कम्बल और कपड़े भी बना लिया करते थे। इतना

होते हुये भी ये लोग बहुत ही शांत, सरल और एकान्त प्रेमी पाये जाते थे। यही कारण था कि पिजारो अपने थोड़े से आदमियों को लेकर इनके सारे साम्राज्य को जीत सका था क्योंकि इन बाहरी आगन्तुकों के पास लड़ाई के अस्त्र-शस्त्र 'इन्का' लोगों से कहीं अधिक अच्छे पाये जाते थे। लीमा और लापाज इनके आधुनिक प्रसिद्ध नगर हैं।

पीरू और बोल्विया के उत्तर ईक्वेडर का पठार है जो और बातों में इन्हीं पठारों से मिलता-जुलता पाया जाता है; किन्तु जलवायु कुछ अधिक अच्छी पाई जाती है।

उत्तरी-अमेरिका के पठार उत्तरी अमेरिका में कार्डीलेराज के पश्चिमी भागों में भी कई एक पठार पाये जाते हैं जो एलास्का और टेहान्टपिक की खाड़ी के बीच में फैले हुये हैं। इनमें कालोरैडो के पठार अपनी पहाड़ी घाटियों के लिये प्रसिद्ध हैं। तिब्बत और पीरू की भाँति यहाँ भी पानी बहुत कम बरसा करता है और इसी लिये जनसंख्या भी बहुत ही थोड़ी पाई जाती है यहाँ के रहने वाले भी इंडियन ही हैं जो पत्थरों और ईंटों के मकानों में रहा करते हैं। ये मकान यहाँ की भाषा में 'होगन' कहे जाते हैं। इनमें एक ही कमरा हुआ करता है किन्तु वह काफी सुखप्रद बनाया जाता है। इसके अन्दर हवा और ठंडक कुछ भी असर नहीं जना सकती और इसके एक कोने में आग जलाने का भी प्रबन्ध रहा करता है। ये लोग भेड़ और बकरियाँ ही चराया करते हैं और उन्हीं को लिये हुये ज्यादातर नदियों के किनारे ही रहा करते हैं।

कैलीफोर्निया की घाटी—इस भाग का सब से प्रसिद्ध हिस्सा

कैलीफोर्निया की तरेटी या घाटी है। इसकी जमीन नदियों के द्वारा लाई हुई पहाड़ी मिट्टी से बनी है और इसीलिये बहुत ही उपजाऊ पाई जाती है। पश्चिमी पठारों का उत्तरी भाग पछुआ हवाओं के रास्ते में पाया जाता है इसलिये वहाँ तो साल भर बराबर बारिश हुआ करती है; किन्तु कैलीफोर्निया में केवल जाड़े के दिनों में ही पानी बरसा करता है। गर्मी की ऋतु तो गरम और सूखी ही रहा करती है जिसमें सूर्य भी खूब चमका करता है। इस प्रकार की जलवायु फलों की पैदावार के लिये सबसे अधिक उपयुक्त हुआ करती है और यही कारण है कि कैलीफोर्निया फलों की पैदावर के लिये संसार का एक प्रमुख देश माना जाता है।

यहाँ हमें सैकड़ों एकड़ नारंगी और नीबू के कुंज, शफ़तालू, बेर, और जैतून के बाग और लाखों अंगूर के दरख्त देखने में आयेंगे। इनके सिवा बादाम, अखरोट, अंजीर और अनन्नास आदि के भी बड़े बड़े खेत मिलेंगे। यही नहीं हजारों बीघे जमीन इन फलों से भरे हुये बर्तनों से ढकी रहा करती हैं। कहीं तो सफतालू और अनन्नास सूख रहे हैं, कहीं अंगूर सुखाकर किशमिश और मुनक्के बनाये जा रहे हैं और कहीं बेर, सुखाकर कूटी और बेरचूर में परिवर्तित की जा रही है। चूँकि यहाँ की आबोहवा ज्यादातर गरम और सूखी पाई जाती है इसलिये ये फल बिना खराब हुये ही सूख जाया करते हैं। इस प्रकार प्रतिवर्ष हजारों मन सूखे फल दूसरे देशों को भेजा जाया करते हैं।

आश्चर्य की बात तो यह है कि अभी थोड़े ही वर्ष पहिले ये उपजाऊ खेत ऊसर और उजाड़ प्रान्त थे; किन्तु अब पहाड़ों से निकलने वाली

नदियों से नहर निकाल कर हरे-भरे देशों में परिवर्तित कर दिये गये हैं। ऐसे ही उपजाऊ प्रान्त के निकट होने के कारण 'सैन फ्रान्सिसको' प्रशान्त महासागर का एक प्रसिद्ध बन्दरगाह बन गया है और 'सुनहला फाटक' कहा जाता है। इसी के आस पास कैलीफोर्निया के सबसे अधिक निवासी पाये जाते हैं क्योंकि पश्चिमी पठारों का शेष भाग सूखा और उजाड़ होने के कारण अधिक आबादी के योग्य नहीं पाया जाता।

कैलीफोर्निया के दक्षिण का प्रान्त ऊसर और उजाड़ पाया जाता है। केवल स्नेक नदी की तरेटी और साल्टलेक के आस-पास ही कुछ खेती-पाती हुआ करती है। साल्टलेक के पास ही साल्टलेक नामक नगर भी है जिसके आस-पास मोरमन्स नामक लोग रहा करते हैं। यद्यपि ये लोग एक विचित्र धर्म के अनुयायी पाये जाते हैं तो भी खेती-पाती का काम खूब किया करते हैं। इसके और दक्षिण मेक्सिको का पठार पाया जाता है। इस पठार का अधिकांश भाग उजाड़ रहा करता है। केवल दक्षिण भाग में जिसकी ऊँचाई ८००० फीट के लगभग पाई जाती है और जहाँ का धरातल ज्वाला मुखी पहाड़ों से निकली हुई चीजों का बना हुआ है गेहूँ, मक्का, सेम और फलों की खेती की जाया करती है। पानी के लिये यहाँ पर भी बर्फ और बर्फीली नदियों के ही ऊपर निर्भर रहना पड़ा करता है। यहाँ चाँदी भी निकाली जाती है।

अफ्रीका का एबीसीनियन पठार—अधिकांश में आग्नेय चट्टानों का बना हुआ है जिसमें पहाड़ी नदियों ने बहुत गहिरी घाटियाँ काट डाली हैं। इसी कारण यहाँ आमदरफ्त के सुभीते बहुत कम पाये

जाते हैं और लोग एक प्रकार से बाहिरी संसार से बिल्कुल अलग रहा करते हैं। चूंकि यहाँ पारस्परिक समागम बहुत ही कठिन पाया जाता है इसलिये लोग अपनी आर्थिक और सामाजिक उन्नति भी नहीं कर सकते। यद्यपि यहाँ के लोग शिक्षित समाज से बहुत पिछड़े पाये जाते हैं तो भी पहाड़ों का एकान्त-निवास-जनित स्वदेश और स्वतंत्रता प्रेम काफी पाया जाता है और पहाड़ी निवासियों की भाँति ये लोग भी अच्छे सैनिक हुआ करते हैं। प्रायः प्रत्येक आदमी सशस्त्र चला फिरा करता है।

यद्यपि यहाँ की पैदावार अब से कई गुना बढ़ाई जा सकती है तो भी यहाँ के निवासी इस ओर अधिक ध्यान नहीं दिया करते हैं। इसका कारण केवल एक ही है और वह है, इनका सरल और सुस्त जीवन। भारतवासियों की तरह जो कुछ कम से कम मिहनत करने पर मिल जायगा उसी पर संतोष कर लेंगे। आजकल यहाँ के मुख्य उद्यम कहवा, कपास, धान और गरम प्रदेशों के फलों की खेती और पहाड़ी ढालों पर चरागाही ही है। यहाँ का सबसे प्रसिद्ध नगर एडिस अबाबा है जो सफाई के विचार से बहुत ही गंदा पाया जाता है।

इस प्रकार हमने यह देख लिया कि पहाड़ों और पठारों की उपयोगिता बहुत कुछ भिन्न भिन्न पाई जा सकती है। तिब्बत ऐसे पठारों में तो टन्ड्रा का सा कठिन जीवन पाया जाता है। किन्तु बोल्विया, कैलीफोर्निया और एबीसीनिया आदि में, यदि मनुष्य चाहे तो, काफी सुखमय जीवन बना सकता है। यहाँ केवल दोही बातों की कठिनाइयों को दूर करने की शक्ति होनी चाहिये; पहिली तो पानी की कमी और दूसरे

आने जाने के मार्ग। इनके लिये साधन तो अवश्य पाये जाते हैं; किन्तु उनका यथेष्ठ उपयोग करने के लिये शारीरिक और आर्थिक शक्ति के साथ सहन-शीलता की भी बड़ी जरूरत है। यदि किसी प्रकार इन प्रदेशों की ये बाधायें दूर हो जायँ तो वे बाहरी संसार के सम्पर्क में आकर अधिक उन्नति कर सकते हैं। किन्हीं किन्हीं प्रान्तों में जलवायु की कठिनाइयाँ भी अवश्य पाई जाती हैं किन्तु वे इतनी असाध्य नहीं हुआ करतीं कि साहसी और उत्साही मनुष्यों के प्रसार को ही रोक सकें।

ज्वालामुखी पहाड़ों के देशों में रहने वालों का जीवन—इस अध्याय को समाप्त करने से पहिले हमें एक प्रकार के और पहाड़ी प्रान्तों का जीवन देख लेना चाहिये और वे हैं, जापान और पश्चिमी द्वीप समुह ऐसे ज्वालामुखी पहाड़ों के देश। यो तो ज्वालामुखी पहाड़ों का विस्तार पूर्वी द्वीप समूह, प्रशान्त महासागर के द्वीप समूह और अमेरिका के ऐन्डीज तथा राकी पहाड़ों तक भी पाया जाता है; किन्तु निवासियों के जीवन पर इनके प्रभाव का सबसे अच्छा उदाहरण जापान, न्यूजीलैंड और पश्चिम के द्वीपों में ही देखा जाता है।

उपरोक्त जिन जिन देशों में ज्वालामुखी पहाड़ पाये जाते हैं उन सब की प्राकृतिक दशा तो बहुत अंशों में एक सी ही पाई जाती है। करीब करीब सभी का धरातल ज्वालामुखी पहाड़ों से निकली हुई चीजों का बना हुआ है और वह बहुत ही उपजाऊ पाया जाता है। बहुतेरों में अब तक प्रज्वलित ज्वालामुखी पहाड़ पाये जाते हैं और अधिकांश में प्रशान्त ज्वालामुखी पहाड़ों के क्रेटर विद्यमान हैं। सभी में

समतल धरातल की अपेक्षा पथरीला भाग अधिक पाया जाता है। नदियों की संख्या वहाँ की जलवृष्टि पर निर्भर रहा करती है।

इनकी जलवृष्टि और जलवायु तो इनकी स्थिति पर ही निर्भर रहा करती हैं। उदाहरणार्थ हम यह बता सकते हैं कि जापान में उत्तर के अत्यन्त ठंडे भागों से ले कर दक्षिण से काफी गरम प्रान्त तक पाये जाते हैं। न्यूजीलैंड की जलवायु समशीतोष्ण पाई जाती है। इनके विरुद्ध न्यूगिनी और क्यूबा आदि द्वीपों की जलवायु अत्यन्त ही गरम और नम रहा करती है।

इनके निवासियों के उद्यम भी बहुत ही भिन्न भिन्न पाये जाते हैं। जापान में यद्यपि खेती, चरागाही, लम्बरिंग और कारीगरी के सभी उद्यम किये जाते हैं; किन्तु अन्त में यह व्यवसाय प्रधान देश ही माना जाता है। इसी प्रकार न्यूजीलैंड खेती और चरागाही प्रधान देश है। क्यूबा, जमैका और दूसरे देशों में खेती और लम्बरिंग ही अधिक की जाया करती है। यहाँ पर हमें इन पहाड़ों का कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य मिला करता है। जापान में दियासलाई की कारीगरी का मुख्य कारण यहाँ के ज्वालामुखी पहाड़ों से निकली हुई गंधक ही है। इसी प्रकार न्यूजीलैंड के स्वास्थ्य-सुधारक स्थान होने के मुख्य कारण वहाँ के गरम गेसर हैं जो एक प्रकार से ज्वालामुखी पहाड़ों के ही प्रतिफल हुआ करते हैं।

इन ज्वालामुखी पहाड़ों का सबसे अधिक प्रभाव वहाँ के निवासियों के रहन-सहन पर पड़ा करता है। चूंकि ऐसे प्रदेशों में भूचाल बहुत आया करते हैं, इसलिये ये लोग ईंट और पत्थरों के तिमहले या

चौमहले मकान नहीं बना सकते। ऐसा करने से जन और धन दोनों की अधिक हानि होने का भय लगा रहा करता है। फलतः इन लोगों के मकानात लकड़ी, (बाँस) कागज और कपड़ों के ही हुआ करते हैं। ईंटों और पत्थरों का इनमें कम से कम प्रयोग किया जाया करता है। आने जाने के लिये भी रेलों और ट्रैम आदि का उतना प्रसार नहीं किया जा सकता जितना दूसरे देशों में। यही कारण है कि जापान में रिक्षायों का प्रचार अधिक पाया जाता है। इतना करते हुआ भी जब कभी भूडोल आया करता है तो हजारों आदमियों का नुकसान हो जाया करता है।



लकड़ी के मकान

चूंकि यहाँ के मकानें ईंटों और पत्थरों के न होकर कागज, लकड़ी और कपड़ों के हुआ करते हैं, इसलिये इनमें हमारे यहाँ के मकानों से

कई एक विशेषतायें भी पाई जाती हैं। पहिली तो यह है कि इनके मकान बहुत ही साधारण हुआ करते हैं, जिनमें खपरों या घास-फूस की ऐसी भारी छत हुआ करती है जो जाड़े के दिनों के तूफानों से उड़ाई न जा सके। छत के चारों कोनों पर बाँस के चार खंबे रहा करते हैं। इसका ढाल इतना तेज रक्खा जाता है कि पानी न रुक सके और उसमें सूर्य की रोशनी से बचने के लिये काफी लम्बे छज्जे रहा करते हैं। इनके मकानों की दीवालें मोटे तेलदार कागज की बनी रहा करती हैं और रात में लकड़ी के शटर्स—(किवाड़ या झाप) चारों ओर लगा दिये जाते हैं। इन मकानों का भीतरी भाग कागज के पर्दों द्वारा आवश्यकतानुसार एक, दो या चार कमरों में बाँट दिया जाया करता है। इनके अन्दर मेजें, कुर्सियाँ और चारपाइयाँ नहीं पाई जातीं, क्योंकि लोग धान के पयाल से बने हुए गद्दों पर सोते और मोढों पर बैठा करते हैं। इसीलिये कमरों की लम्बाई चटाइयों की संख्यानुसार बताई जाती है। यदि किसी कमरे में चार चटाइयाँ बिछाई जा सकती हैं तो वह कमरा चार चटाई का कमरा कहा जावेगा।

इस प्रकार के मकानों की सबसे बड़ी बुराई यह हुआ करती है कि ये थोड़ी सी ही असावधानी करने से जलकर राख हो जा सकते हैं। इस कारण यहाँ के लोग अपनी तसवीरों और दूसरी अमूल्य वस्तुओं को एक सुरक्षित स्थान में इकट्ठा रक्खा करते हैं। किन्तु उसके साथ ही साथ फायदा भी इतना है कि भूडोल आने पर पहिले तो ये मकान गिरते ही नहीं और यदि गिरे तो थोड़ी ही मिहनत में फिर से बनाये जा सकते हैं।

चूंकि इन मकानों में कागज के पर्दे लगे रहा करते हैं इसलिये यहाँ का साधारण नियम है कि प्रातः काल सब पर्दे हटा दिये जाते हैं जिससे एक राही घर के अन्दर की सारी चीजें को देख सकता है। इस प्रकार के खुले हुये मकानों में साफ और ताजी हवा बराबर आ जा सकती है। यही कारण है कि जापानी लोग सूर्य की रोशनी और ताजी हवा के बड़े प्रेमी हुआ करते हैं। यही नहीं, इस प्रकार के खुले मकानों में गर्मी की उमस भी नहीं मालूम हुआ करती।

चूंकि जापान में चरागाही बहुत कम की जा सकती है इसलिये यहाँ चमड़े की भी बहुत कमी पाई जाती है। यही कारण है कि यहाँ के लोग लकड़ी के चप्पल या खड़ाऊँ अधिक पहिना करते हैं। खाने पीने के लिये इनका मुख्य भोजन चावल और मछली है क्योंकि ये दोनों चीजें यहाँ खूब पाई जाया करती हैं। इनके अतिरिक्त फलफूल और चाय आदि का भी काफ़ी प्रयोग पाया जाता है। कपड़ों में रेशमी कपड़े का अधिक प्रचार पाया जाता है क्योंकि यहाँ के लोग रेशम के कीड़े खूब पाला करते हैं ; भेड़ों की कमी के कारण ऊनी कपड़े बहुत महँगे मिला करते हैं।

लोगों के अचार-विचार—जापान की स्थिति का यहाँ के निवासियों पर बड़ा ही प्रभाव पाया जाता है। प्राचीन काल में जब कि आज कल के से धुआँकश जहाज नहीं पाये जाते थे; ये लोग अपने चारों ओर के समुद्रों के अत्यन्त तूफानी होने के कारण बाहरी संसार से एक प्रकार अलग से कर दिये गये थे। जाड़े के दिनों में महाद्वीप की ओर से और गर्मी के दिनों में जापान की ओर से भयंकर तूफान आया

करते थे। इसीलिये इनमें पहाड़ियों का सा एकान्त-जनित स्वदेश प्रेम बहुत ऊँचा पाया जाता है। जापानी लोग संसार के सबसे अधिक स्वदेश-प्रेमी माने जाते हैं और वस्तुतः इन्हें अपने यहाँ की नदियों, पहाड़ों और फूलों आदि का बड़ा अभिमान भी हुआ करता है। इनके यहाँ की बनी हुई ऐसी शायद ही कोई चीज होगी जिस पर किसी न किसी फूल, नदी या पहाड़ का चित्र न बना रहे।

दूसरी बात यह है कि अपने चारों ओर समुद्र से घिरे होने के कारण अंग्रेजों की भाँति ये लोग भी बहुत अच्छे मल्लाह हुआ करते हैं। तीसरी बात यह है कि रात दिन भूचालों के धक्के सहते सहते ये लोग मृत्यु से तो एक प्रकार निडर ही पाये जाते हैं। यही नहीं, ऐसे दैव दुर्विपाकों के कारण इनके अन्दर आपत्तियों से लड़ने और दुःख को शान्ति पूर्वक सह लेने की भी एक अच्छी शक्ति पाई जाती है। बड़ी से बड़ी आपत्ति में भी ये लोग शान्त और सुदृढ़ रहा करते हैं

चौथी बात यह है कि एक ऐसे खुले मकान में रहने के कारण जिसका प्रत्येक भाग बाहरी लोग देख सकते हैं, इनके अन्दर एक अद्भुत सहनशीलता और गंभीरता भी पाई जाती है। यदि किसी जापानी के घर में जाकर कोई क्रोध दिखावे और कटु शब्दों का प्रयोग करे तो उसके बदले में ये लोग क्रोधित न होकर और कटु शब्दों का प्रयोग न कर हँसते हुये उसे सहन कर लेंगे। सचमुच—'तुलसी मीठे बचन ते, सुख उपजत चहुँ ओर'। अगर वह आदमी जरा भी समझदार हुआ तो अवश्य ही इनकी यह मंद हँसी और शान्ति उसके हृदय को जीतने में जादू का काम किया करती है।

ग्यारहवाँ अध्याय

संसार के कारीगरी-प्रधान-प्रदेशों का जीवन

टन्ड्रा, टैगा, पहाड़ और मैदानों के जीवन के विषय में पढ़ लेने के पश्चात् अब हम इस अध्याय में कारीगरी-प्रधान प्रदेशों का जीवन पढ़ेंगे। कारीगरी प्रधान प्रदेशों से हमारा अभिप्राय संसार के उन भागों से है जहाँ आजकल वैज्ञानिक उपयोगों के द्वारा किसी विशेष वस्तु की अधिक से अधिक कारीगरी और उपलब्धि की जाती है। जैसे भारतवर्ष में रानीगंज, झरिया और उमरिया कोयले के लिये खास स्थान हैं। इसी प्रकार कलकत्ता जूट और कपड़ों के लिये, कानपुर कपड़ों और चमड़े की चीजों के लिए, टाटानगर लोहे की चीजों के लिये और नागपुर तथा अहमदाबाद कपड़ों के लिये प्रसिद्ध स्थान हैं। इस प्रकार के विशेष स्थानों में बहुत से आदमी किसी विशेष उद्यम को करते हुए पाये जाते हैं।

यों तो संसार की प्रायः सभी जातियाँ किसी न किसी प्रकार की कारीगरी अवश्य कर लिया करती हैं। उत्तरी और कान्गो तथा अमेजन की शिकारी जातियों में भी—जिन्हें हम अपने विचार से बिलकुल असभ्य समझा करते हैं, कई प्रकार की मामूली कारीगरियाँ पाई जाती हैं। उदाहरणार्थ हम यह बता सकते हैं कि कुछ इस्कीमो लोग हारपून बनाने में बड़े चतुर हुआ करते हैं। इसी प्रकार पिगमियों की कुछ जातियाँ अपने विचार से बहुत ही अच्छा तीर और कमान बना लिया करती हैं। यही नहीं प्रायः

संसार की सभी जातियों में कुछ लोग ऐसे अवश्य पाये जाते हैं जो पहिनने के लिए किसी न किसी प्रकार के कपड़े और खाने पीने के लिए किसी न किसी प्रकार के बर्तन अवश्य बना लिया करते हैं। किन्तु यहाँ पर हमारा विचार कारीगरी के आधुनिक विस्तार और रूप पर विचार करने का है। इसके अनुसार आजकल संसार के दो भाग तो अत्यन्त ही प्रमुख माने जाते हैं। पहिला यूरोपीय देश और दूसरा अमेरिका के संयुक्त राज्य; यद्यपि एशिया में जापान भी इन दोनों महाद्वीपों के समतुल्य ही पाया जाता है।

कारीगरी और कार्य विभाग—कारीगरी में सब से पहिली बात कार्य विभाग है। संसार के सब मनुष्य न तो सब प्रकार की चीजों को ही बना सकते हैं और न सब प्रकार की चीजें एक ही मनुष्य के द्वारा बनाई जा सकती हैं। इसलिए यह निश्चित है कि कोई विशेष वस्तु कुछ विशेष मनुष्यों के द्वारा ही बनाई जा सकेगी। यही नहीं, संसार के प्रत्येक स्थान में प्रत्येक प्रकार की वस्तु भी नहीं बनाई जा सकती। अर्थात् प्रत्येक स्थान किसी विशेष प्रकार की कारीगरी के ही लिए उपयुक्त हुआ करता है। जैसे भारतवर्ष में जूट के लिए कलकत्ता, इंगलैंड में सूती कपड़ों के लिए मैन्चेस्टर और फ्रांस में अंगूरी शराब के लिये बोर्डो और रेशम के लिए लिआन्स ही अधिक उपयुक्त स्थान हैं।

अब जब हमने यह देख लिया कि कुछ विशेष प्रकार के मनुष्य ही किसी विशेष कार्य या कारीगरी के लिए उपयुक्त हुआ करते हैं तो यह भी निश्चित है कि वे मनुष्य उसी काम के करने में अधिक सफलता भी प्राप्त कर सकते हैं। अँग्रेजी कहावत के अनुसार संसार की सब चीजों में अधूरी

योग्यता रखने के बजाय एक में पूर्ण योग्यता प्राप्त कर लेना कहीं अधिक अच्छा हुआ करता है। इससे समय की भी बचत हुआ करती है और चीज़ें भी अच्छी बना करती हैं। इसी का नाम किसी वस्तु में विशेष योग्यता प्राप्त करना है।

सम्भवतः इसी विचार से उपरोक्त कार्य-विभाग संसार की सभी जातियों में पाया जाता है। जातियों में ही नहीं, इसके प्रत्येक अंग में भी पाया जाता है। घरों में मर्दों का काम कुछ हुआ करता है और औरतों का कुछ; गाँवों में बढ़ई का काम बढ़ई किया करता है और लोहार का काम लोहार। इसी प्रकार नगरों में यदि कुछ डाक्टर हैं तो कुछ अध्यापक और कुछ दूकानदार। यदि एक ही मनुष्य डाक्टर, अध्यापक और दूकानदार सभी बनना चाहे तो शायद वह इन तीनों में से एक भी न बन सकेगा।

संसार की सब से अशिक्षित जातियों में यह कार्य-विभाग विशेषतया मर्दों और औरतों में ही पाया जाता है। यहाँ मर्दों का काम हुआ करता है, भोजन और वस्त्र का प्रबन्ध करना, तथा औरतों का काम हुआ करता है, घर की देख रेख और गृहस्थी का प्रबन्ध करना। इस प्रकार मर्दों को अपने उद्यम के कारण विशेषतया घर के बाहर ही, औरतों को घर के अन्दर ही रहना पड़ा करता है।

औरतों की यह स्थिरता ही कारीगरी की जन्मदात्री कही जा सकती है। कारण इसका यह है कि घर की सारी देख रेख इन्हीं के ऊपर होने के कारण इन्हें उसकी बहुत सी आवश्यकताओं का अनुभव हो जाया करता है। धीरे धीरे ये उनकी पूर्ति का प्रयत्न भी करने लग जाया करती हैं

और इस प्रकार खेती-पाती, बुनना, कातना, तथा बर्तन आदि बनाना प्रारंभ कर दिया करती हैं। यहीं से कार्य-विभाग भी प्रारंभ हो जाया करता है। मर्दों का काम भरण-पोषण का प्रबन्ध करना हो जाया करता है और औरतों का खाना पकाना, कपड़ों का कातना और बुनना आदि। स्वभावतः मर्द लोग तीर, कमान, भाले, बर्छी और डेंगियाँ बनाना सीख जाया करते हैं। इसका सबसे अच्छा उदाहरण इस्कीमों लोगों में पाया जाता है जिनमें जाड़े के दिनों में औरतें रोओं के कपड़े बनाया करती हैं और मर्द लोग हारपून तथा कयाक नामक डेंगियाँ बनाने में लगे रहा करते हैं।

कारीगरी और जाती-विभाग—इस प्रकार जैसे जैसे जातियाँ अधिक शिक्षित, संगठित और संमिश्रित होती जाती हैं वैसे ही वैसे मर्द लोग औरतों का काम अपने ऊपर लेते जाते हैं। धीरे धीरे ये लोग खेती-पाती, कातने-बुनने और खाना पकाने आदि का काम भी करने लग जाया करते हैं जब मर्दों में कारीगरी का काम अधिक बढ़ जाया करता है तो उनके भी भिन्न भिन्न दल हो जाया करते हैं। यदि कुछ लोग खेती-पाती में लगे रहते हैं तो कुछ लोग कपड़े बनाने में। यही हालत आगे चल कर जातियों में भी अपने विस्तृत रूप में पाई जाने लग जाती है। यदि ऐसा न हो तो खेती करने वाले कपड़े कहाँ से लावें और कपड़ा बनाने वालों को खाना कौन दे ! इसके उदाहरण हमें संसार की प्रायः सभी जातियों में मिल सकते हैं। उतरी अमेरिका के रेड इंडियन्स में कुछ ही जातियाँ तीर और बर्छी बनाने के लिए प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार हब्शियों में हाथीदाँत की चीजें, डेंगियाँ, कटिया या बंशी और दूसरी चीजें बनाने

तथा भिन्न भिन्न जानवरों के शिकार करने के लिए भिन्न भिन्न जातियाँ प्रसिद्ध पाई जाती हैं। इनके यहाँ बर्तनों का बनाना अब तक औरतों ही का विशेष उद्यम माना जाता है।

इसी प्रकार प्रशान्त महासागर के द्वीपों में रहने वाली जातियाँ भी मल्लाहों, बहेलियों, और बढ़ैयों में बँटी हुई हैं। टोगा, समोआ और हवाई द्वीपों में बढ़ई लोग तो पंडितों और पुरोहितों से भी अधिक ऊँचे माने जाते हैं। भारतवर्ष का जाति-विभाग भी इसी का एक परिणाम स्वरूप था, जैसा चर्मकार (चमार) लौहकार (लोहार) सुवर्णकार (सोनार) और कुंभ-कार (कुम्हार) आदि नामों से ही स्पष्ट दीख रहा है।

किसी विशेष कारीगरी के लिए विशेष स्थान—यह तो हम पहिले ही बता चुके हैं कि प्रत्येक स्थान में हर प्रकार की कारीगरी नहीं की जा सकती। कोई स्थान किसी ख़ास प्रकार की कारीगरी के लिए ही अधिक उपयुक्त हुआ करता है। इसके लिए कई बातों का विचार रखना पड़ा करता है जिनमें सबसे प्रमुख हैं—पर्याप्त कच्चे माल का होना या मिल सकना, कारखानों के लिए शक्ति, समुचित जलवायु, आमदरफ्त की सुगमता, सस्ती मज़दूरी और माल के खपाने के लिए ग्राहक।

कच्चा माल—किसी भी प्रकार की कारीगरी करने के लिये सबसे पहिली आवश्यकता हुआ करती है, कच्चे माल की। संसार की साधारण जातियों और कारीगरी के नये केन्द्रों में तो इसकी उपयोगिता और भी अधिक बढ़ जाया करती है। साधारण जातियों में जहाँ कच्चा माल बाहर से नहीं मँगाया जा सकता, इसके बग़ैर तो किसी

प्रकार की कारीगरी की ही नहीं जा सकती। नये कारीगरी के केन्द्रों में इसका प्रभाव वहाँ के तैयार माल पर पड़ा करता है क्योंकि उसके बेचने में माल के आने जाने का खर्च भी जोड़ना पड़ा करता है। इस प्रकार वहाँ की चीजें दूसरे स्थानों की अपेक्षा जहाँ कारीगरी के केन्द्र के पास ही कच्चा माल पाया जा सकता है, महँगी हो जाया करती हैं।

उदाहरण के लिए हम यह बता सकते हैं कि यदि इस्कीमो लोगों के आस पास रोयेंदार जानवर न पाये जाते तो भला वे बेचारे रोओं के कपड़े किस प्रकार बना सकते। इसी प्रकार उनके हारपून जानवरों की हड्डियों और चमड़े के ही बनाये जाते हैं। किरघी लोग बालों के कम्बल और ग़लीचे इसलिए अच्छे और अधिक बनाया करते हैं कि उनके पास बालदार जानवर जैसे भेड़, बकरी और घोड़े खूब पाये जाते हैं। भारतवर्ष में कलकत्ता जूट की कारीगरी का केन्द्र इसीलिये बना हुआ है कि उसके पीछे के मैदान जूट के खेतों से भरे-पुरे हैं। बम्बई और अहमदाबाद में सूती कपड़ों के कारखाने इसीलिए अधिक पाये जाते हैं कि उनके पास बरार और दक्षिणी भारत में कपास बहुत काफ़ी पैदा हुआ करती है। यूरोप में फ्रांस का बोर्डो नगर शराब के लिए प्रसिद्ध है क्योंकि उसके पीछे अँगूर के बड़े बड़े बाग पाये जाते हैं। स्विटज़र लैंड लकड़ी की दस्तकारी में इसीलिये बढ़ा हुआ है कि वहाँ के पहाड़ी ढालों पर शहतीर और झाऊ के पेड़ खूब पाये जाते हैं। इसी प्रकार कनाडा का ओटावा नगर लकड़ी की दस्तकारी और लकड़ी के कागज के लिए अपने आसपास के जंगलों के कारण ही प्रसिद्ध माना जाता है। इंगलैंड का बरमिंहम नगर अपने आसपास की

कोयले और लोहे की खानों के कारण लोहे की कारीगरी का मुख्य केन्द्र माना जाता है, इत्यादि इत्यादि।

नये कारीगरी के केन्द्रों को अपने आसपास यथेष्ट कच्चा माल न होने के कारण जो असुविधा पड़ा करती है उसके लिए भारतवर्ष बहुत अच्छा उदाहरण है। चूंकि यहाँ किसी भी स्थान पर लोहा और कोयला काफी नहीं पाया जाता इसीलिए यहाँ की लोहे की चीजें यूरोपीय देशों की अपेक्षा अधिक महँगी पड़ा करती हैं।

चूंकि समुद्री किनारों पर मछलियाँ ही अधिक पाई जाती हैं इसलिए ऐसे किनारों पर मछलियों से सम्बन्ध रखने वाले व्यवसाय ही अधिक किये जाते हैं। जिन स्थानों की कुल मछलियाँ वहाँ ही नहीं खपाई जा सकतीं वे बहुत कुछ सुखा कर, या नमक में गला कर, या बर्फ से ठंडी करके दूसरे देशों को भेजी जाया करती हैं। नार्वे के लाफडन स्थान से प्रतिवर्ष हजारों मन काड, सालमन, हेरिंग, और स्प्रैट मछलियाँ दूसरे देशों को भेजी जाती हैं। यहीं पर काड मछलियों से 'काडलिवर आयल' बनाया जाता है। इंगलैंड में यारमथ, एवरडीन और फिन्दन आदि स्थान भी भिन्न भिन्न प्रकार की मछलियों के लिए प्रसिद्ध हैं। भारतवर्ष में लंका और लकद्वीप के पास समुद्र से सीप भी निकाली जाती है। समुद्र के किनारे जिन स्थानों के आसपास शहतीर और साखू के पेड़ पाये जाते हैं वहाँ जहाज़ भी खूब बनाये जाते हैं जैसे इंगलैंड में 'हल' और नार्वे में क्रिश्चायना।

कारखानों के लिए संचालन-शक्ति—किसी प्रकार की शिल्पोन्नति में दूसरी बात जो बहुत आवश्यक है, उस स्थान पर पाई जाने वाली

कारखानों की संचालन-शक्ति है। सब से साधारण शक्ति जो अभी थोड़े ही वर्ष पहिले तक संसार के प्रत्येक भाग में प्रयोग की जाती थी और अबतक बहुत से भागों में प्रयोग की जा रही है वह हाथों की है। यद्यपि यह शक्ति बहुत ही सुस्त और परिश्रम पूर्ण है तो भी संसार के उन भागों में जहाँ कारीगरी के लिये और कोई शक्ति नहीं पाई जा सकती, लोगों को इसी के ऊपर निर्भर रहना पड़ा करता है। प्रायः सभी आदि और असभ्य जातियाँ हाथों के ही ऊपर निर्भर रहा करती हैं। भारतवर्ष के गाँवों में अब तक चरखों और करघों तथा तानों और बानों का विशेष प्रयोग पाया जाता है। किसी समय में बंगाल के जुलाहे इसके लिये संसार में प्रसिद्ध थे। काश्मीर के प्रसिद्ध शाल और दुशाले अबतक हाथों के ही द्वारा बनाये जाते हैं।

जल-शक्ति—जब लोगों ने हाथों की अपेक्षा पानी की शक्ति का प्रयोग करना सीख लिया तो कारीगरी के केन्द्र छोटे मोटे गाँवों और झोपड़ों से उठकर नदियों के किनारे आ गये। इसके लिये धीरे धीरे बहने वाली मैदानी नदियों की अपेक्षा तेज बहने वाली पहाड़ी नदियाँ अधिक उपयुक्त हुआ करती हैं। कहीं कहीं नदियों में बन्द बाँध कर उनकी धार तेज कर ली जाया करती है। भारतवर्ष की कितनी ही नदियों में आटा पीसने वाली पन-चक्कियाँ चला करती हैं। नार्वे, स्वीडन, स्विटजरलैंड और स्काटलैंड आदि पहाड़ी देशों में तो इन नदियों से कई प्रकार की कलें चलाई जाया करती हैं। इंगलैंड में लीड्स ऊनी कपड़ों के लिये इसी लिये पहिले से प्रसिद्ध पाया जाता है, क्योंकि यहाँ पर पेनाइन चेन्स के ढालों पर भेड़ें भी खूब चराई जा सकती थीं और यहाँ की पहाड़ी नदियों के द्वारा कलें भी चलाई जा सकती थीं।

इस प्रकार यदि किसी स्थान में कच्चा माल और पानी की शक्ति दोनों पाई जा सकती हैं तो वह स्थान उन स्थानों की अपेक्षा कहीं अधिक उन्नति कर ले जायगा जिनमें दो में से किसी चीज़ की भी कमी या असुविधा पाई जायगी।

वाष्प (भाप) शक्ति— कारीगरी के लिये जलशक्ति से भी अधिक लाभदायक वाष्प-शक्ति हुआ करती है। वास्तव में अठारहवीं शताब्द के मध्य भाग के लगभग से वाष्प-शक्ति का अन्वेषण होजाने के कारण संसार की कारीगरी और व्यापार में एक विचित्र और आश्चर्य-जनक परिवर्तन उपस्थित हो गया है। इस शक्ति के द्वारा चलने वाले इंजनों ने संसार के सुदूरस्थ भागों को भी रेलों और जहाजों के द्वारा अत्यन्त निकट बना दिया है। अब आज रेलों के द्वारा संयुक्त प्रान्त की कपास बम्बई और अहमदाबाद पहुँचाई जा सकती है। इसी प्रकार अहमदाबाद के कारखानों में बने हुये कपड़े प्रयाग और बनारस की बाजारों में पहुँचाये जा सकते हैं। जहाजों के द्वारा बंगाल की जूट सात हजार मील समुद्र को पार कर महीने या पन्द्रह दिन में ही स्काटलैंड के डन्डी बन्दरगाह तक पहुँचाई जा सकती है। इसी प्रकार अमेरिका और जापान के कारखानों में बनी हुई चीजें भारतवर्ष में लाकर बेची जा सकती हैं। दूसरी बात यह है कि जो चीजें पहिले हाथों के द्वारा हजारों आदमी एक महीने में बना सकते थे वे अब कलों और कारखानों के द्वारा दो या चार दिन में ही बनाई जा सकती हैं इस प्रकार पहिले जो चीज १०) रु० की मिला करती थी वह आज २) रु० में खरीदी जा सकती है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण पुस्तकों में पाया जा

सकता है। जो किताब प्राचीन समय में हजार रुपये खर्च करने पर दो या तीन साल में तैयार हुआ करती थी वह आज दस दिन में ही हजारों की संख्या में तैयार की जा सकती है।

किन्तु वाष्प-शक्ति के लिये आवश्यकता है—कोयले या मिट्टी के तेल की। यदि किसी स्थान में ये दोनों चीजें पाई जा सकती हैं तो वह अवश्य कारीगरी का केन्द्र बनाया जा सकता है। बरमिंहम के पास कोयला और लोहा दोनों पाया जाता है इसी लिये यह स्थान लोहे की चीजों के लिये प्रसिद्ध है। मैन्चेस्टर के आसपास कोयला खूब पाया जाता है और बाहर से कपास मँगाई जाती है, इसी लिये यहाँ कपड़ों के सबसे बड़े कारखाने पाये जाते हैं। भारतवर्ष में रानीगंज, झरिया और असन्सोल के आसपास कोयला और लोहा दोनों पाये जाते हैं इसी लिये जमशेद नगर में लोहे की चीजें बना करती हैं। इस प्रकार हमने देख लिया कि इंगलैंड, फ्रान्स, जर्मनी, और पूर्वी संयुक्त राज्यों में जहाँ कहीं भी कोयला और लोहा पाये जाते हैं वहाँ भिन्न भिन्न प्रकार की कारीगरी के बड़े बड़े केन्द्र स्थापित हो गये हैं।

बिजली की शक्ति—उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम काल में बिजली की नई शक्ति का आविष्कार हो जाने के कारण शिल्पकारी में एक और भी विचित्र परिवर्तन उपस्थित हो गया है। कारीगरी की लहर कोयले की खानों से हटकर फिर नदियों की ओर जाने लग गई है, क्योंकि बिजली की नई शक्ति झरनों और नदियों के पानी से पैदा की जाया करती है। कोयले की अपेक्षा यह अधिक सस्ती और

चिरस्थायी भी हुआ करती है। इसका सबसे बड़ा प्रभाव यह पाया जाता है कि इसके कारण वे स्थान भी कारीगरी के केन्द्र बनाये जा सकते हैं जो पहिले कोयले की कमी के कारण हताश रहा करते थे। इसी शक्ति के कारण आज हमें मंसूरी, नैनीताल और दूसरे पहाड़ी स्थानों पर भी बिजली की रोशनी मिला करती है। इसी प्रकार पश्चिमी घाट की पहाड़ी नदियों के झरनों से बिजली की शक्ति पैदा की जाकर बम्बई के कारखाने चलाये जा रहे हैं। इस शक्ति का सबसे अधिक उपयोग स्विटजरलैंड, नार्वे, उत्तरी इटली, जर्मनी के दक्षिणी भाग और कनाडा तथा संयुक्त राज्यों के पूर्वी भागों में किया जा रहा है जहाँ इसके द्वारा नगरों को रोशनी और कारखानों को संचालन-शक्ति प्रदान की जा रही है। स्विटजरलैंड कोयले से रहित होते हुये भी इसी शक्ति के कारण इंगलैंड और जर्मनी आदि के बराबर ही कारीगरी किया करता है। नार्वे और कनाडा के कितने ही नगरों में इसी शक्ति के द्वारा लकड़ी चीरने और कागज बनाने वाली कलें चलाई जा रही हैं।

इस प्रकार इस शक्ति के कारण कारीगरी के भविष्य में भी बड़े परिवर्तन की आशा की जा रही है। सम्भव है कि किसी दिन मिश्र सूती कपड़ों के लिये मैन्चेस्टर का मुकाबिला करने लग जाय क्योंकि नील नदी के झरनों से कोयले की कमी पूरी की जा सकती है और कपास उसके पास है ही। भारतवर्ष के उत्तरी भाग में भी किसी दिन सैकड़ों कारखाने पाये जा सकते हैं क्योंकि वहाँ पर काफी कच्चे माल के होते हुए नदियों के द्वारा बिजली की शक्ति पैदा करने की भी सुविधायें पाई

जाती हैं। यही बात दक्षिणी बृटिश अफ्रीका और आस्ट्रेलिया के लिये भी कही जा सकती है।



पवन-चक्की

हवा-शक्ति—आजकल कहीं कहीं जैसे हालैंड आदि देशों में छोटे मोटे कारखानों के लिये हवा की शक्ति का भी प्रयोग किया जा रहा है।

आमदरफ्त की सुविधायें—कच्चे माल और संचालन-शक्ति के बाद तीसरा नम्बर आमदरफ्त की सुविधाओं का माना जा सकता है। वास्तव में किसी स्थान की कारीगरी पर इनका भी बड़ा प्रभाव पड़ा करता है। इनके द्वारा कच्चे माल और कोयले आदि की कमी आसानी के साथ पूरी की जा सकती है और तैयार माल क्रय-विक्रय के केन्द्रों तक पहुँचाया

भी जा सकता है। सड़कें, रेलें, नदियाँ और सामुद्रिक जहाज इनके मुख्य विभाग हैं। जिन देशों में इन चीजों की जितनी ही अधिकता पाई जा सकती है वे उतना ही अधिक सुगमता के साथ व्यापार और व्यवसाय कर सकते है। इंगलैंड आज संसार का सबसे बड़ा व्यापारी देश इसीलिये माना जाता है कि वहाँ पर उपरोक्त सभी सुविधायें पाई जाती हैं। प्रायः सभी प्रमुख स्थान सड़कों और रेलवे लाइनों के द्वारा जुड़े हुये हैं। नदियों के मुहाने इतने चौड़े और गहरे हैं कि बड़े से बड़े जहाज भी देश के बहुत भीतरी भागों तक ले जाये जाते हैं। मैन्चेस्टर, ब्रिस्टल, लंदन और ग्लासगो सभी बड़ी बड़ी नदियों के किनारों पर स्थित हैं, इसलिये समुद्र से दूर होते हुये भी कारीगरी के केन्द्र होकर देश के बड़े बड़े नगर बन गये हैं। भारतवर्ष के कलकत्ता और मद्रास में यही अन्तर पाया जाता है कि एक तो गंगा के मुहाने पर होने के कारण नदियों और रेलों के द्वारा उत्तरी मैदान के नगरों से भी जुड़ा हुआ है और दूसरा उनसे बिलकुल अलग। उत्तरी मैदान में रेलों और सड़कों का विस्तार इतना सुगम और अधिक है कि पंजाब तक का माल आसानी के साथ उसके कारखनों तक पहुँचाया जा सकता है। इसी प्रकार इसमें आने वाला बाहरी माल भी आसानी के साथ उत्तर के सभी नगरों में भेजा जा सकता है। मद्रास यद्यपि उसी पूर्वी किनारे पर है, किन्तु इन सुविधाओं की कमी के कारण उससे कहीं छोटा नगर और बन्दरगाह पाया जाता है। इसके पीछे का प्रदेश समतल मैदान न होकर पथरीला पठार है जहाँ रेलों और सड़कों का उतना अधिक विस्तार नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त पूर्वी घाटों के कारण यह बन्दरगाह अपने

पीछे नगरों से उतना अच्छा सम्बन्ध भी नहीं स्थापित कर सकता जितना कलकत्ता।

किसी देश में किस प्रकार की कारीगरी अधिक की जा सकती है इस बात का निर्णय भी बहुत अंशों में आवागमन की सुविधाओं पर ही रहा करता है। स्विटज़रलैंड में लकड़ी और लोहे की छोटी ही छोटी चीजें इसीलिये बनाई जाया करती हैं कि वहाँ पर बड़ी बड़ी चीजों के लाने और ले जाने में बड़ी कठिनाइयाँ पड़ा करती हैं। देश के पहाड़ी होने के कारण रेलों और सड़कों का अच्छा प्रचार नहीं किया जा सकता। इसलिए ये लोग वे ही चीजें बनाया करते हैं जिन्हें आसानी के साथ देश के बाहर भेज सकें। एशिया में अफ़गानिस्तान कभी भी जापान, चीन या भारतवर्ष का मुकाबिला नहीं कर सकता क्योंकि एक तो वह देश पहाड़ी है और दूसरे समुद्र से बिल्कुल कटा हुआ है। जिन देशों के पास निज के बन्दरगाह नहीं हैं उनकी हालत उस सौदागर की सी हुआ करती है जिसे अपना माल दूसरे की दूकान पर रख कर बेचना पड़ा करता है।

सस्ती मजदूरी—सस्ती मजदूरी का मिल सकना भी किसी देश की कारीगरी के लिए बहुत ही लाभदायक हुआ करता है। इसके विचार से वे देश हमेशा फायदे में रहा करते हैं जिनमें जन-संख्या अधिक पाई जाती है। भारतवर्ष और चीन के न जाने कितने आदमी दूसरे देशों के कारखानों और खेतों में काम किया करते हैं। इसका कारण यह है कि इन देशों में अपनी पूरी जन-संख्या के भरण पोषण के लिए पर्याप्त सामग्री नहीं पाई जाती। इसलिये बहुत से आदमी

अपने जीवन निर्वाह के लिए अपना देश छोड़ कर दूसरे देशों में बस जाया करते हैं। प्रशान्त महासागर के फीजी और दूसरे कई द्वीपों में लाखों प्रवासी भारतीय पाए जाते हैं जो वहाँ के खेतों में कुलियों का काम किया करते हैं। अफ्रीक़ा के कीनिया और नैटाल आदि अंग्रेजी उपनिवेशों में भारतीयों के विरुद्ध जो आन्दोलन हो रहा है उसका मुख्य कारण यही है कि यहाँ के भूखों मरने वाले लाखों आदमी वहाँ बहुत सस्ती मजदूरी में काम करते हैं जिसके कारण अंग्रेजी मजदूर बेकार हो जाया करते हैं। सस्ती मजदूरी माल को भी सस्ता कर दिया करती है। जिससे व्यापार की प्रतिद्वन्द्विता में बड़ी सहायता मिला करती है। यदि किसी देश में कच्चा माल भी हो, कारखानों के लिए संचालन-शक्ति भी हो, आवागमन की सुविधायें भी हों ; किन्तु यदि सस्ती मजदूरी पर काफी मजदूर नहीं मिल सकते तो उपरोक्त सभी बातें बहुत अंशों में बेकार हो जाया करती हैं। आस्ट्रेलिया और दक्षिणी अमेरिका इसके लिए अच्छे उदाहरण हैं। अमेरिका के नए प्रवासियों ने इसी कमी को पूरा करने के लिए अफ्रीका के गुलामों की तिजारत प्रारंभ की थी।

समुचित जलवायु—किसी स्थान की कारीगरी पर वहाँ का जलवायु का भी काफी प्रभाव पड़ा करता है। कुछ स्थानों की जलवायु कुछ चीजों की कारीगरी के लिए खासतौर से उपयुक्त हुआ करती है। जैसे मैन्चेस्टर की जलवायु सूती कपड़ों के लिए और आयरलैंड के उल्सटर प्रान्त की जलवायु फलालेन के लिए। यही नहीं, जलवायु का प्रभाव यहाँ के मजदूरों पर भी पड़ा करता है। जैसे उष्ण कटिबन्ध के द्वीपों

और अफ्रीका के गिनी कोस्ट में यूरोपीय लोग अच्छी तरह काम नहीं कर सकते। इस प्रकार अन्त में हम यह देख सकते हैं कि जिस स्थान या देश में कारीगरी के लिए जितनी ही अधिक सुविधायें पाई जायेंगी वह उतना ही बड़ा व्यापारिक केन्द्र भी होता जायगा। चूंकि अमेरिका के संयुक्त राज्यों में लगभग सभी सुविधायें पाई जाती हैं इसीलिए वे इतनी उन्नति करते जा रहे हैं। जापान, जर्मनी और इंगलैंड की भी यही हालत कही जा सकती है। भारतवर्ष में कच्चा माल बहुत है, आवागमन की सुविधायें भी हैं, मजदूरी भी बहुत सस्ती है किन्तु संचालन-शक्ति काफी नहीं पाई जाती, इसीलिए आज यह देश संसार के अन्य देशों से इतना पिछड़ा हुआ पाया जाता है। चीन में शिल्प-प्रधान देश होने के लिए सभी बातों का समन्वय पाया जाता है किन्तु वहाँ की राजनीतिक उथल पुथल ही उसे सत्यनाश किये हुए है। यदि भविष्य में कभी इस देश में राजनीतिक शान्ति स्थापित की जा सकी तो शायद संसार का कोई भी देश उसकी समता न कर सकेगा।

कारीगरी के केन्द्रों का जीवन—शिल्पकारी और उसकी प्रधान आवश्यकताओं पर विचार कर चुकने के बाद अब हमें वहाँ के जीवन पर भी कुछ विचार अवश्य कर लेना चाहिए। यह तो हमारे पाठक अब तक में समझ ही गये होंगे कि खेती और कारीगरी के उद्यमों में थोड़ा ही अन्तर पाया जाता है। खेती और कारीगरी दोनों में ही बहुत से आदमी काम करते हुए पाये जाते हैं। अन्तर केवल यह है कि खेती का क्षेत्र बहुत विस्तृत और कारीगरी का बहुत संकीर्ण हुआ करता है। पहिले में लाखों आदमियों का काम लाखों बीघे जमीन के ऊपर बँटा

रहा करता है और दूसरे में लाखों आदमियों का काम एक थोड़े से क्षेत्र में नियमित रहा करता है। इस प्रकार जहाँ खेती करने वालों के रहने के लिए हजारों बीघे जमीन पाई जाती है, किसी कल या कारखाने के मजदूरों को एक थोड़े से ही स्थान में रहना पड़ा करता है। इससे यह साफ प्रगट है कि किसानों और मजदूरों के जीवन में अवश्य बहुत कुछ अन्तर पाया जाता है। थोड़े से स्थान में बहुत से आदमियों के रहने के कारण वे लोग किसानों की भाँति स्वतंत्र और अलग अलग नहीं रह सकते बल्कि पन्द्रह पन्द्रह और बीस बीस आदमी आपस में मिलकर रहा करते हैं। इससे मजदूरों में आपस का प्रेम तो अवश्य अधिक पाया जाता है, किन्तु स्वच्छ जलवायु यथेष्ट रूप में न मिलने के कारण बीमारियों का भी बड़ा डर और प्रकोप रहा करता है। यही नहीं, कारखानों में काम करने वाले प्राय: किसान ही हुआ करते हैं जो खेती में असफल होने के कारण अपने गाँव घर छोड़ कर कारखानों में काम करने के लिये चले जाया करते हैं। इससे यह निश्चित है कि इन कारखानों के मजदूरों का जीवन किसानों का सा निश्चित और स्थिर जीवन नहीं पाया जा सकता। ये लोग तो उन चिड़ियों की भाँति हुआ करते हैं जो दिन भर अपने खाने की तलाश में इधर उधर उड़ने के बाद शाम को अपने घोंसलों को लौट आया करती हैं।

भारतवर्ष के मजदूरों की बात तो जाने दीजिये, क्योंकि एक गुलाम का जीवन—चाहे वह राजा हो चाहे रंक—एक गुलाम का ही जीवन पाया जा सकता है। किन्तु संसार के सभ्य और स्वतंत्र देशों में अपने मजदूरों की हालत सुधारने के लिए काफी प्रयत्न किया जा रहा है।

वहाँ मजदूरों की बड़ी बड़ी और प्रभावशालिनी संस्थाओं द्वारा उनका दृढ़ संगठन किया जा रहा है जिससे इन लोगों को अपनी आर्थिक, सामाजिक, और आध्यात्मिक उन्नति करने का अच्छा अवकास मिल सके। मजदूरी को बढ़ाने और काम के घंटों को कम करने के लिए—जिससे उन्हें अपनी उन्नति करने का अवकाश मिल सके—वहाँ के पूंजीपतियों और वहाँ की सरकार पर दबाव डाला जा रहा है। क्योंकि रूस की क्रान्ति के बाद लोग यह समझने लग गये हैं कि असन्तुष्ट मज़दूर—यदि वे संगठित हो जायँ तो राज्य का भी परिवर्तन कर सकते हैं। हमारे यहाँ कानपूर, अहमदाबाद, बम्बई और कलकत्ते में हर चौथे या छठे महीने मजदूरों को हड़ताल हो जाया करती है और इन हड़तालों का जो प्रभाव व्यापार और शासन पर पड़ा करता है वह किसी भी शिक्षित-व्यक्ति से छिपा नहीं है। यूरोपीय देशों में तो श्रमिकों और पूंजी-पतियों के वर्गों के झगड़े बहुत ही व्यापक और राजनैतिक महत्व के माने जा सकते हैं। विगत यूरोपीय महासमर इन्हीं वर्गों के संघर्ष और उपनिवेश-लिप्सा का ज्वलंत परिणाम है।

ग्यारहवाँ अध्याय

उपजाऊ मैदानों और समुद्र के किनारों पर का जीवन

जीवन निर्वाह की सुगमता के विचार से उपजाऊ और हरे भरे मैदानों का नम्बर सर्व प्रथम माना जाता है। पिछले अध्यायों में हमने इस बात के दिखाने का थोड़ा बहुत प्रयत्न किया है कि टन्ड्रा, सहारा, टैगा, सैवन्नाज, स्टेप्स, जंगल, पहाड़ और प्लेटो में किस प्रकार जीवन निर्वाह उत्तरोत्तर सरल और सुगम होता जाता है; किस प्रकार इन स्थानों में रहने वालों की आर्थिक और सामाजिक उन्नति एक दूसरे से बढ़ती जाती है। किस प्रकार टन्ड्रा और सहारा के बंज़ारे स्टेप्स में पहुँच कर खेमों में रहने लगते हैं और किस प्रकार वे ही खेमे जंगलों में मिट्टी और घास-फूस के झोपड़ों में परिवर्नित हो जाया करते हैं। उपजाऊ और हरे-भरे मैदानों में पहुँच कर हम मनुष्य की आर्थिक, सामाजिक और आध्यात्मिक उन्नति की चरम सीमा देख सकते हैं। यहाँ हमें मनुष्य की मस्तिष्क शक्ति और उसके विज्ञान-विकाश का, जिनके द्वारा उसने अपने चारों ओर की प्रकृति अर्थात् भौगोलिक परिस्थितियों को बहुत कुछ अपने अनुकूल बनाया और अबतक बनाया जा रहा है—चमत्कार देखने में आया करता है। यहाँ के बिजली घर, सिनेमे, थियेटर और बड़े बड़े कारखानों को देखकर यह आश्चर्य हुआ करता है कि क्या वास्तव में यहाँ के रहने वाले भी उसी प्रकार एक हैं जैसे मनुष्य कि टन्ड्रा के

स्कीमो और अफ्रीका के पिगमी तथा हब्शी लोग । वास्तव में जिन बेचारों को पेरिस, लन्दन और न्यूयर्क आदि के आधुनिक सुखोपभोगों का अनुभव स्वप्न में भी नहीं हो सकता वे यदि इन नगरों को स्वर्ग और यहाँ के निवासियों को देवता समझ लें तो इसमें आश्चर्य की बात ही कौन सी है ।

परन्तु यदि विचार करके देखा जाय तो यह भली प्रकार ज्ञात हो जायेगा कि जो स्थान आज अपनी सम्पदा से स्वर्ग लोक को लज्जित कर रहे हैं वे कुछ वर्ष पहिले घने जंगल या उजाड़ रेगिस्तान थे । कौन नहीं जानता कि वर्तमान मिश्र और ईराक, सहारा और अरेबिया रेगिस्तान के ही एक भाग हैं । इसी प्रकार यह भी निश्चित है कि भारतवर्ष के गंगा और जमुना के मैदान तथा संयुक्त राज्यों के बहुत से भाग किसी न किसी समय घने वन-प्रदेश थे । इनमें आज हमें जो परिवर्तन दिखाई पड़ रहा है वह मनुष्य और प्रकृति की हजारों वर्ष की लड़ाई का फल है । जहाँ मनुष्य को जितनी सफलता मिल सकी है वहाँ उतना ही परिवर्तन भी पाया जाता है । इसके विरुद्ध संसार के जिन जिन भागों में मनुष्य अबतक अपने आसपास की प्रकृति पर विजय नहीं प्राप्त कर सका वहाँ उसको उसी के अधीन रहना पड़ रहा है ।

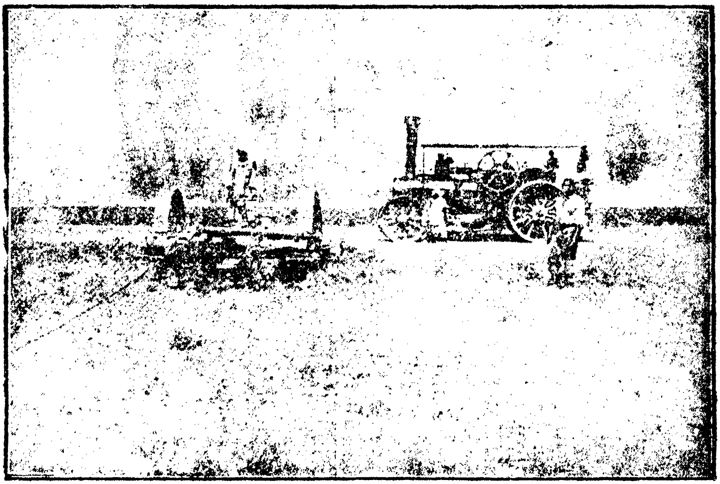
मनुष्य के इस विजय में उसके हजारों वर्ष के अनुभव और वैज्ञानिक विकाश ने ही अधिक सहायता की है । अपने अनुभव से उसने यह जान लिया कि कौन सी जमीन किस प्रकार के नाज के लिये अधिक उपयुक्त पाई जाती है । किस स्थान में किस समय और कितनी जल-वृष्टि की आशा की जा सकती है इत्यादि इत्यादि । किन्तु वैज्ञानिक विकाश

होने के पहिले वह अपने इन अनुभवों से अधिक लाभ नहीं उठा सकता था। क्योंकि यदि राजपूताने में बारिश नहीं होती या गंगा और जमुना में बर्सात के दिनों में भयंकर बाढ़ आ जाया करती है तो सिवाय इसके कि वह ऐसे कार्यों को ईश्वर का कोप समझ कर चुपचाप सहन करले और कर ही क्या सकता था। किन्तु जब वैज्ञानिक विकाश हुआ तो समुद्र भिन्न भिन्न देशों के पारस्परिक समागम का बाधक न हो कर सहायक बन गया और जमुना तथा गंगा की बाढ़ रोकने के लिये जमुना और गंगा की नहरें खोद डाली गईं। स्वेज और पनामा कैनाल, अस्वान और सक्कर (पंजाब) के बाँध तथा आल्पस की रेलवे टनल इसी वैज्ञानिक विकाश की प्रतिफल स्वरूप हैं।

यों तो हरे-भरे और उपजाऊ मैदान थोड़े बहुत सभी महाद्वीपों में पाये जाते हैं; किन्तु भारतवर्ष में गंगा और सिंध के मैदान, चीन के पूर्वी भाग, अफ्रीका का मिश्र, यूरोप का वृहत् मैदान और अमेरिका के संयुक्त राज्य अधिक प्रसिद्ध हैं। इन सब की प्राकृतिक दशा करीब करीब एक सी ही पाई जाती है। सभी उपजाऊ मिट्टी के चौरस मैदान हैं जिनमें गहरी और बड़ी बड़ी नदियाँ बहा करती हैं। जल-वृष्टि और जलवायु में जरूर स्थिति के अनुसार अन्तर पाया जाता है। चीन, भारतवर्ष और अमेरिका के मैदानों में मानसून के कारण खूब वारिश हुआ करती है; यूरोप के मैदान में उससे कम और मिश्र तथा ईराक में सब से कम पाई जाती है। जलवायु के विचार से भी इनमें बहुत कुछ विभिन्नता पाई जाती है। कोई तो उष्ण, कोई ऊष्ण-प्रधान शीतोष्ण और कोई शीत-प्रधान शीतोष्ण। इसके अतिरिक्त एक ही मैदान के

भी भिन्न भिन्न भागों में भिन्न भिन्न प्रकार की जलवायु पाई जा सकती है ।

निवासियों के उद्यम—इन मैदानों में पिछले अध्यायों के करीब करीब सभी उद्यम पाये जा सकते हैं किन्तु सबसे प्रमुख खेती, चरागाही और कारीगरी ही हुआ करते हैं। खेती में जल-वृष्टि और जलवायु के अनुकूल ही नाज और फल-फूल पैदा किये जाते हैं। गरम देशों में चावल,



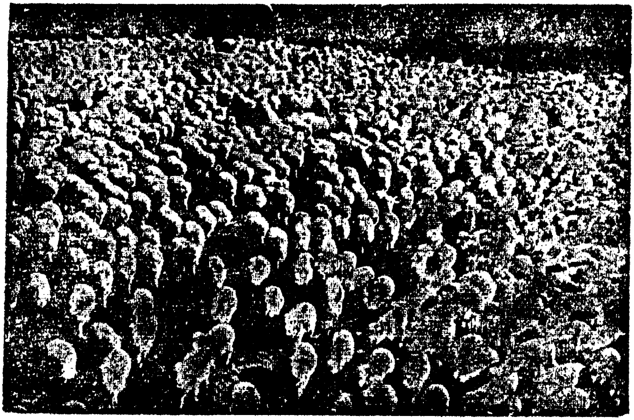
कल के हल द्वारा खेती

ईख, कपास, तम्बाकू, केले, आम, अफीम और अमरूद आदि। ठंडे प्रान्तों में गेहूँ, जौ, राई, पटसन, चोकन्दर, आलू, गोभी, अँगूर और नारंगी आदि। इस विषय में सबसे बड़ी विशेषता यह हुआ करती है कि खेती के पुराने

तरीकों और औजारों को छोड़कर नये और वैज्ञानिक उपयोगों से काम लिया जा रहा है। जोतने, बोने, काटने और माँड़ने सभी में मशीनों और दूसरे नये तरीकों से काम लिया जाता है। थोड़ी से थोड़ी जमीन में अधिक से अधिक चीजें पैदा करने की नई नई तरकीबें निकाली जा रही हैं। कहीं तो बीजों की परीक्षा की जा रही है और कहीं खाद की। जिन स्थानों में पानी की कमी पाई जाती है वहाँ नहरों, तालाबों और कुओं की सहायता ली जा रही है। इस विषय में अमेरिका के संयुक्त राज्यों और यूरोपीय देशों ने अधिक उन्नति की है; किन्तु भारतवासी स्वभावतः लकीर के फकीर होने के कारण अभी बहुत पीछे पाये जाते हैं। इनके यहाँ अब तक वही राम के जमाने का हल और वही तुलसी-दास जी की चौपाई —'होइहै वहै जो राम रचि राखा, को करि तर्क बढ़ावै साखा' पाई जाती है। हाँ, इधर बाहरी लोगों के उद्योग से कुछ परिवर्तन होता जा रहा है; किन्तु वही कछुवे की चाल से।

चरागाही का भी काम इन प्रदेशों में काफी किया जाता है; किन्तु वह उन्हीं स्थानों में जहाँ खेती भली प्रकार न की जा सके। यूरोपीय देशों और संयुक्त राज्यों में लाखों ढोर और भेड़ बकरियाँ चराई जाती हैं जिनसे गोश्त, चमड़ा, मक्खन, दूध और 'चीज' मिला करती है डेनमार्क और हालैंड आदि देशों का तो जीवन ही इस उद्यम पर निर्भर रहा करता है। शिकागो अमेरिका में सब से बड़ी गोश्त की मंडी मानी जाती है। इसके लिये भी तरह तरह के नवीन वैज्ञानिक साधनों का प्रयोग किया जा रहा है। दूध जमाने, मक्खन निकालने और गोश्त को जमा कर सुरक्षित रखने की मशीनें बनाई जा चुकी हैं।

भारतवर्ष में अभी तक इस व्यवसाय की ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है। केवल दो चार बड़े बड़े शहरों में ही एकाध डेरी फार्म पाये



भेड़ों का रैंच या बाड़ा

जाते हैं। यही हालत बहुत अंशों में चीन की भी पाई जाती है। इसका कारण यह है कि यहाँ चरागाही की अपेक्षा खेती अधिक उपादेय मानी जाती है।

इन मैदानों में रहने वालों का दूसरा प्रसिद्ध उद्यम कारीगरी पाया जाता है। जो देश स्वतंत्र हैं वे अपनी करीब करीब सारी आवश्यकतायें अपने ही कारखानों से पूरी कर लिया करते हैं। जर्मनी, फ्रांस, इंगलैंड और संयुक्त राज्य, सभी के मैदानों में कपड़े, लोहे और दूसरी चीज़ों

के बड़े बड़े कारखाने पाये जाते हैं जहाँ लाखों आदमी काम किया करते हैं। इन देशों में ऐसा शायद ही कोई बड़ा नगर होगा जहाँ किसी न किसी चीज के कारखाने न पाये जाते हों। इंगलैंड ऐसे देश जो अपने मैदानों में अपनी जनसंख्या के खाने भर को नाज नहीं पैदा कर सकते, बहुत अंशों में अपनी कारीगरी पर ही निर्भर रहा करते हैं। भारतवर्ष और चीन के मैदान इस बात में अभी उपरोक्त देशों से बहुत ही पीछे पाये जाते हैं। भारतवर्ष में इसके कारण हैं— लोगों और सरकार की उदासीनता; चीन में इसके कारण हैं— वहाँ की राजनैतिक कुव्यवस्था और उथल पुथल।

मैदान के निवासियों का जीवन—यह तो हम पहिले ही बता चुके हैं कि किसी स्थान के मनुष्यों का जीवन उनके देश की प्राकृतिक दशा, जलवृष्टि, जलवायु और पैदावार पर ही निर्भर रहा करता है। इसलिये भारतवर्ष, चीन या और अन्य देशों के रहने वालों का सर्वाङ्ग चित्र खींच कर शब्दों द्वारा इस थोड़े से स्थान में दिखा देना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव भी है। भारतवर्ष और चीन ऐसे देश तो अपने ही में एक छोटे-मोटे महाद्वीप हैं इसलिये इनमें कई प्रकार की प्राकृतिक दशा और भिन्न भिन्न प्रकार के निवासी पाये जाना स्वाभाविक ही सा है। यही कारण है कि इनके अन्दर भावों, भाषाओं, रीति-रस्मों और मनुष्य जातियों की इतनी विभिन्नता पाई जाती है। उदाहरणार्थ भारत-वर्ष को ही लीजिये, यहाँ कम से कम पचास या साठ भिन्न भिन्न जातियाँ लगभग १५० भाषायें और चालीस या पचास के ही लगभग धर्म पाये जाते हैं। लोगों की सामाजिक, आर्थिक और आध्यात्मिक उन्नति भी

कई श्रेणियों में विभाजित की जा सकती हैं। यदि दक्षिण के जंगलों में कोल और भील हैं तो काशी और प्रयाग में महान् पंडित भी मिल सकते हैं। यदि गाँवों में भूखे और अधनंगे दीन किसान हैं तो कलकत्ता और बम्बई में करोड़पती भी पाये जाते हैं। एक ओर यदि हजारों आदमी घास के झोपड़ों में जीवन व्यतीत कर रहे हैं तो दूसरी ओर आकाश से बात-चीत करने वाले प्रसाद भी पाये जाते हैं। जहाँ एक ओर कुछ लोग अब तक भूत और प्रेतों की पूजा में मग्न हैं तो दूसरी ओर बड़े बड़े योगी और ब्रह्मज्ञानी भी पाये जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि भारतवर्ष के मैदान विभिन्नता और विचित्रता के केन्द्र माने जा सकते हैं।

यद्यपि इन मैदानों में हर प्रकार की शिक्षा और प्रत्येक भाँति का जीवन पाया जा सकता है तौ भी यहाँ के अधिकांश (९० प्रतिशत) लोग खेती का ही काम करते और कृषकों का ही साधारण जीवन बिताया करते हैं।। साधारणतया इनके मकान मिट्टी या ईंटों के बने होते हैं। घरों में जीवन निर्वाह की सभी चीजें पाई जा सकती हैं। खेती के साथ ही साथ दस-बीस ढोर भी चरा लिये जाते हैं। शिक्षा का तो इस समय अभाव ही सा पाया जाता है। धार्मिक विचार इतने गहन हैं कि उनके प्रत्येक अंगों का सम्पूर्ण वर्णन तो किया ही नहीं जा सकता। मामूली भूत प्रेतों की पूजा से लेकर पृथ्वी, पवन, पानी और पत्थर सभी की प्रतिष्ठा पाई जाती है। अधिक शिक्षित लोगों में ऊँचे दर्जे के धार्मिक भाव भी पाये जाते हैं जिनमें एक सर्वव्यापी ब्रह्म तक की भावना बताई जाती है। इन किसानों में हिन्दू, बौद्ध, मुसलमान, ईसाई, जैन,

पारसी और सिक्ख सभी धर्मों के अनुयायी पाये जाते हैं। प्रत्येक धर्म की सैकड़ों भिन्न भिन्न शाखायें भी पाई जाती हैं। इन किसानों की साधारण दिनचर्या तो अपने और अपने जानवरों के भरण-पोषण की ही हुआ करती है। या यों कहिए कि इन बेचारों का जीवन खेतों और घर की दीवारों के अन्दर ही बीत जाया करता है। आजकल के नवीन सुखोपभोगों का तो इन्हें स्वप्न में भी अनुभव नहीं हुआ करता। मामूली मजदूरों की दशा तो और भी अधिक शोचनीय पाई जाती हैं। इनकी आर्थिक दशा इतनी खराब है कि किसी प्रकार की उन्नति की ही नहीं जा सकती।

इन किसानों के गाँवों में शहरों का सा सफाई का प्रबन्ध नहीं पाया जाता। उन्हें इस बात का ध्यान ही नहीं हुआ करता कि स्वास्थ्य और सैनीटेशन (सफाई) में भी कोई सम्बन्ध है। हजारों आदमी प्रतिवर्ष हैजा, प्लेग और चेचक आदि की बीमारी में मरा करते हैं; किन्तु ये सब, आपत्तियाँ 'ईश्वरेच्छा' के नाम पर शान्तिपूर्वक सहन कर ली जाया करती हैं। दवा-दरपन के लिये देहातों के 'नीम हकीम' ही मिला करते हैं। आज कल कहीं कहीं अस्पताल खोले जा रहे हैं; किन्तु ये इतने कम और अपर्याप्त हैं कि न होने के ही बराबर माने जा सकते हैं।

बड़े बड़े नगरों में हमें मामूली मजदूर से लेकर ऊँचे से ऊँचे दर्जे तक का जीवन देखने में आया करता है। यहाँ जिसके पास कुछ पैसे हैं उनके मनोरंजन के लिये सिनेमे, थियेटर और भाँति भाँति के नाच-

तमाशे तथा खेल-कूद पाये जा सकते हैं। यहाँ के लोगों का जीवन अपने देहाती भाइयों से कुछ अधिक श्रेष्ठ और सुखमय पाया जाता है। पर अन्य स्वाधीन देशों की चहल-पहल और सुख-समृद्धि के आगे यहाँ का शहरी जीवन भी वहाँ के देहाती जीवन सा दिखलाई पड़ता है। आज-कल यहाँ भिन्न भिन्न प्रकार की सभा सोसाइटियों द्वारा प्राचीन धार्मिक और सामाजिक रूढ़ियों के तोड़ने का प्रबन्ध और प्रयास किया जा रहा है तथा सामाजिक जीवन को अधिक श्लिष्ट, संगठित और सुखमय बनाने की चेष्टायें भी की जा रही है। हमारी सरकार इस ओर पूर्ण सहयोग भी दे रही है और निकट भविष्य में ही यहाँ का जीवन भी उतना ही सुखी और समृद्धिशाली हो जायेगा।

यहाँ के निवासियों के खान-पान और वेष-भूषा में भी बड़ा अन्तर पाया जाता है। यह अधिकतर प्रत्येक प्रान्त की जलवायु, पैदावार और वहाँ के निवासियों के आचार-विचार पर ही निर्भर रहा करता है। बंगाल के निवासियों का मुख्य भोजन चावल, मछली, केले और नारियल का तेल है। पंजाब में रोटी, दाल और गोश्त का अधिक प्रचार पाया जाता है। सीमान्त देश और काश्मीर में रोटी, गोश्त और फल अधिक खाये जाते हैं। दक्षिण की ओर भी चावल, रोटी और दाल का ही अधिक प्रयोग किया जाता है। राजपूताने में ज्वार, बाजरा और मक्का ही मुख्य खाद्य पदार्थ माने जाते हैं इत्यादि इत्यादि। वस्त्रों और आभूषणों में भी बहुत कुछ प्रान्तीयता पाई जाती है। बंगाल में रेशम

और कोशे का अधिक प्रचार पाया जाता है। संयुक्त प्रान्त और दक्खिणी भारत में सूती कपड़े ही अधिक प्रयोग किये जाते हैं। उत्तर-पश्चिम के भागों में जहाँ जलवायु कुछ अधिक सर्द पाई जाती है, ऊनी और गरम कपड़ों का अधिक प्राधान्य पाया जाता है। इसी प्रकार आभूषणों में भी भिन्न भिन्न स्थानों के रहने वालों की रुचि के अनुसार विभिन्नता पाई जाती है।

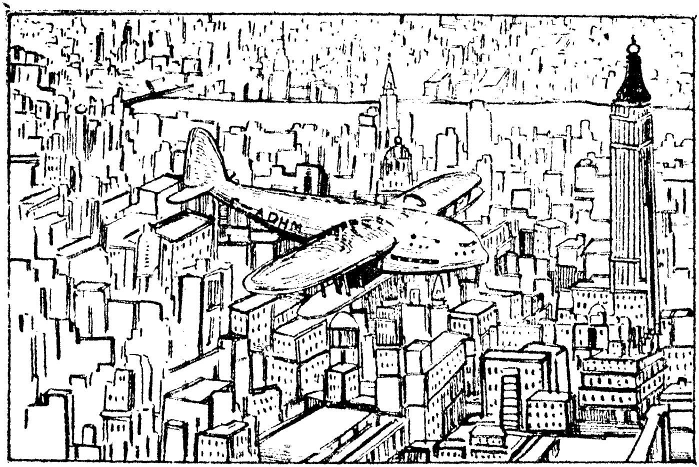
आचार-विचार के विचार से भी यहाँ के निवासियों में बड़ी विभिन्नता पाई जाती है। प्रायः भिन्न भिन्न धर्मों के अनुयाइयों के भिन्न भिन्न आचार-विचार भी हुआ करते हैं। जहाँ मुसलमानों में छुआ-छूत का नाम भी नहीं पाया जाता, सनातन धर्म के हिन्दू लोग इस भूत के कारण रात्रि में सोने भी नहीं पाते। इसी प्रकार जहाँ मुसलमान लोग औरतों के पर्दे के इतने कट्टर अनुयायी हैं कि अपनी औरतों को सूर्य की किरणों से भी बचाने की कोशिश किया करते हैं, पारसियों और मरहटों में इसका नाम निशान भी नहीं पाया जाता।

इस प्रकार भारतवर्ष के मैदानों का थोड़ा बहुत हाल जान लेने के पश्चात् अब हमें पूर्वी चीन के वृहत् मैदान में रहने वालों का भी थोड़ा बहुत हाल जान लेना चाहिये। यह तो हम पहिले बता चुके हैं कि इन मैदानों की प्राकृतिक दशा बहुत कुछ एक सी ही पाई जाती है। भारतवर्ष के गंगा और सिंध के मैदान की भाँति चीन के वृहत् मैदान भी ह्वांगहो, सीक्यांग और यांगटिसीक्यांग की लाई हुई मिट्टी से बनाये गये हैं। अतः ये भी उन्हीं की भाँति समतल और उपजाऊ पाये जाते हैं।

भारतवर्ष की भाँति इन मैदानों में भी मानसून से काफी जलवृष्टि हो जाया करती है और यहाँ की नदियों में भी – विशेष कर ह्वांगहो में, हमारे यहाँ की नदियों की सी भयानक बाढ़ आ जाया करती है जिससे कभी-कभी जन और धन दोनों का बड़ा नुकसान हुआ करता है। जलवायु भी भारतवर्ष से बहुत कुछ मिलती जुलती पाई जाती है। इसके भी उत्तरी भाग भारतवर्ष के पंजाब की भाँति जाड़े के दिनों में अधिक सर्द हो जाया करते हैं और दक्षिणी भाग हमारे यहाँ के दक्षिणी भागों की भाँति गरम रहा करते हैं, इस प्रकार प्राकृतिक दशा, जलवृष्टि, और जलवायु एक सी होने के कारण पैदावार भी एक सी ही पाई जाती है। इन मैदानों में भी चावल, अफीम, कपास, ज्वार, बाजरा, मक्का, नारंगी और आलू आदि की खेती की जाया करती है। हमारे यहाँ के आसाम प्रान्त की पहाड़ियों की भाँति यहाँ भी कई एक पहाड़ियाँ पाई जाती हैं जिनमें चाय के पेड़ खूब लगाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त तराइयों में शहतूत के भी पेड़ खूब लगाये जाते हैं जिनमें रेशम के कीड़े पाल कर रेशम निकाली जाया करती है।

भारतवर्ष के मैदानों की भाँति चीन के मैदान भी बहुत ही सघन बसे हुये हैं और इसके निवासी भी अधिकांश में हमारे यहाँ के से किसान ही पाये जाते हैं। अन्तर केवल यह है कि चीनी किसान भारतवासियों की अपेक्षा अपने काम में अधिक चतुर, मिहनती और सहनशील हुआ करते हैं। इनके गाँव और इनके मकानें भी हमारे यहाँ के से ही हुआ करते हैं। चीनी गाँवों की गन्दगी संसार की एक प्रसिद्ध बात है। इनके घर विशेषतया धान के पयाल के झोपड़े ही हुआ करते हैं।

यद्यपि ये लोग बुद्ध धर्म के अनुयायी माने जाते हैं तौ भी इनके अन्दर हमारे यहाँ की सी ही धार्मिक विचित्रता पाई जाती है। इनकी वेष-भूषा अधिकांश में जापानियों से मिलती-जुलती हुआ करती है। अपनी आर्थिक और सामाजिक उन्नति में ये लोग यद्यपि भारतवासियों



न्यूयार्क के गगन-स्पर्शी मकान

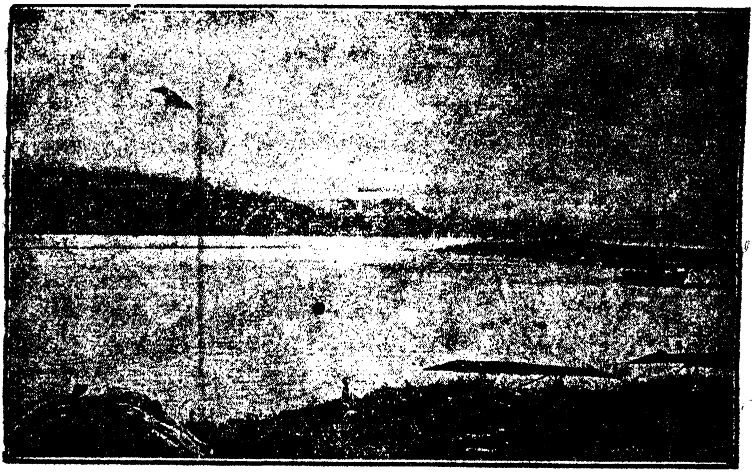
से कुछ अच्छे पाये जाते हैं तौ भी उतने समुन्नत नहीं हैं जितना कि एक स्वतन्त्र देश के निवासियों को होना चाहिये। इसका मुख्य कारण यहाँ की राजनैतिक कुव्यवस्था ही कही जा सकती है, क्योंकि प्राचीन भारतवर्ष की भाँति यहाँ भी आपस की दलबन्दी और लड़ाई बहुत ही अधिक पाई जाती है।

अमेरिका और यूरोपीय देशों के मैदानों में हमें सभ्य और समुन्नत जीवन का सर्वोच्च श्रेणी दिखाई दे सकती है। वहाँ के किसानों के लिये साधारणतया जीवन की सभी प्राप्य सुख सामग्रियाँ उपलब्ध हैं। शिक्षा, सफाई, स्वास्थ्य और मनोरंजन आदि सभी के लिए यथेष्ट प्रबन्ध पाया जाता है। वास्तव में उनका जीवन हमारे यहाँ के किसानों से कहीं अधिक शान्त और सुखमय पाया जाता है। लन्दन और न्यूयार्क आदि नगरों का जीवन तो वास्तव में आधुनिक जीवन का आदर्श कहा जा सकता है, किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि इन नगरों में दीन और दुखी लोग पाये ही नहीं जाते। यहाँ के कुछ लोगों का जीवन भी उतना ही भार और दुःखमय पाया जाता है जितना कि हमारे बहुत से दीन किसानों का।

इस प्रकार पहाड़ों, पठारों, और मैदानों का जीवन देख लेने के बाद हम यह कह सकते हैं कि पहाड़ों और पठारों के अन्दर थोड़े से ही स्थान में बहुत सी विभिन्न दशायें पाई जाती हैं। इसके विरुद्ध मैदानों में एकसी ही दशा बड़े विस्तृत क्षेत्र में पाई जाती है। मैदानों में किये जाने वाले किसी भी व्यवसाय को पहाड़ों की अपेक्षा अधिक से अधिक विस्तार दिया जा सकता है और उससे अधिक से अधिक लोगों का भरण-पोषण भी किया जा सकता है। पहाड़ों की अपेक्षा मैदानों में आमदरफ्त के सुभीते अधिक पाये जाते हैं इसलिए मैदानों में भावों और वस्तुओं का परिवर्तन और क्रय-विक्रय अधिक हुआ करता है। पहाड़ इन दोनों के बाधक पाये जाते हैं। इसलिए मैदानों में व्यापार और शिक्षा का प्रचार और प्रसार पहाड़ी देशों की अपेक्षा कहीं अधिक पाया जाता है। इसका फल यह

हुआ करता है कि पहाड़ी निवासियों की अपेक्षा मैदानों में रहने वाले अधिक धनवान और समुन्नत पाये जाते हैं। अफगानिस्तान और भारतवर्ष में रहने वाले इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

यहाँ पर एक बात और भी ध्यान देने योग्य है। मनुष्य की आध्यात्मिक और मानसिक उन्नति के लिये उपजाऊ मैदान ही सब से अधिक उपयुक्त स्थान पाये जाते हैं। कारण इसका यह है कि इन मैदानों में थोड़े से परिश्रम के बाद खाने और पहिनने को इतना अधिक पाया जा सकता



फियोर्ड का दृश्य

है कि लोगों को अपनी आध्यात्मिक और मानसिक उन्नति करने का काफी अवकाश मिल सकता है। यही कारण है कि गंगा और सिंध के मैदान प्राचीन काल में आध्यात्मिक और मानसिक उन्नति के केन्द्र बने हुये थे।

यूरोपीय देशों और संयुक्त राज्यों की वर्तमान वैज्ञानिक उन्नति का भी कारण इसी एक बात में पाया जा सकता है। भला टन्ड्रा और सहारा के रहने वाले जिन्हें दिनरात अपने खाने की ही चिन्ता लगी रहा करती है इस ओर क्या उन्नति कर सकते हैं ?

समुद्री किनारों का जीवन—विशेषता के विचार से जीवन निर्वाह की अन्तिम भौगोलिक परिस्थितियाँ समुद्र के किनारों पर पाई जाती हैं। किसी भी देश का समुद्री किनारा समतल या पथरीला पाया जा सकता है और इसके साथ ही साथ या तो उस किनारे तक लोग सुगमता के साथ पहुँच सकते हैं या जा ही नहीं सकते।

मछली मारने योग्य किनारे—दो प्रकार के किनारों पर मछली मारने का उद्यम बहुत अधिक किया जा सकता है। पहिला तो 'फियोर्ड' या दरारदार पथरीला किनारा जो कि समुद्र के किनारे के पहाड़ी देशों में पाया जाता है जैसे नार्वे और स्काटलैंड का किनारा। दूसरा लैगून्स अर्थात् खारे पानी की दलदली झीलों का किनारा। जैसे फ्रांस में लैन्ग्वे-डाक किनारा। दोनों किनारों पर पानी चट्टानों या बालू के धुसों के कारण जो कि समुद्र की लहरों के वेग को रोक लिया करते हैं, शान्त पाया जाता है। लोग आसानी के साथ उन किनारों पर आ जा सकते हैं इस लिये ऐसे किनारों पर मछली मारने के केन्द्र बड़ी तेजी के साथ स्थापित हो जाया करते हैं। पहिले तो ये केन्द्र बन्द स्थानों में ही हुआ करते हैं, किन्तु फिर बढ़ते बढ़ते खुले हुए समुद्र में पहुँच जाया करते हैं। वहाँ से इनका विस्तार धीरे धीरे और भी अधिक बढ़ता जाता है। नार्वे के लाफडन स्थान में प्रति वर्ष हजारों आदमी काड मछलियों के मारने

के लिये जाया करते हैं। इनके अतिरिक्त सैकड़ों आदमी और उत्तर की ओर आर्कटिक महासागर में सील और ह्वेल मछलियों के मारने के लिए चले जाया करते हैं। इस काम में नार्वे, स्वीडन, जर्मनी, हालैंड और स्काटलैंड के लोग अधिक भाग लिया करते हैं।

मछुवाहों का जीवन— मछुवाहों का जीवन अधिकांश में बन्जारों का ही जीवन हुआ करता है जिसमें घोड़ों और ऊँटों का स्थान नावें और डोंगियाँ ले लिया करती हैं। प्रायः इनके घर एक निश्चित स्थान पर ही हुआ करते हैं जिनमें औरतें और बच्चे घर का काम-काज किया करते हैं। बड़े बड़े मर्द ही मछली मारने के लिए समुद्र में जाया करते हैं। इनकी औरतें थोड़ी बहुत खेती कर लेतीं और कुछ कारीगरी का भी काम किया करती हैं। नार्वे में खेती का काम तो ज्यादातर मछुवाहों की औरतें ही किया करती हैं। इस प्रकार मछुवाहों के देश में स्त्रियों का स्थान काफ़ी ऊँचा रहा करता है और उन्हें मनुष्यों के बराबर ही सामाजिक और राजनीतिक अधिकार हुआ करते हैं। इसका प्रमाण हमें नार्थ (उत्तरी सागर के किनारे वाले सभी देशों में थोड़ा बहुत मिल सकता है। यही नहीं, मछली मारने वाली जातियों के लोग अच्छे मल्लाह होने के अतिरिक्त अच्छे व्यापारी भी हुआ करते हैं। इनका सारा व्यापार नावों के द्वारा ही किया जाया करता है। चूंकि इन लोगों को सदैव ही समुद्र के संकटों का सामना करना पड़ा करता है इसलिए ये लोग अधिकांश में साहसी और बहादुर पाये जाते हैं। यही कारण था कि यूनान और नार्वे के लोगों ने पहिले यूरोप के बहुत से भागों पर अपना आधिपत्य जमा लिया था।

इसके अतिरिक्त एक बात और भी है। नार्वे और स्वीडन ऐसे देशों के रहने वाले जो अच्छे व्यापारी और मल्लाह हुआ करते हैं किन्तु जहाँ व्यापार के लिये अपने देश में बहुत कम चीजें पाई जाती हैं—दूसरे देशों के माल को लाया और पहुँचाया करते हैं। यही कारण है कि नार्वे और यूनान के जहाज़ हमें संसार के क़रीब क़रीब सभी प्रमुख बन्दर-गाहों में मिला करते हैं।

तीसरी बात यह है कि ऐसे देशों के निवासी ज्यादातर अपने देश को छोड़कर दूसरे देशों में जा बसा करते हैं और मौका पाकर कभी कभी उन पर अपना अधिकार भी जमा लिया करते हैं। कारण इसका यह है कि शेर को जब एक जंगल में खाने भर को नहीं मिला करता तो वह दूसरे जंगल में जा पहुँचता है। यही कारण था कि प्राचीन काल में नार्वे वालों ने नार्मेन्डी और इंगलैंड में तथा यूनान वालों ने अपने आस-पास के देशों में अपना अधिकार जमा लिया था। आजकल भी उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों की जो यात्रायें की जा रही हैं उनमें नान्सन, अमन्डसन और स्टीफेन्सन आदि बहादुर लोग इन्हीं उत्तरी देशों के रहने वाले थे।

चौथी बात यह है कि ऐसे देशों के निवासी मल्लाह होते होते समुद्री डाकू हो जाया करते हैं। मलाया द्वीप समूह और चीन के आस-पास वाले टापुओं के लोग अबतक इसके लिये बदनाम हैं।

समुद्री किनारों पर नदियों के चौड़े मुहानों की उपयोगिता—यदि किसी देश का समुद्री किनारा अच्छा है तो उसका सौभाग्य है। किन्तु यदि किनारा अच्छा होते हुये नदियों के चौड़े मुहाने भी हों तो

फिर कहना ही क्या है। आजकल तो ऐसे देश की चाँदी ही रहा करती है। वास्तव में ऐसे मुहाने तो देश के भीतरी भागों को भी समुद्र के बहुत ही निकट कर दिया करते हैं जिससे व्यापार में और भी अधिक उन्नति हो जाया करती है। ऐसी नदियों के मुहानों पर बड़े बड़े नगर और बन्दरगाह तैयार हो जाया करते हैं। भारतवर्ष में कलकत्ता और करॉंची तथा इंगलैंड में लंडन और ब्रिस्टल आदि इसके बहुत ही अच्छे उदाहरण हैं।

वे किनारे जिनमें मछलियाँ नहीं मारी जा सकतीं—दो प्रकार के किनारों पर मछलियाँ नहीं मारी जा सकतीं। पहिला तो पहाड़ी किन्तु सपाट किनारा जिसमें लहरों और हवा के कारण मिट्टी कट जाने से ऊँचे ऊँचे सपाट और पथरीले किनारे निकल आया करते हैं ऐसे करार-दार किनारों पर नावों का आना-जाना कठिन ही नहीं भयानक भी हुआ करता है। दूसरे बलुहे किनारे जो उथले समुद्रों में निकल आया करते हैं। यहाँ जाकर नावें और डोंगियाँ फँस जाया करती हैं। पहिली तरह के पहाड़ी किनारे प्रायः स्थल की ओर से भी पहाड़ों द्वारा घिरे हुये पाये जाते हैं इसलिये ऐसे किनारों पर रहने वालों का जीवन बहुत ही दुखमय हुआ करता है। न तो उन बेचारों को समुद्र से ही काफी भोजन मिला करता है और न स्थल से ही। इसलिये ऐसे किनारों पर बहुत कम लोग रहा करते हैं। पश्चिमी आयरलैंड के कुछ भाग इसके अच्छे उदाहरण हैं। दूसरी तरह के किनारों के पीछे प्रायः उपजाऊ प्रदेश भी पाया जाता है इसलिये वहाँ के लोग खेती पाती के आगे मछलियाँ मारने की अधिक परवाह नहीं किया करते। यद्यपि इनका

जीवन पहिले की भाँति दुखमय नहीं हुआ करता किन्तु ऐसे किनारे जहाजों के आने-जाने में बाधक होने के कारण व्यापार का जरूर नुकसान किया करते हैं। ह्वाँगहो नदी का किनारा इसका एक अच्छा उदाहरण है।

बारहवाँ अध्याय

मनुष्य के उद्यमों का उसके जीवन पर प्रभाव

पिछले अध्यायों में हमने टन्ड्रा, सहारा, टैगा, शीतोष्णवन, ऊष्ण-वन, पहाड़ों, पठारों, मैदानों और समुद्र के किनारों पर रहने वालों के जीवन का उदाहरण देते हुए इस बात के देखने का प्रयत्न किया है कि किसी स्थान की भौगोलिक परिस्थितियाँ वहाँ के रहने वालों को किस प्रकार एक विशेष ढंग का उद्यम और व्यवसाय करने के लिये बाध्य कर दिया करती हैं और किस प्रकार फिर वे उद्यम स्वयं ही वहाँ के रहने वालों के जीवन में भिन्न भिन्न प्रकार का परिवर्तन और अन्तर उपस्थित कर दिया करते हैं। इस अध्याय में हम उन्हीं उदाहरणों को फिर से लेते हुये उन पर अधिक विस्तृत और व्यापक विवेचन करेंगे जिसमें एक-सा ही उद्यम करने वाली जातियों का तुलनात्मक अध्ययन भी होता जाय। इसमें हम यह देखेंगे कि एक-से कारणों का एक-सा ही फल भी पाया जाता है अर्थात् किसी विशेष उद्यम को करने वाली सब जातियाँ आपस में बहुत कुछ मिलती-जुलती पाई जाती हैं। इस प्रकार हमें यह ज्ञात हो जायगा कि एक स्थान की शिकारी जातियाँ दूसरे स्थान की शिकारी जातियों-सी ही हुआ करती हैं। भिन्न भिन्न स्थानों के चरवाहों में बहुत कुछ समानता और सदृशता पाई जाया करती है; संसार के सभी किसानों का जीवन थोड़े बहुत अन्तर के साथ एक

दूसरे से मिलता-जुलता पाया जा सकता है। हाँ यह बात अवश्य है कि जिन जातियों का जीवन जितना ही सरल पाया जावेगा उनकी समानता भी उतनी ही स्पष्ट मालूम हो सकेगी।

साधारण समाज में प्रायः प्रत्येक आदमी अपनी भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार एक-सा ही काम किया करता है। इनको अपने खाने, पीने, पहिनने और ओढ़ने के लिये सभी सामान उन्हीं चीजों से बनाना पड़ा करता है जो इनके आस पास पाई जाती हैं इसलिये इनमें उपलब्ध चीजों के अनुसार कुछ अन्तर अवश्य पाया जा सकता है।

संसार की शिकारी जातियों का जीवन—यह तो हम देख ही चुके हैं कि सब से सरल और साधारण उद्यम रेगिस्तानों और जंगलों में ही हुआ करते हैं जहाँ लोग या तो थोड़े बहुत फल-फूल इकट्ठा कर लिया करते हैं या जंगली जानवरों और मछलियों का शिकार किया करते हैं। चूंकि इस तरह की जातियाँ अपने आस-पास के भोजन को शीघ्र ही समाप्त कर दिया करती हैं इसलिये उन्हें हमेशा अपने रहने के स्थान बदलने पड़ा करते हैं। कभी कभी तो इन बेचारों को दो दो और चार चार दिन तक खाने को ही नहीं मिला करता। इनके जीवन का सब से साधारण नमूना उन बन्जारों में पाया जाता है जो हमेशा ही इधर-उधर घूमा करते हैं। जहाँ ही शाम हो गई, पड़ कर सो गये। प्रातःकाल होते ही फिर आगे चल पड़े। इनके पास न तो घर ही हुआ करते हैं और न भाँडे बासन तथा यथेष्ट वस्त्रादि ही। इनका सारा धन इनके साधारण अस्त्र-शस्त्रों में ही हुआ करता है। ये लोग

हमेशा इधर-उधर मारे मारे फिरने के कारण अपने पास किसी प्रकार का भी सामान नहीं इकट्ठा किया करते।

ऐसी जातियों के लोग बहुत थोड़ी ही संख्या में पाये जाया करते हैं। जीवन निर्वाह अत्यन्त कठिन होने के कारण इनमें मृतकों की संख्या भी अधिक पाई जाती है। विशेष तौर से बच्चे ही अधिक मरते पाये जाते हैं। यही नहीं, बहुत से लड़के तो माँ बाप के द्वारा ही मार डाले जाया करते हैं ताकि उनके पालन-पोषण की तकलीफ़ न उठानी पड़े। इसी कारण किन्ही किन्ही जातियों में मनुष्यों को मार कर खा जाने की भी आदत पाई जाती है। विशेष कर अकाल के दिनों में तो यही एक उपाय जीवन का आधार ही हुआ करता है। ऐसी जातियों में सब से अधिक बुरी दशा तो बीमारों और बुड्ढों की हुआ करती है, क्योंकि ये लोग चलने-फिरने के योग्य न होने के कारण ईश्वर के भरोसे ही छोड़ दिये जाया करते हैं।

ऐसी जातियों को अपने से सबल और सुशिक्षित जातियों के सामने हमेशा ही भागना पड़ा करता है। इस भगदड़ में इनकी गरीबी और भी अधिक बढ़ जाया करती है क्योंकि जान बचाने के लिये ज्यादातर थोड़े बहुत सामान को तो पीछे ही छोड़ देना पड़ा करता है, केवल अस्त्र-शस्त्र ही साथ जाया करते हैं। इस प्रकार बाल बच्चों की भी दशा बहुत ही दयनीय हो जाया करती है क्योंकि इनके पास मामूली अस्त्र-शस्त्र-चलाने की विद्या के अतिरिक्त और कोई भी ऐसी चीज नहीं हुआ करती जिसे वे अपने बाल बच्चों के लिये छोड़ जा सकें। और शिकार आदि की योग्यता तो सीखने से ही प्राप्त की जा सकती है, वह गाय बैल की भाँति

बच्चों के नाम लिखी या लिखाई तो जा नहीं सकती । इस प्रकार ऐसी जातियों के लोग पीढ़ी दर पीढ़ी एक सी ही हालत में रहा करते हैं क्योंकि किसी प्रकार की अच्छी उन्नति करने के लिये तो उनके पास साधन ही नहीं हुआ करते।

किन्तु इसके माने यह नहीं हैं कि ऐसी जातियों के लोग किसी प्रकार की भी उन्नति नहीं किया करते। चूंकि उनका जीवन शिकार के ही ऊपर निर्भर रहा करता है इस लिये अस्त्र-शस्त्रों के बनाने में जरूर ये लोग कुछ न कुछ चतुरता दिखाया करते हैं। इस्कीमों लोगों ने हारपून के बनाने में बहुत कुछ उन्नति कर ली है। इसी प्रकार कायक लोग बहुत अच्छी अच्छी डोंगियाँ भी बना लिया करते हैं। कान्गो और अमेजन के जंगलों में पाई जाने वाली जातियों ने जंगली पैदावारों को इकट्ठा करके थोड़ा बहुत व्यापार करना भी सीख लिया है। किन्तु उनकी इस प्रकार की सारी उन्नति उनके किसी स्थान पर जम कर रहने में ही निर्भर रहा करती है; क्योंकि ऐसी दशा में औरतें और बाल बच्चे छोटे मोटे झोपड़ों में रह कर बहुत खेती पाती भी कर लिया करती हैं। ऐसे घरों के आसपास छोटी मोटी कारीगरी और थोड़ा बहुत व्यवसाय भी किया जाया करता है।

संसार की शिकारी जातियाँ प्रायः ऐसे भागों में पाई जाती हैं जहाँ जीवन निर्वाह की समस्या बहुत ही कठिन हुआ करती है जैसे नई और पुरानी दुनियाँ के जंगली भाग, उत्तर के टन्ड्रा, आस्ट्रेलिया और दक्षिणी अमेरिका के वे भाग जो बिल्कुल ऊसर और उजाड़ रहा करते हैं। इनमें आस्ट्रेलिया के फ्यूजियन्स और आमेजन के 'इंडियन्स' सब से

अधिक असभ्य पाये जाते हैं। दक्षिणी अफ्रीका के 'बुशमेन' उनसे थोड़े ही अच्छे पाये जाते हैं। कान्गो के पिगमियों ने अपने हथियारों और मकानों में इनसे भी थोड़ी अधिक उन्नति कर ली है। हाटेंस्टाट और प्रेरीज के रेड इंडियन्स जो शिकार के साथ चरागाही का भी काम किया करते हैं अब एक प्रकार से नष्ट ही होते जाते हैं। मलाया के जंगलों की अधिकाँश जातियाँ शिकार पर ही निर्भर रहा करती हैं। इसी प्रकार अमेजन के जंगलों में पाई जाने वाली जातियाँ विशेष कर मछली का ही शिकार किया करती हैं।

यह तो हम पहिले ही बता चुके हैं कि ऐसी शिकारी जातियाँ अपने मकानों और हथियारों में उन्नति किया करती हैं और इस विचार से इस्कीमो लोग सब से अधिक चतुर पाये जाते हैं।

संसार के मछुवाहे—मछली मारने वाली जातियाँ संसार में दो प्रकार की पाई जाती हैं, पहिला तो वे जो किसी देश के अन्दर वाली नदियों में मछली मारा करती हैं। ऐसी जाति के लोग बहुत कुछ शिकारी ही कहे जा सकते हैं क्योंकि इनका जीवन बहुत अंशों में उपरोक्त जीवनों से मिलता जुलता पाया जाता है। ये लोग भी उन्हीं की तरह तीर कमान या भाले बरछी से ही शिकार किया करते हैं।

असली मछुवाहे तो वे लोग कहे जाते हैं जो समुद्र के किनारों पर रहा करते हैं। इस पेशे के लोग जैसा हम देख चुके हैं -साहसी और चतुर मल्लाह हुआ करते हैं। ये लोग महाद्वीपों और द्वीपों के समुद्री किनारों पर पाये जाते हैं यद्यपि शिकारी जातियों की भाँति ये लोग भी अपने आसपास की भोजन सामग्री को चुकाने में ही लगे रहा करते

हैं तौ भी समुद्र में अपरिमित भोजन सामग्री होने के कारण इनका भंडार उतनी तेजी के साथ खाली होता हुआ नहीं पाया जाता। इसी लिये इनका जीवन भी उन लोगों की अपेक्षा अधिक निश्चित और सुखमय हुआ करता है। इनके अतिरिक्त चूँकि इनके बाल बच्चे ज्यादातर किनारे पर ही रहा करते हैं इसलिये इनका जीवन और अधिक सुव्यवस्थित पाया जाता है। क्योंकि यहाँ ये लोग खेती, चरागाही और व्यापार भी कर लिया करते हैं।

चरागाही करने वाली जातियाँ यह तो हमने देख लिया कि उपर की दोनों जातियाँ—शिकारी और मछुवाहे लोग—अपने आसपास की जीवन निर्वाह की सामग्रियों को हमेशा ही, बिना उसमें किसी प्रकार की वृद्धि किये हुये, समाप्त किया करती हैं अतः या तो वे लोग अन्त में बिलकुल समाप्त ही कर दिया करते हैं या फिर उसमें कुछ परिवृद्धि करने का उपाय सोच निकाला करते हैं। यह उपाय किसी एक स्थान में जम कर रहने और चरागाही का काम करने में पाया जाता है; क्योंकि जब वे लोग यह समझ जाते हैं कि जानवरों को मार मार कर खा जाने से उनका पाल लेना अधिक लाभदायक है तो वे लोग इस ओर अधिक ध्यान देने लग जाते हैं इसके लिये उन्हें जमीन के जोतने और बोने की भी आवश्यकता पड़ जाया करती है। इस प्रकार किसी एक विशेष स्थान के आसपास चरागाही और खेती के उद्यम स्थापित हो जाया करते हैं। इन स्थानों में रहने वाले लोग शिकारियों और मछुवाहों की अपेक्षा अधिक सभ्य और सम्पन्न पाये जाते हैं।

यह तो हम जान ही चुके हैं कि जानवरों को पालने के लिये घास

की आवश्यकता हुआ करती है इसलिये यह निश्चित है कि चरवाहों की जातियाँ संसार के चरागाहों में ही पाई जायँगो। नई और पुरानी दुनिया के स्टेप्स और सैवन्नाज इसके लिये सबसे उपयुक्त स्थान हैं। चूंकि टन्ड्रा के रहने वाले कुछ लोग रेन्डीयर को भी पाल लिया करते हैं, इसलिये वहाँ हमें शिकारियों और चरवाहों का मिला हुआ जीवन मिला करता है। स्टेप के किरघी चरवाहों का हाल तो हम बता ही चुके हैं। मध्य अफ्रीका के चरागाहों में डमारा और मसई जाति के लोग रहा करते हैं। दक्षिणी अफ्रीका के कुछ उजाड़ चरागाहों में पाये जाने वाले हाटन्टाट लोग सामाजिक उन्नति के विचार से बहुत ही पीछे पाये जाते हैं। आस्ट्रेलिया में पालने योग्य जानवरों की कमी के कारण वहाँ के आदिम चरवाहे बहुत ही कम पाये जाते हैं। आज कल संसार के प्रायः सभी प्रमुख चरागाह यूरोप निवासियों और उनके वंशजों के आधीन पाये जाते हैं। यहाँ इन लोगों ने वैज्ञानिक उपयोगों के द्वारा इस व्यवसाय की बड़ी उन्नति कर ली है और आदि निवासियों को समाप्त करते जा रहे हैं।

चरवाहों का जीवन— संसार के चरवाहों का जीवन शिकारी जातियों की अपेक्षा श्रेष्ठ और सुव्यवस्थित पाया जाता है। कारण इसका यह है कि इन लोगों के पास अपनी आवश्यकताओं से अधिक सामान हुआ करता है इनके जानवरों के गल्लों में हमेशा बढ़ती होती जाती है जिससे इनकी सम्पत्ति भी बढ़ती जाती है। इस प्रकार चरवाहे लोग एक प्रकार के धनी या महाजन हुआ करते हैं। किन्तु इसके साथ ही साथ इनका भी जीवन बिल्कुल निश्चित जीवन नहीं हुआ करता। इन्हें भी हमेशा अनावृष्टि और अकाल का डर लगा रहा करता है क्योंकि इससे इनके हजारों जानवर

मर जाया करते हैं और कभी कभी इन्हें बिल्कुल निर्धन हो जाना पड़ा करता है। टन्ड्रा के समोयद लोग अपने रेन्डियरों की बीमारी के कारण बहुत ही गरीब हो गये हैं। अफ्रीका की टीड्डियों ने कितनी ही जातियों और कितने ही यूरोपीय प्रवासियों को सत्यानाश कर दिया है। इस प्रकार हम यह मान सकते हैं कि चरवाहों का जीवन शिकारी जातियों के अत्यन्त ही संकटमय जीवन और खेती करने वालों के सुखमय और निश्चित जीवन के बीच का हुआ करता है।

चरवाहों का जीवन बन्जारों का जीवन हुआ करता है। नये नये चरागाहों की प्राप्ति ही उनके गल्लों की वृद्धि और उनकी कुशलता का कारण हुआ करती है। इन लोगों के पास बोझा ढोने वाले जानवर भी पाये जाते हैं जैसे टन्ड्रा में रेन्डीयर, स्टेप में घोड़ा और ओसिसों में ऊँट। इसलिये शिकारी जातियों की अपेक्षा इन लोगों को आने जाने में अधिक सुविधा हुआ करती है। यही नहीं, इस सुविधा के कारण ये लोग अपने पास गृहस्थी का बहुत कुछ सामान भी इकट्ठा कर लिया करते हैं जिससे इनका जमीन उन शिकारी लोगों या यों कहिये कि शिकारी जानवरों क्योंकि वास्तव में शिकारी लोग अपने आसपास के जंगली जानवरों से कुछ ही अधिक अच्छे हुआ करते हैं—से अधिक शांत और सुखमय हुआ करता है। ये चीजें इनके लिये संचित धन का काम दिया करती हैं और इन्हीं के ऊपर इनका मानापमान निर्भर रहा करता है। यहाँ खेती करने वालों की भांति जमीन के छोटे छोटे टुकड़े नहीं किये जाते क्योंकि ऐसा करने में कष्ट की अधिक संभावना पाई जाती है। इसके विरुद्ध यहाँ जमीन के बड़े बड़े टुकड़े एक ही खानदान वालों के आधीन रहा करते हैं। यही हाल जानवरों

श्रौर भेड़ों के गल्लों का भी पाया जाता है। गृहस्थी का सामान जैसे खेमे, चटाई, कम्बल श्रौर भाँड़े बासनादि तो प्रत्येक कुनबे के सबसे बुजुर्ग श्रादमी का ही माना जाया करता है।

शासन विधान—यहाँ पर उपरोक्त जातियों के विषय में एक बात श्रौर भी जान लेने योग्य है। चूंकि इन लोगों का जीवन अधिकांश में एक श्रनिश्चित जीवन ही हुआ करता है इसलिये इन लोगों में सुव्यवस्थित जातियों का सा शासन विधान भी नहीं पाया जाता। हमरे यहाँ के श्राधुनिक राज्यतंत्र श्रौर प्रजातंत्र श्रादि का तो वहाँ के लोग नाम तक भी नहीं जान पाते किन्तु एक प्रकार की छोटी किन्तु पूर्ण 'डिक्टेटर शिप' जरूर पाई जाती है। जब इन लोगों के गाँव गोंडे ही निश्रित नहीं पाये जाते तो एक सुव्यवस्थित श्रौर शक्तिशाली शासन कहाँ से श्रावे? इसलिये इन जातियों में प्रायः यह नियम हुश्रा करता है कि प्रत्येक कुनबा श्रौर प्रत्येक फिरका श्रपने ही में एक छोटा मोटा राज्य हुश्रा करता है। प्रत्येक खानदान का सबसे बुजुर्ग श्रादमी उसका मालिक या राजा हुश्रा करता है। घर के शेष लोग उसी के निर्धारित मार्ग पर श्राचरण किया करते हैं श्रौर उसी की ही श्राज्ञा का पालन किया करते हैं। इसी प्रकार एक ही वंश के कई कुनबों को मिला कर एक फिरका, गिरोह या जाति बन जाया करती है श्रौर उसमें का सबसे श्रधिक बुद्धिमान श्रौर शक्तिशाली मनुष्य ही उनका सरदार, मुखिया, नेता, या नायक माना जाया करता है। इस प्रकार उपरोक्त जातियों में कई एक नेता या नायक पाये जाया करते हैं जो कि ज्यादातर श्रापस में ही लड़ा-भिड़ा करते हैं। यही कारण है कि उपरोक्त जातियाँ किसी भी संगठित सेना-नायक के

द्वारा बड़ी आसानी के साथ हराई जाकर भगाई या पराधीन बनाई जा सकती हैं।

खेती करने वालों का जीवन—यदि विचार कर देखा जाय तो खेती का उद्यम सबसे अधिक मिहनत का उद्यम है ; किन्तु इसके साथ ही साथ सबसे अधिक स्वतंत्र और सुखमय उद्यम भी यही एक कहा जा सकता है। भारत वासियों की इस लोकोक्ति उत्तम खेती, मध्यम वाणिज्य, निकृष्ट चाकरी-में बहुत कुछ तथ्य पाया जा सकता है खेती करने वालों को न तो शिकारियों और चरवाहों की भाँति इधर-उधर अनिश्चित रूप से घूमना ही पड़ा करता है और न व्यापारियों की भाँति ग्राहकों के ही आधीन होना पड़ा करता है। यदि मनुष्य को इस संसार में कहीं भी सच्ची सुख और शान्ति मिल सकती है तो वह उसके खेतों के ही आस-पास जहाँ वह दिन रात प्रकृति की गोद में बिहार कर सकता है।

खेती-पाती का काम वस्तुतः मानव समाज की बहुत ही प्रारंभिक अवस्था में प्रारंभ हो जाया करता है। इसका श्री गणेश तो हमें शिकारियों की मामूली सभ्य जातियों में ही मिला करता है क्योंकि इनके पास चरवाहों के से आमदरफ्त के सुभीते न होने के कारण इन्हें अपनी औरतों और अपने बाल-बच्चों को प्रायः प्रत्येक पड़ाव पर ही रख देना पड़ा करता है। जब आदमी लोग अपने शिकार के काम में लगे रहा करते हैं तो औरतें अपने खेमों या झोपड़ों के आस-पास थोड़ा बहुत खेती-पाती का काम जरूर कर लिया करती हैं। ब्राजील में पाई जाने वाली शिकारी जातियों की औरतें—जैसा हम बता चुके हैं - मैनिअक (साँवाँ) के पौधे बो दिया करती हैं जिसकी फसल पड़ाव के उखड़ते तक में पक कर

तैयार हो जाया करती है। चरागाही करने वाली जातियों में इस प्रकार के उद्यम इसलिये नहीं किये जा सकते कि इन लोगों के पास आने जाने के लिये जानवरों की सुविधा होने के कारण इनके बाल बच्चे भी साथ ही साथ चला करते हैं। इनके अतिरिक्त इनकी औरतों को जानवरों के दुहने दुहाने और उनके बालों के कपड़े आदि बनाने से ही फुरसत नहीं मिला करती। तीसरी बात यह है कि चरागाही वाले प्रांतों की जलवायु इसके लिये अधिक उपयुक्त नहीं हुआ करती।

किसी भी जाति में खेती-पाती का काम प्रारंभ होते ही उसका जीवन निश्चित और सुव्यवस्थित हो जाया करता है। पहिले तो जमीन के बड़े बड़े टुकड़े उस जाति के प्रमुख दलों में बाँट दिये जाते हैं फिर आगे चल कर प्रत्येक दल के और भी छोटे छोटे दल हो जाया करते हैं। इस प्रकार अन्त में वह जमीन कुनबों और कुनबों के प्रत्येक सदस्यों में विभाजित हो जाया करती है। इसका परिणाम यह हुआ करता है कि इस विभाग के साथ समाज अधिक विस्तृत और गहन होता जाता है। नये नये व्यवसायों का प्रचार और प्रसार भी बढ़ता जाता है। उस जाति के सदस्यों में से कुछ तो व्यापारी, कुछ शिक्षक और कुछ शासक आदि हो जाया करते हैं।

इस प्रकार हमने यह देख लिया कि संसार में प्रतिदिन उद्यमों का परिवर्तन होता जा रहा है। लोग कष्ट पूर्ण और अनिश्चित उद्यमों को छोड़ कर सुखद और निश्चित उद्यमों की ओर प्रवृत्त होते जा रहे हैं; किन्तु संसार के किस भाग में कौन सा उद्यम अधिक सुगमता के साथ किया जायगा यह वहाँ की भौगोलिक परिस्थितियों पर ही निर्भर रहा करता

है। मनुष्य कितना भी चाहे किन्तु टन्ड्रा में खेती कभी भी मैदानों की सी विस्तृत दशा में नहीं की जा सकती और न सहारा के रेगिस्तानों में ढोर ही चराये जा सकते।

उद्यम का प्रभाव रहन-सहन पर— किसी जाति में किये जाने वाले उद्यमों का प्रभाव उसकी रहन-सहन, उसके खान-पान और उसके पहिनाव पर पड़ा करता है।

किसी स्थान में किस प्रकार के घर बनाये जा सकते हैं यह उस स्थान की उपलब्ध सामग्रियों पर ही निर्भर रहा करता है। घास फूस, नरकुल, पेड़ों की छाल, पत्तियाँ और डालें, जानवरों की खाल और हड्डियाँ, लकड़ी, मिट्टी पत्थर और बर्फ़ आदि नाना प्रकार की चीजें मकान बनाने के लिये संसार के भिन्न भिन्न भागों में प्रयोग की जाया करती हैं। यही नहीं, इन घरों की आकृति भी उद्यमों पर ही निर्भर रहा करती है। शिकारी जातियाँ और चरवाहे लोग स्थाई मकान बहुत ही कम बनाया करते हैं। इन दोनों के मकानों में भी बड़ा अन्तर पाया जाता है। जहाँ कि चरवाहों के मकानें (खेमे) मज़बूत, सुन्दर और कीमती हुआ करते हैं, शिकारी जातियों के मकान कभी कभी तो दो चार पत्तियों के टूटे फूटे झोपड़े ही हुआ करते हैं। इस अन्तर का कारण केवल यह है कि चरवाहों के पास इन चीजों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिये घोड़े, ऊँट और बैल आदि जानवर हुआ करते हैं। यद्यपि शिकारी जातियों के पास भी कहीं कहीं ऐसे मकानें पाये जाते हैं जो एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाये जा सकें, किन्तु यह उपलब्ध सामग्रियों की न्यूनता या अधिकता पर ही निर्भर रहा करता है।

साधारणतया जहाँ लकड़ी और घास-फूस के झोपड़े बनाये जाया करते हैं वहाँ तो ये झोपड़े छोड़ ही दिये जाया करते हैं क्योंकि जितनी मिहनत इन झोपड़ों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने में पड़ा करती है उससे कहीं कम मिहनत में एक नया झोपड़ा ही तैयार किया जा सकता है। इसलिये थोड़ा बहुत चरागाही करने वाली शिकारी जातियाँ भी प्रायः इसी नियम का अनुसरण किया करती हैं । यही कारण है कि टैगा के किनारों पर पाई जाने वाली समोयद और उस्त्याक जातियाँ अपने खेमों के खंभों को वहीं छोड़ दिया करती हैं यद्यपि रेन्डीयरों के द्वारा ये खंभे आसानी के साथ ले जाये जा सकते हैं । इसके विरुद्ध जो जातियाँ टैगा से बहुत दूर उत्तर की ओर पाई जाती हैं वे अपनी लकड़ियों को छोड़ने का स्वप्न में भी ध्यान नहीं कर सकतीं।

मनुष्य जाति की सबसे अधिक अशिक्षित जातियाँ वे हैं जो कि अपने रहने के लिये किसी प्रकार के भी मकान नहीं बनाया करतीं । अफ्रीका के 'बुशमेन' या तो पेड़ों के खोखलों या चट्टानों की दरारों में ही रहा करते हैं। यदि बड़ी हिम्मत की तो दो चार शाखों को बाँध-बूँध कर छत्र सा बना लिया। यही हालत आस्ट्रेलिया के आदि निवासियों की भी पाई जाती है। फ्यूजियन लोग अपनी डोंगियों पर ही रहा करते हैं। समो यद और लैप लोग अलबत्ता जलवायु के कारण जानवरों की खाल या वर्च की छाल के खेमे या झोपड़े बना लिया करते हैं । इस्कीमो लोग अपने यहाँ की शरद ऋतु के बहुत ही लम्बी, ठंडी और अँधेरी होने के कारण बर्फ़ से घरौंदे जरूर बना लिया करते हैं क्योंकि उनको बहुत दिनों तक एक ही स्थान पर रहना पड़ा करता है । शिकार

और चरागाही दोनों उद्यम करने वाली जातियों के मकान इन सब की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छे हुआ करते हैं।

चरवाहों के खेमे—जैसा कि बताया जा चुका है, मजबूत और हल्के हुआ करते हैं जो कि आसानी के साथ इधर-उधर ले जाये जा सकें। अफ्रीका के लगभग सभी चरवाहे हल्के और मजबूत खेमे बनाया करते हैं; किन्तु इन सब में सब से अधिक सुन्दर, मजबूत और सुखप्रद मंगोल लोगों के 'पुर्त' हुआ करते हैं। इनके लिये सारा सामान इनके जानवरों से ही मिल जाया करता है। प्रायः ये खेमे एक गोलाकार रूप में गाड़े जाया करते हैं जिससे जानवरों की रक्षा अधिक आसानी के साथ की जा सके।

जैसे जैसे मनुष्य का जीवन स्थिर होता जाता है वैसे ही वैसे उसके घर भी अधिक मजबूत और सुखप्रद होते जाते हैं। अफ्रीका के किसान ताड़, नारियल, बाँस और बेत के अच्छे मकान बनाया करते हैं। अर्ध-शिक्षित जातियों में सम्भवतः मलाया के लोग सबसे अच्छे मकान बनाया करते हैं। मामूलीतौर के मकान तो जिनमें बहुत से आदमी एक साथ रह सकें, संसार के बहुत से भागों में पाये जा सकते हैं। जंगलों के आस-पास मकान बनाने में लकड़ी का प्रयोग अधिक किया जाता है। जो मकान जितने ही अधिक दिन के लिये बनाया जाता है वह उतनाही अधिक सुन्दर और मजबूत हुआ करता है। अमेरिका प्रवासियों के लम्बे लम्बे बंगले तो कुछ भद्दे हुआ करते हैं; किन्तु जर्मनी और स्विटजरलैंड के जंगलों में साखू और सागौन के बने हुये मकान बहुत ही विचित्र पाये जाते हैं। जैसे जैसे जंगलों को साफ कर लोग नगरों

में रहने लग जाते हैं वैसे ही वैसे मकानों के बनाने में ईंटों, पत्थरों और संगमरमर आदि का प्रयोग बढ़ता जाता है। आगे चल कर इनके स्थान में और भी अधिक मजबूत चीजों जैसे लोहे और स्टील आदि का प्रयोग होने लग जाता है। अमेरिका के आधुनिक आकाश-विचुम्बित प्रासाद (स्काई-स्क्रेपर्स) इन्हीं चीजों के आधार पर बनाये जा रहे हैं।

इस प्रकार हमने यह तो देख लिया कि संसार में मनुष्यों के मकान मामूली झोपड़ों—नहीं नहीं, जंगली जानवरों की माँदों और पहाड़ी कन्दराओं से लेकर संगमरमर और संगमूसा के बहुमूल्य और विशाल भवनों तक पाये जाते हैं किन्तु ईश्वर की लीला ही कुछ ऐसी विचित्र है कि माँदों में रहने वाले जंगली लोग भी अपनी चुरों में उतने ही आनंद से रहा करते हैं जैसे कि बड़े बड़े महाराजे अपने प्रासादों में। यह कहलाता है, अभ्यास का विचित्र परिणाम।

उद्यमों का प्रभाव पहिनाव पर—संसार की प्रारंभिक जातियों को मकानों की भाँति कपड़े लत्तों के लिये भी अपने आसपास की उपलब्ध सामग्री पर ही संतोष करना पड़ा करता है। ऊष्ण प्रदेशों में पाई जाने वाली अशिक्षित जातियाँ तो प्रायः कुछ भी नहीं पहिना करतीं।

सब से सादे कपड़े तो वे हैं जो कि ऊष्ण प्रदेशों की जंगली जातियाँ अपने आस-पास की घास-फूस और पत्तियों से बना लिया करती हैं। दूसरी चीज पेड़ों की छाल है जो कि प्रायः प्रत्येक जंगलों में पाई जा सकती है। जैसे जैसे ये जातियाँ कुछ अधिक शिक्षित होती जाती हैं वैसे ही वैसे इन कपड़ों की भी सुन्दरता बढ़ती जाती है। नरकुल और घास-फूस के कपड़े रंगे जाने लगते हैं या उनमें फूल और पत्तियाँ खोस

कर उनकी सुन्दरता बढ़ा ली जाया करती है। प्रशान्त महासागर के द्वीपों में रहने वाली जातियाँ छाल को पीट पाट कर भी कपड़े बना लिया करती हैं।

घास-फूस और पत्तियों के बाद दूसरा नम्बर जानवरों की खाल का आया करता है। संसार के अधिकाँश शिकारी और चरवाहे लोग खाल ही पहिना करते हैं। इस्कीमो लोगों के रोयें (फर्स) कच्ची खाल के ही बने रहा करते हैं। अधिक शिक्षित लोग इन्हें पका कर चमड़ा बना लिया करते हैं। भेड़, बकरी और कई प्रकार के अन्य जानवरों के बाल बुन कर भी पहिने जाते हैं।

जैसे ही जैसे कोई जाति अधिक शिक्षित और सुव्यवस्थित होती जाती है वैसे ही वैसे उसके कपड़ों में भी परिवर्तन होता जाता है। पहिले तो लोग अपनी आवश्यकता स्वयं पूरी करने का प्रयत्न किया करते हैं और फिर धीरे धीरे आस-पास के लोगों के साथ क्रय-विक्रय करने लग जाते हैं। जो कच्चा माल अपने यहाँ नहीं मिल सकता या जो कपड़े अपने यहाँ नहीं बनाये जा सकते वे दूसरे स्थानों से मँगाये जाया करते हैं। इस प्रकार भिन्न भिन्न देशों में भिन्न भिन्न कपड़ों का प्रचार और प्रसार होने लग जाता है। आजकल भारतवासी केवल अपने यहाँ के सूती और ऊनी कपड़े ही नहीं पहिना करते बल्कि जापान और चीन के रेशमी तथा यूरोपीय देशों के ऊनी और सूती कपड़े भी मंगाया करते हैं। धोतियों का स्थान पतलून और साफों का स्थान टोप लेते जा रहे हैं। इसी लिये हमें आज कल के सभ्य और शिक्षित देशों में नाना प्रकार के पहिनाव देखने को मिला करते हैं यहाँ तक कि इनके मेले ही लगने लग गये हैं।

उद्यमों का प्रभाव खान-पान पर—मकानों और कपड़ों की

भाँति खान-पान भी उद्यमों और जलवायु पर ही निर्भर रहा करता है। संसार की आदि जातियाँ प्राप्य कन्दमूल, फल-फूल और गोश्तादि पर ही निर्भर रहा करती हैं। विशेष कर शिकारी जातियाँ जैसे इस्कीमो और पिगमी लोग तो गोश्त पर ही गुजर किया करते हैं। चरवाहे लोग अधिकतर अपने जानवरों के दूध और गोश्त को ही खाया करते हैं। किसानों के यहाँ प्रायः प्रत्येक भाँति का भोजन पाया जा सकता है।

आजकल अपनी बची हुई भोजन सामग्री का एकत्रित करना भी जीवन का एक विशेष अंग माना जा रहा है इससे प्रत्येक जाति का जीवन अधिक निश्चिंतता के साथ बीत सकता है। और संसार की अन्य जातियों के साथ क्रय-विक्रय कर अपनी सम्पत्ति भी बढ़ाई जा सकती है। इसके लिये प्रायः प्रत्येक शिक्षित जाति में कोई न कोई उपाय अवश्य किया जाता है। वर्तमान समय में तो इसके लिये बहुत से वैज्ञानिक तरीके भी निकाले जा चुके हैं। जैसे गोश्त और दूध के जमाने की मशीनें। इसी के कारण तो आज भारतवर्ष में हमें डेनमार्क का दूध, अमेरिका का गोश्त और न्यूफाउन्डलैंड की मछलियाँ मिला करती हैं।

अपनी सामाजिक दशा के विचार से संसार के भिन्न भिन्न देशों के मजदूर भिन्न भिन्न अवस्थाओं में पाये जाते हैं। मजदूरी के विचार से संयुक्त राज्यों के मजदूर सबसे धनी और भारतवर्ष के मजदूर सब से गरीब माने जा सकते हैं। इनकी आर्थिक और सामाजिक उन्नति उस देश की आर्थिक और सामाजिक उन्नति पर ही निर्भर रहा करती है। अफ्रीका के हब्शियों के साथ जितनी निर्दयता का व्यवहार किया जा चुका है उतना शायद अभी और किसी के भाग्य में नहीं पड़ा। यद्यपि

इस समय संसार के भिन्न भिन्न भागों में भारतीय मजदूरों की जो दयनीय दशा पाई जाती है वह भी उनसे किसी ही कदर अच्छी कही जा सकती है। आस्ट्रेलिया, अफ्रीका और अमेरिका आदि देशों में इनके वहिष्कार और निर्वासन के लिये जैसे जैसे कानून बनाये जा रहे हैं वे हमारी विगत पराधीनता के अच्छे परिणाम-परिचायक हैं।

आजकल प्रायः सभी देशों में मजदूर आन्दोलन बड़े जोरों के साथ बढ़ता जा रहा है। जब से इस आन्दोलन का जन्म हुआ, सैकड़ों हड़-तालें मनाई जा चुकीं और अब भी उनका संगठन होता जा रहा है। इसका परिणाम यह हुआ है कि भिन्न भिन्न देशों के पूँजीपति इस बात को समझने लग गये हैं कि अपने मजदूरों को असन्तुष्ट और भूखा रख कर वे अपने देश की व्यापारिक उन्नति नहीं कर सकते। इसलिये इन बेचारों के जीवन को सुखमय बनाने की बहुत सी चेष्टायें की जा रही हैं। जापान, जर्मनी और संयुक्त राज्यों के मजदूर और देशों की अपेक्षा कहीं अधिक संतुष्ट पाये जाते हैं। क्रान्ति के बाद रूसी मजदूरों का भी जीवन बहुत कुछ सुधर गया है। इन देशों के मजदूर जीवन की सभी सुख सामग्रियों का कुछ न कुछ अनुभव जरूर कर सकते हैं।

जैसा कि हम बता चुके हैं, कारखानों के मजदूरों का जीवन साधा-रण परिस्थिति के लोगों का जीवन हुआ करता है। न तो इनके पास इतना अधिक ही धन इकट्ठा हो सकता है कि ये रईसों की भाँति तड़क-भड़क के साथ रह सकें और न इतना कम ही हुआ करता है कि भूखों मर जायँ, यद्यपि जीवन का पलड़ा दूसरी ओर ही अधिक झुका रहा करता है। एक साधारण मजदूर को जितनी मजदूरी मिला करती

है, करीब करीब उतनाही खर्च भी हो जाया करता है क्योंकि अन्न, पानी, भोजन और वस्त्र सभी मोल लेना पड़ा करता है। अगर इसके साथ ही साथ खेल-कूद का भी कुछ शौक हुआ तो बचत की गुंजाइश थोड़ी ही रह जाया करती है। इस विचार से भारतीय मजदूर कुछ भले रहा करते हैं। क्योंकि इनमें मित-व्ययिता की एक स्वाभाविक आदत सी पाई जाती है। साधारणतया प्रत्येक भारतीय मजदूर रुपये में आठ आना बचा लिया करता है। क्योंकि वह साधारण वस्त्रों और साधारण भोजन से ही अपना गुजर कर ले जा सकता है।

कारीगरी के सभी केन्द्रों में अन्न और दूसरी भोजन सामग्री तो प्रायः बाहर से ही आया करती है। यही कारण है कि बड़े बड़े व्यापारिक नगरों में खाद्य-पदार्थ महँगे मिला करते हैं। आस्ट्रेलिया की काल-गूरली और कूलगारडी नामक सोने की खानों में तो पानी भी दो हजार मील की दूरी से लाया जाता है। रेगिस्तान होने के कारण गर्मी भी खूब पड़ा करती है। इस प्रकार ऐसे स्थानों के मजदूरों का जीवन तो और भी अधिक दुःखमय हो जाया करता है। कारीगरी के बड़े बड़े केन्द्रों में आचार-विचार और रहन-सहन की विभिन्नता तो एक स्वाभाविक सी बात है क्योंकि ऐसे स्थान "कहीं की ईंट और कहीं का रोडा, भानुमती का कुनबा जोड़ा" ही हुआ करते हैं।

तेरहवाँ अध्याय

व्यापार और संसार के व्यापार-मार्ग

व्यापार किसे कहते हैं—पिछले अध्यायों में हमने यह देख लिया कि संसार की भिन्न-भिन्न जातियों की आर्थिक और सामाजिक दशा भिन्न भिन्न पाई जाती है। यदि एक जाति धनी है तो दूसरी निर्धन; यदि एक सभ्य है तो दूसरी असभ्य। एक ही जाति के अन्दर भी लोगों की परिस्थितियाँ भिन्न भिन्न पाई जाती हैं। यदि कुछ लोग रईस हैं तो दूसरे गरीब ; यदि कुछ विद्वान् हैं तो दूसरे अपढ़; यदि कुछ मालिक हैं तो कुछ उनके नौकर। यही नहीं, भिन्न भिन्न जातियों के उद्यम भी भिन्न भिन्न पाये जाते हैं। यदि एक खेती करती है तो दूसरी चरागाही ; और तीसरी व्यापार। इसके विचार से भी एक ही जाति के लोग भिन्न भिन्न उद्यमों के अनुसार भिन्न भिन्न दलों में बंटे हुए हैं। यदि कुछ लोहार हैं तो कुछ सोनार और कुछ व्यापारी। संसार की ऐसी विभिन्नता जातियों में ही नहीं, देशों में भी पाई जाती है। भिन्न भिन्न देशों की आर्थिक, सामाजिक और व्यावसायिक दशा में बड़ा अन्तर पाया जाता है। यदि एक में खेती अधिक की जाती है तो दूसरे में चरागाही, तीसरे में कारीगरी और चौथे में सम्भवतः कुछ भी नहीं। इस प्रकार यह निश्चित है कि कुछ देशों में कोई चीज अधिक पाई जायगी और कुछ में कोई और। यदि आज भारतवर्ष में नाज अधिक पैदा हो सकता है तो इंगलैंड में

लोहे की चीजें अधिक बनाई जा सकती हैं; संयुक्त राज्यों में मिट्टी का तेल बहुत अधिक निकाला जाता है और आस्ट्रेलिया में सोना; फ्रांस में शराब और चीन में रेशम अधिक पाई जाती है, इत्यादि इत्यादि।

इस प्रकार संसार में जीवन निर्वाह की सामग्रियों का वितरण बहुत ही विषम पाया जाता है। इसका परिणाम यह हुआ करता है कि एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य के ऊपर, एक जाति को दूसरी जाति के ऊपर और एक देश को दूसरे देश के ऊपर, निर्भर रहना पड़ा करता है। यदि कोई आदमी जमीन जोतना चाहता है तो उसे लकड़ी के लिये बढ़ई के पास, और लोहे के लिए लोहार के पास जाना पड़ेगा। इसी प्रकार कपड़ा बुनने वाले जुलाहों को अपने खाने के लिये किसानों पर और करघों की मरम्मत के लिये बढ़इयों या लोहारों पर आश्रित रहना पड़ा करता है। अफ्रीका के हब्शियों के पास हाथी दाँत, रेडइंडियन्स के पास (फर्स) रोयें और नावें के किनारे पर रहने वालों के पास मछलियाँ अधिक हुआ करती हैं इसलिये इन चीजों के लिए हमें उन्हीं का भरोसा करना पड़ा करता है। उन लोगों को भी भाले, बर्छी, तलवार, बन्दूक, नाज और कपड़ों के लिए हम लोगों के ऊपर निर्भर रहना पड़ा करता है। यही बात देशों के बीच में भी पाई जाती है। यदि इंगलैंड से हमको लोहे की चीजें और कपड़े मिला करते हैं तो इंगलैंड वाले भी भारतवासियों से नाज, कपास, जूट और चाय लिया करते हैं। इस प्रकार मनुष्य मनुष्य, जाति जाति, और देश देश के बीच में चीजों का लेन-देन हमेशा ही चला करता है। जो चीज हमारे पास अधिक पाई जाती है उसे हम उन आदमियों को दे दिया करते हैं जिनके पास वह चीजें नहीं हुआ करतीं और

जिसकी उन्हें जरूरत हुआ करती है। इसी प्रकार वे लोग हमारी चीजों के बदले में हमें वे चीजें दिया करते हैं जो हमारे पास नहीं हुआ करतीं और जिनकी हमें जरूरत हुआ करती है। चीजों के इस लेन-देन, अदल-बदल या क्रय-विक्रय को ही व्यापार कहा जाता है।

संसार का व्यापार दो बातों पर निर्भर रहा करता है (१) जीवन-निर्वाह की सामग्रियों का विषम वितरण (२) माल को लाने और ले जाने की सुविधायें।

जीवन-निर्वाह की सामग्रियाँ—यह तो हम पहिले ही बता चुके हैं कि जो समाज जितना ही अधिक उन्नतशील पाया जायगा उसमें जीवन-निर्वाह की सामग्रियाँ भी उतनी ही भिन्न और अधिक पाई जायँगी। जहाँ इस्कीमो या पिगमी लोगों को केवल खाने और कपड़ों से ही काम रहा करता है, आजकल की उच्च समाज में मोटर, ग्रामोफोन, बिजली की रोशनी और पंखे, सिनेमा, थियेटर और न जाने कितनी ही छोटी मोटी चीजों की और भी जरूरत पड़ा करती हैं। इस प्रकार जो मनुष्य जितनी ही ऊँची समाज का सदस्य होगा उसकी आवश्यकतायें भी उतनी ही अधिक होती जायेंगी। इसके विरुद्ध जिसका जीवन जितना ही साधारण होगा उसकी आवश्यकतायें भी उतनी ही साधारण और कम हुआ करेंगी। इनका प्रभाव प्रत्येक मनुष्य, जाति या देश के लेन-देन या व्यापार पर भी अवश्य पाया जायगा। समोयद और इस्कीमो लोग चकमक पत्थरों के बदले में मछली या रेन्डीयरों की खाल ही दिया करते हैं। कान्गो के पिगमी लोग अपने शिकार की चीजों को जंगलों के किनारे पर रहने वाली जातियों के नाज और फलों के साथ बदल लिया

करते हैं। यही नहीं, इन लोगों की भिन्न भिन्न जातियाँ अपने हथियारों, बर्तनों कपड़ों और आभूषणों का भी लेनदेन किया करती हैं। जैसे जैसे आमद-रफ्त की सुविधायें बढ़ती जाती हैं, इन जातियों का व्यापार भी बढ़ता जाता है। आजकल टन्ड्रा के रहने वाले टैगा निवासियों के साथ और रेडइंडियन्स 'हडसन बे' कम्पनी के साथ क्रय-विक्रय किया करते हैं। अपने रोओं, और दूसरी जंगली पैदावारों के बदले में बन्दूक और तमंचे आदि हथियार, तम्बाकू, नाज, और दूसरी खाने पीने की चीजें तथा दियासलाई, मशीन और अन्य सुख सामग्रियाँ ले जाया करते हैं।

एशियाई घास के मैदानों में रहने वाले किरघी चरवाहे पूर्व की ओर चीन और पश्चिम की ओर रूस के साथ व्यापार किया करते हैं। ये लोग अपने दूध, घी गोश्त, ऊन और चमड़े के बदले में चावल, चाय, अफीम, आटा, कपड़े और अस्त्र-शस्त्र लिया करते हैं। पहिले इस व्यापार का अधिकांश भाग ऊँटों के द्वारा किया जाता था किन्तु अब आजकल रेलों के सामने इनका प्रयोग वहीं पाया जाता है जहाँ रेलों का प्रसार नहीं किया जा सकता।

अफ्रीका के सहारा रेगिस्तान में यद्यपि खजूरों के सिवा और कोई भी चीज अधिक संख्या में नहीं पाई जाती, तब भी वहाँ के बद्दू उँटहारे हाथी दाँत, शुतुर्मुर्ग के पंख, गोंद, मसाला, सोना, नील, कपास, शहत, और नारियल के तेल आदि सूदान की पैदावार में अच्छा व्यापार किया करते हैं। किसी समय में गुलामों का व्यापार भी मध्य अफ्रीका का मुख्य व्यापार माना जाता था। अबीजी ऐसे स्थान इन सब पैदावारों के क्रय-विक्रय के लिये अच्छे केन्द्र माने जाते थे। यही नहीं, आजकल छोटे-मोटे

गाँवों में भी बाजार लगा करती है जहाँ हब्शी लोग दूर दूर से आकर क्रय-विक्रय किया करते हैं।

संसार के सभी जंगल शहतीर, साखू, सागौन, आबनूस, चीड़ और महोगनी आदि भिन्न भिन्न प्रकार की लकड़ियों और दूसरी जंगली पैदावारों में तिजारत किया करते हैं। साइबीरिया के जंगलों में 'फर' खूब पाये जाते हैं। कैनाडा के जंगलों से फरों के अतिरिक्त साखू की लकड़ी, और मछलियाँ भी मिला करती हैं। दक्षिणी अमेरिका के जंगलों में रहने वाले लकड़ियों के अतिरिक्त रबड़, गोंद; चिरायता, काली किशमिश, और दूसरी चीजें इकठ्ठा किया करते हैं। इन जंगलों में व्यापार नदियों के द्वारा ही हुआ करता है। व्यापारी लोग समय समय पर जाकर इन लोगों के द्वारा इकठ्ठा की हुई चीजों को ले आया करते हैं। ये लोग उपरोक्त चीजों के बदले में कुल्हाड़ियाँ, छूरियाँ, चाकू, वंशी, नमक, शीशा और दूसरी चीजें लिया करते हैं।

शिल्प-प्रधान देशों में चूंकि सामाजिक दशा बहुत ही विस्तीर्ण और संमिश्रित पाई जाती है इसलिये इन लोगों के यहाँ क्रय-विक्रय के लिये सैकड़ों प्रकार की चीजें पाई जाती हैं। उनको अपने कारखानों के लिये कच्चा माल, लोगों के भरण-पोषण के लिए खाद्य पदार्थ और नाना प्रकार की सुख-सामग्रियाँ मँगानी पड़ा करती हैं। इस प्रकार समुन्नत देशों का व्यापार तीन विभागों में बाँटा जा सकता है। (१) कच्चे माल का व्यापार (२) खाद्य पदार्थों का व्यापार (३) सुखोपभोग की सामग्रियों का व्यापार।

कच्चे माल का व्यापार— प्रत्येक देश के कच्चे माल का व्यापार

उसकी कारीगरी के साथ बढ़ा करता है। जब किसी देश में कोई चीज विशेष रूप से बनाई जाने लग जाती है और उसके लिए उस देश में पर्याप्त कच्चा माल नहीं प्राप्त किया जा सकता तो उसे विवश होकर दूसरे देशों से मँगाना पड़ा करता है। इस प्रकार का कचा माल प्रायः उन्हीं देशों से आया करता है जिनमें या तो उस माल की चीजें बनाने के लिए यथेष्ट सुविधायें ही नहीं हुआ करतीं, या जिनमें वह माल वहाँ की जरूरतों से कहीं अधिक पाया जा सकता है। आज से तीन हजार वर्ष पहिले भी यूनान, स्पेन और ब्रिटेन से कई प्रकार की धातुयें मँगाया करता था। स्पेन की ऊन रोम भेजी जाती थी। जैसे जैसे नये देशों का अनुसन्धान बढ़ा और आमद रफ्त की नई सुविधाओं का आविष्कार हुआ, व्यापार में भी उन्नति होती गई। संसार के भिन्न भिन्न देशों से भिन्न भिन्न प्रकार का कच्चा माल मिलने लग गया। आजकल मैन्चेस्टर के सूती कारखानों के लिये कपास, कैनाडा, मिश्र, भारतवर्ष और संयुक्त राज्यों से आया करती है। इसी प्रकार डन्डी के जूट वाले कारखानों के लिये जूट बंगाल से जाया करता है। जर्मनी और इङ्गलैण्ड के लोहे के कारखानों के लिये लोहा नार्वे, स्वीडन, स्पेन और वेल्जियम से मँगाया जाता है। इसी प्रकार जापान को रेशम चीन से और कपास भारतवर्ष तथा अमेरिका से मिला करती है। दक्षिणी अफ्रीका आस्ट्रेलिया और अर्जन्टाइन ऊन बाहर भेजा करते हैं। इस प्रकार आज कल संसार का प्रायः प्रत्येक देश किसी न किसी प्रकार का कच्चा माल बाहर अवश्य भेजा करता है।

खाद्य-पदार्थों का व्यापार—जैसे जैसे कोई देश कारीगरी में अधिक उन्नति करने लग जाता है वैसे ही वैसे उसकी जनसंख्या भी बढ़ने

लग जाती है। इस प्रकार जब किसी देश की जन संख्या इतनी अधिक बढ़ जाती है कि वहाँ के खेतों में उसके खाने भर को पर्याप्त नाज नहीं पैदा किया जा सकता तो उसे अपनी जन-संख्या के भरण-पोषण के लिये खाद्य-पदार्थ दूसरे देशों से मँगाने पड़ा करते हैं। प्राचीन काल में जब रोम का राज्य अपनी उन्नति के शिखर पर था तो उसे अपने खाने पीने के लिये प्रायः दूसरे देशों पर ही निर्भर रहना पड़ा करता था। पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में यूरोपीय लोगों ने भारतवर्ष को खोज निकालने में जो अटूट परिश्रम किया था उसका मुख्य कारण यह ही था कि उन्हें भारतवर्ष के नाज और मसालों की बड़ी सख्त जरूरत थी। उस समय पुरानी दुनिया में भारतवर्ष ही संसार का कोठार माना जाता था। वर्तमान समय में भी संसार के बहुत से देश—प्रायः यूरोपीय देश—अपनी बढ़ती हुई जन-संख्या के लिये काफी खाद्य-पदार्थ नहीं पैदा कर सकते। इंगलैंड, वेल्जियम और जापान इसके खास उदाहरण हैं चूँकि ये देश विस्तार में तो छोटे, किन्तु शिल्प प्रधान देश हैं इस लिये थोड़े से स्थान में इतनी अधिक जन-संख्या पाई जाती है कि ये देश उसके लिये पर्याप्त भोजन नहीं पैदा कर सकते। इसी लिये लाखों मन नाज दूसरे देशों से मँगाया जाया करता है। गेहूँ कैनाडा, अर्जन्टाइन; दक्षिणी रूस, पंजाब, आस्ट्रेलिया और मन्चूरिया से लिया जाता है। चावल भारतवर्ष, ब्रह्मा, मिश्र और चीन आदि देशों से खरीदा जाता है। गोश्त, मक्खन और दूध आदि अमेरिका, डेनमार्क, आस्ट्रेलिया और अर्जन्टाइन आदि देशों से लिये जाते हैं।

सुख-सामग्रियों का व्यापार—समुन्नत समाज में सुख-सामग्रियों

का व्यापार बहुत बढ़ा चढ़ा पाया जाता है। सुख की इच्छा होना मनुष्य में प्राकृतिक है। इसी कारण प्रत्येक मनुष्य और प्रत्येक समाज अपने जीवन को यथाशक्ति सुखमय बनाने का प्रयत्न किया करता है। वह अपने परिश्रम में कहाँ तक सफलीभूत होगा यह उसकी शक्ति और उसके चारों ओर की भौगोलिक परिस्थितियों पर ही निर्भर रहा करता है। संसार की असभ्य से असभ्य जातियों में भी किसी न किसी प्रकार की सुख सामग्रियाँ जरूर पाई जाती हैं। वास्तव में खेल-कूद, नाच-रंग, और शरीर की सजावट आदि सब जीवन के आनन्द ही माने जा सकते हैं, क्योंकि खाने और कपड़े के सिवा और कोई भी ऐसी आवश्यकता नहीं है जिसके बगैर जीवन निर्वाह हो ही न सके। इस प्रकार प्रत्येक जाति में किसी न किसी प्रकार का आनन्द जरूर पाया जा सकता है। किन्तु उसका रूप भिन्न भिन्न जातियों में भिन्न भिन्न प्रकार का पाया जायगा। टन्ड्रा, टैगा और सहारा के रहने वाले बहुत कुछ चाहते हुये भी पेरिस लन्दन के सुखोपभोगों का आनन्द नहीं लूट सकते। क्योंकि प्रत्येक मनुष्य और स्थान की शक्ति भी तो नियमित ही पाई जाती है। इन स्थानों के रहने वाले अपने चारों ओर की भौगोलिक परिस्थितियों से जीवन निर्वाह की साधारण आवश्यकतायें तो जरूर किसी न किसी प्रकार पूरी कर सकते हैं किन्तु यदि वे चाहें कि वे लोग वहाँ चाय, तम्बाकू या शराब पैदा कर लें तो यह एक प्रकार से असम्भव ही है। इनके लिये उन्हें दूसरे स्थानों पर ही निर्भर रहना पड़ेगा जिसके लिये व्यापार ही एक मात्र साधन है।

आज कल प्रायः सभी जातियाँ—क्या सभ्य और क्या असभ्य—उन सुख-सामग्रियों की इच्छा रक्खा करती हैं जो कि उनके चारों ओर नहीं

पाई जा सकती। असभ्य जातियों में लोहे के बाद शराब का नम्बर पाया जाता है जिसके लिये ये लोग बड़ी खुशी के साथ व्यापार करने लग जाया करते हैं। शराब के बाद तम्बाकू का नम्बर आया करता है। वास्तव में दक्षिणी भारत के जंगली लोगों से एक प्याली शराब या एक छटाँक तम्बाकू के लिये दिन भर काम लिया जा सकता है । वर्तमान समय में चाय और कहवे का प्रचार भी बढ़ता जाता है। स्टेप के रहने वाले तो इसके बहुत ही इच्छुक हुआ करते हैं। यही नहीं, इन जंगली जातियों में शरीर की सजावट के लिये घुंघुचियों, कौड़ियों, रंगों, डैनों और कई प्रकार की अन्य रंग विरंगी गुरियों की भी बड़ी माँग रहा करती है।

सभ्य जातियों में भी इस प्रकार का व्यापार कोई नई चीज नहीं है । आज से हजारों वर्ष पहिले यूरोपीय लोग भारतीय मलमल और मसालों के लिये व्यापार किया करते थे। यह व्यापार पहिले ऊँटों के द्वारा स्थल की ओर से किया जाता था। किन्तुपन्द्रहवीं शताब्दी में जब मुसलमानों और ईसाइयों में लड़ाई छिड़ गई तो यूरोपीय व्यापारियों को भारतवर्ष आने के लिये अफ्रीका के दक्षिण से होकर समुद्री रास्ता निकालना पड़ा । इसी प्रकार यूरोपीय देशों की सुवर्ण-तृष्णा ने नई दुनिया और संसार के अन्य नवीन स्थानों का अनुसन्धान करवाया। आज कल कितने ही देश मोटर, बिजली, सिनेमा और थियेटर आदि नवीन सुखोपभोगों के पीछे दिवालिये होते जा रहे हैं। भारतवर्ष को ही लीजिये, जहाँ दो तिहाई आदमियों को केवल एक ही वक्त रुखा-सूखा भोजन मिला करता है; किन्तु इतनी दुर्दशा होते हुये भी प्रति वर्ष ५.४ करोड़ की मोटरें और लगभग ३४ करोड़ के सिगार और सिगरेट आया करते हैं। देश के दीन किसान

भूखों ही क्यों न मरें, किन्तु रईसों को तो स्विस-रिस्टवाच, और इंगलिश कालर्स के बगैर चैन ही नहीं पड़ा करता। इसी प्रकार और भी कितने ही देश हैं जो स्वयं तो किसी प्रकार की कारीगरी करते नहीं परन्तु दूसरे देशों के माल को खपाया करते हैं या उनके लिये आढ़तियों का काम किया करते हैं। इन्हीं देशों की उपलब्धि वर्तमान संघर्ष का कारण मानी जा सकती है।

व्यापार मार्ग - किसी देश के व्यापार की प्रगति वहाँ के यथेष्ट व्यापारिक मार्गों पर ही निर्भर रहा करती है। यदि दो जातियाँ किसी अच्छी नदी के किनारे पर पाई जायँगी तो उनमें व्यापार भी खूब किया जा सकता है; किन्तु यदि उनके बीच में कोई पहाड़ पाया जायगा तो उनमें व्यापार भी बहुत ही कम हुआ करेगा। उत्तरी अमेरिका की सेंट लारेंस नदी और भारतवर्ष तथा चीन के बीच के हिमालय पहाड़ क्रमशः इनके अच्छे उदाहरण हैं। जहाँ सेंट लारेंस के द्वारा उत्तर और दक्षिण के लोग खूब व्यापार किया करते हैं, हिमालय पहाड़ के कारण चीन और भारतवर्ष एक दूसरे से बिल्कुल अलग पाये जाते हैं।

व्यापार का यह नयनानुनयन स्थल या जल के द्वारा हुआ करता है। स्थल पर इसके लिये सड़कें या रेलवे लाइनें प्रयोग में लाई जाती हैं। सड़कों पर माल लाने और ले जाने के लिये कुली, घोड़े, बैल और भैंसे आदि जानवर, तथा गाड़ियाँ काम में लाई जाती हैं। रेल गाड़ियों को खींचने के लिये भाप से चलने वाले इंजन प्रयोग किये जाते हैं।

सड़कों पर माल लाने और लेजाने के लिये आदमियों का प्रयोग वहीं किया जाता है जहाँ बोझा ढोने वाले जानवर या तो पाये ही नहीं जाते या काम ही नहीं कर सकते। जंगली जातियों में जिनके पास किसी

प्रकार के जानवर नहीं पाये जाते, औरतें ही कुलियों का काम किया करती हैं। अफ्रीका के कुछ भागों में सीसी या टीसी मक्खियों के कारण जानवर पाले ही नहीं जा सकते इसलिये वहाँ पर कुली लोग ही बोझा ढोया करते हैं। हमारे पाठकों में से जिन्होंने शिमला या मंसूरी की सैर की होगी वे जानते होंगे कि वहाँ पहाड़ी लोग ही माल ढोया करते हैं। क्योंकि ऐसे पहाड़ों पर जानवर माल लेकर नहीं आ जा सकते। यही हालत दक्षिणी अमेरिका की भी पाई जाती है क्योंकि वहाँ भी बोझ ढोने वाले जानवर बहुत कम पाये जाते हैं। कान्गो और अमेजन के जंगलों में भी जानवर काम नहीं दे सकते इसलिये वहाँ भी कुलियों से काम लिया जाता है। प्राचीन समय में अफ्रीका के जो कुली जंगलों से जंगली पैदावार व्यापारिक केन्द्रों को लाया करते थे वे भी उसी माल के साथ बेच दिये जाते थे। इसी कारण अफ्रीका, यूरोप, और अमेरिका में बहुत दिनों तक गुलामों का क्रय-विक्रय पाया जाता था।

आदमियों के बाद दूसरा नम्बर बोझा ढोने वाले जानवरों का आया करता है। यह तो प्रायः सभी लोग जानते और मानते हैं कि मनुष्यों की अपेक्षा जानवर कहीं अधिक तेज और सस्ते पड़ा करते हैं। संसार के किन भागों में किस प्रकार के जानवर प्रयोग में लाये जा सकते हैं, यह तो उनकी जलवायु और प्राकृतिक दशा पर ही निर्भर रहा करता है। यूरेशिया और अमेरिका के सबसे उत्तरी भागों में रहनेवाली घुमक्कड़ जातियाँ कुत्तों से ही काम लिया करती हैं। उनके कुछ दक्षिण में रहने वाले इस्कीमों और समोयद लोग रेन्डीयरों का प्रयोग किया करते हैं। शीतोष्ण जलवायु के सभी प्रदेशों में घोड़ा विशेष उपयोगी माना जाता है।

कुछ गरम और सूखे प्रदेशों में घोड़ों का स्थान खच्चर और गधे ले लिया करते हैं। सहारा ऐसे रेगिस्तानों में केवल ऊँट ही काम दिया करता है क्योंकि यह कई दिन तक बिना खाना और पानी के बराबर चला जा सकता है। इसमें सूर्य की गर्मी के सहन करने की भी अधिक शक्ति पाई जाती है और बालू पर चलने के लिये इसके पैर विशेष रूप से उपयुक्त हुआ करते हैं। अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, एशिया, यूरोप और अमेरिका सभी महाद्वीपों के बहुत से भागों में बैल ही लादने और गाड़ी खींचने के काम में लाये जाते हैं। पहाड़ी प्रदेशों में केवल दो ही जानवर बोझा ढोने का काम भली प्रकार दिया करते हैं—दक्षिणी अमेरिका के ऐन्डीज प्रदेशों में लामा (एक प्रकार का ऊँट) और तिब्बत के पठारों में याक (एक प्रकार का बैल)।

इस प्रकार अभी बहुत थोड़े दिन पहिले तक जानवर ही व्यापार के मुख्य साधन माने जाते थे। ऊँटों के बड़े बड़े काफ़िले अफगानिस्तान, फारस और मध्य एशिया में चला करते थे जिनके द्वारा इधर का माल भूमध्य सागर के किनारे वाले बन्दरगाहों तक पहुँचाया जाया करता था। आजकल जहाँ जहाँ रेलों का प्रसार और प्रचार बढ़ता जा रहा है वहाँ तो अब ये साधन बहुत कम प्रयोग में लाये जाते हैं; किन्तु जिन भागों में अभी रेलों का प्रचार नहीं किया जा सकता वहाँ अब तक जानवरों के द्वारा ही व्यापार हुआ करता है।

रेलगाड़ियाँ—रेलगाड़ियों का प्रयोग सन् १८१० ई० के लगभग प्रारंभ हुआ था। आजकल संसार के प्रायः सभी समुन्नत देश अपने माल के लाने और ले जाने में रेलगाड़ियों का ही प्रयोग किया करते हैं क्योंकि यह

साधन उपरोक्त दोनों साधनों की अपेक्षा अधिक सस्ता, तेज और सुरक्षित हुआ करता है। नार्वे, स्विटजरलैंड और तिब्बत आदि पहाड़ी प्रदेशों में रेलों का प्रचार उतना नहीं पाया जाता जितना कि इंगलैंड, फ्राँस, जर्मनी



राकी पहाड़ों को पार करने वाली रेल

या भारतवर्ष में। संसार के समतल देशों में तो रेलों का प्रसार एक सिरे से दूसरे सिरे तक पाया जाता है जैसे उत्तरी अमेरिका में कैनेडियन, पैसिफिक

रेलवे, जोकि अटलांटिक महासागर के किनारे से प्रशान्त महासागर के किनारे तक फैली हुई हैं। इसी प्रकार ट्रान्स साइबेरियन रेलवे यूरेशिया में अटलाँटिक महासागर के किनारे से प्रशान्त महासागर के किनारे तक चली गई है। दक्षिणी अमेरिका में ट्रान्स ऐन्डियन रेलवे १५०० फीट की ऊँचाई तक लेजाई गई है और ब्यूनस एरीज़ को बालपैरैजो से मिला देती है। मध्य यूरोप में भी आल्प्स पहाड़ों को खोद खोद कर सुरंगें बनाई गई हैं जिससे उत्तरी और दक्षिणी तथा पूर्वी और पश्चिमी यूरोप का व्यापार पहिले से कहीं अधिक ज्यादा पाया जाता है यही नहीं, अफ्रीका में भी 'केट-टु कैरो' लाइन के द्वारा केपटाउन (सबसे दक्षिणी बन्दरगाह) कैरो और अलेक्जैन्ड्रिया (सबसे उत्तरी बन्दरगाह) बन्दरगाहों से मिला दिया गया है। इसके द्वारा अब मध्य अफ्रीका का माल भी आसानी के साथ यूरोपीय देशों को भेजा जा सकता है।

जल-मार्ग—जलमार्गों का व्यापार नदियों, नहरों, झीलों, और समुद्रों के द्वारा हुआ करता है, जिनमें नाव या जहाज जानवरों और इंजनों का काम दिया करते हैं। यह साधन सबसे सस्ता और सुगम पाया जाता है क्योंकि इसमें सड़कें नहीं बनानी पड़ा करतीं और भारी से भारी माल भी आसानी के साथ इधर-उधर भेजा जा सकता है। इसका सबसे बड़ा लाभ तो उन चीजों के व्यापार में पाया जाता है जो कि थोड़े ही दिनों में सड़ या गल जाया करती हैं जैसे मछली और फल आदि।

नदियाँ, किसी देश के बाहरी भाग को उसके भीतरी भाग से जोड़ने के लिये प्राकृतिक सड़कें हुआ करती हैं। नदियों के किनारे रहने वाली जातियाँ उसके द्वारा आ जा कर काफ़ी व्यापार कर लिया करती हैं। अफ्रीका के मध्य

भाग में कान्गो, जेम्बसी, नील और नाइजर, भारतवर्ष में गंगा, जमुना और सिंध, चीन में सीकियाँग और याँग्टिसीक्यांग, अमेरिका में अमेजन, मिसीसिपी और लारेंस, तथा यूरोप में राइन, रोम, और वाल्गा सभी बहुत ही बड़े व्यापारिक मार्ग माने जाते हैं। इसके कारण इनके किनारों और मुहानों पर बड़े बड़े नगर तैयार हो जाया करते हैं—जैसे गङ्गा के किनारे प्रयाग, बनारस, कानपुर और कलकत्ता आदि। सीक्यांग के किनारे कैन्टन और सेंट लारेंस के किनारे ओटावा, मान्ट्रीयल और टोरैन्टो इत्यादि इत्यादि। व्यापार के विचार से सेंट लारेंस ही द्वारा उत्तर के फर और लकड़ी, पश्चिम का गेहूँ, और दक्षिण का भिन्न भिन्न माल आया जाया करता है।

किसी नदी की व्यापारिक उपयोगिता कई बातों पर निर्भर रहा करती है। सब से पहिली बात तो यह है कि उसमें झरने और जलप्रपात न होने चाहिये। मध्य अफ्रीका से पहाड़ी पठार होने के कारण नील, कान्गो और जेम्बसी आदि नदियों का बहुत सा भाग तिजारत के विचार से बिल्कुल बेकार पाया जाता है क्योंकि भयानक जल-प्रपातों के कारण उन भागों में नावें नहीं चलाई जा सकतीं। अफ्रीका के अनुसन्धान में देरी का एक कारण यह भी था।

दूसरी बात यह है कि उस नदी में साल भर तक काफी पानी रहना चाहिये और उसको बर्फ से खुली रहना चाहिये। साइबीरिया की सभी बड़ी बड़ी नदियाँ साल के ज्यादातर भाग में बर्फ से ढकी रहा करती हैं और वे एक ऐसे समुद्र में गिरती हैं जो हमेशा ही जमा रहा करता है। इसीलिये साइबीरिया में न तो अच्छे अच्छे बन्दरगाह ही

पाये जाते हैं और न वहाँ तिजारत की ही उन्नति की जा सकती है। यही हाल उत्तरी अमेरिका की सेंट लारेंस का भी है। जाड़े के दिनों में इसका मुहाना बर्फ से ढक जाया करता है इसलिये उन दिनों में इसका सारा व्यापार हैलीफैक्स और सेंट जान नामक बन्दरगाहों को चला जाया करता है।

तीसरी बात यह है कि इन नदियों के मुहानों पर बालू के डेल्टे या धुस न होने चाहियें। अगर कलकत्ते में गङ्गा की लाई हुई मिट्टी को साफ करने के लिये ड्रेजर्स न चलते रहें तो थोड़े ही दिनों में नदी भठ जाय और कलकत्ते का बन्दरगाह नष्ट हो जाय। यही हालत लन्दन, बोर्डो और अलेक्जैन्ड्रिया की भी पाई जाती है। रोन जो कि देखने में ऐसी तिजारती नदी मालूम होती है, अपने मुहाने के धुस के कारण नीचे की ओर बिल्कुल बेकार पाई जाती है। मार्टिज़ और सेंट लुइस दोनों बन्दरगाह मिट्टी के जम जाने के कारण बिल्कुल नष्ट हो गये हैं। मार्शलीज, जो कि इस भाग का सबसे प्रसिद्ध बन्दरगाह माना जाता है, इस नदी के मुहाने से कई मील पूर्व पाया जाता है। यही हालत मिसीसिपी के बन्दरगाहों की भी हुआ करती, यदि यहाँ के इंजीनियरों ने उसे गहरी बनाये रखने का प्रयत्न न किया होता। वेनिस, जो कि किसी समय में संसार का सब से बड़ा बन्दरगाह माना जाता था, आज बिल्कुल बेकार हो गया है।

व्यापार के लिये नदियों का प्रयोग दो प्रकार से हुआ करता है। जंगलों में उनकी तेज धार लकड़ियों के बहाने के काम में आया करती है। राइन, याँगटिसी क्यांग, अमेज़न, और सेंट लारेंस तथा ब्रह्मा की

इरावदी नदी में शहतीर और साखू के सैकड़ों कुन्दे प्रतिवर्ष बहा बहा कर बन्दरगाहों या कारीगरी के केन्द्रों तक लाये जाते हैं। नावें में तो लकड़ी की अपेक्षा तारकोल के पीपे भी बहाये जाया करते हैं। दूसरा तरीका डोंगियों, नावों और जहाजों के चलाने का है। टेम्स, राइन यल्ब, मिसीसिपी, सेंट लारेंस और गंगा आदि बड़ी बड़ी नदियों में हजारों छोटी मोटी नावें और सैकड़ों धुआँकश जहाज इधर-उधर चला करते हैं जिनके द्वारा व्यापारिक माल का नयनानुनयन हुआ करता है।

झीलें—संसार की बड़ी बड़ी झीलें भी यदि तिजारती नदियों के साथ जोड़ी जा सकीं तो व्यापार में बड़ी मदद किया करती हैं। उत्तरी अमेरिका का बृहत् झील समूह इसका बहुत अच्छा उदाहरण है। सेंट लारेंस नदी के साथ नहरों द्वारा जुड़ी होने के कारण ये झीलें आज कल व्यापारिक केन्द्र बनी हुई हैं और इनके किनारों पर विनीपिग, शिकागो, बफैलो और ओन्टारिओ आदि बड़े बड़े तिजारती नगर पाये जाते हैं।

नहरें और कैनाल—बड़ी बड़ी नहरें जो कि कैनाल्स कही जाती हैं कृत्रिम नदियाँ ही हुआ करती हैं। सबसे साधारण नहर तो वह हुआ करती है जो कि किसी नदी को गहरी कर देने से बन जाया करती है जैसे स्काटलैंड में क्लाइड नदी की नहर जिसके किनारे पर ग्लासगो ऐसा प्रसिद्ध बन्दरगाह तैयार हो गया है। इसकी तैयारी में लगभग एक करोड़ पौंड खर्च हुये थे। इसी प्रकार सेंट लारेंस को मान्ट्रीयल तक गहरी करके कैनाल बना ली गई है। भारतवर्ष में कलकत्ते के लिये भी हुगली नदी खोद कर गहरी कर ली गई है।

नहरें बनाने का दूसरा कारण हुआ करता है, किसी भीतरी नगर का समुद्र के साथ सीधा सम्बन्ध स्थापित करना। इंगलैंड में मैन्चेस्टर शिप-कैनाल इसी विचार से बनाई गई है जिससे मैन्चेस्टर के कारखानों का माल इधर-उधर से न भेजा जाकर सीधा ही भेजा जा सके।

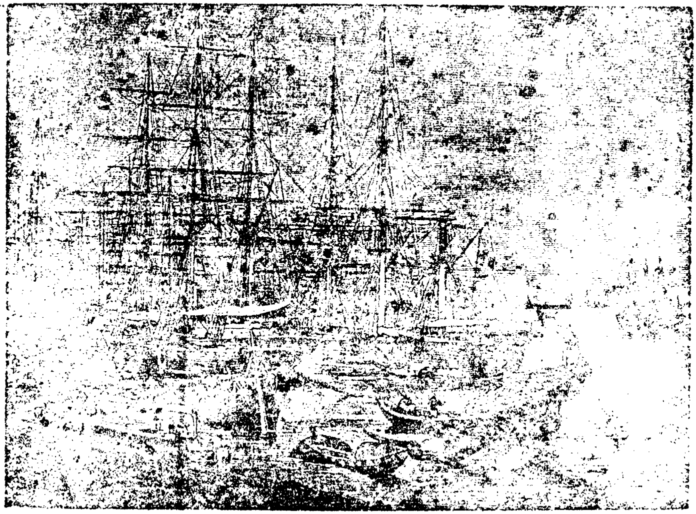
इसका तीसरा कारण हुआ करता है, लम्बे और खतरनाक समुद्री मार्गों और सफरों को छोटा करना। संसार में इस प्रकार के उदाहरण बहुत से पाये जाते हैं। स्काटलैंड में कैलीडोनियन कैनाल है जिससे जहाजों को स्काटलैंड के उत्तर से न जाना पड़े। इसी प्रकार फोर्थ और क्लाइड नदियों के बीच में भी एक नहर खोदने का विचार किया जा रहा है। जर्मनी के उत्तर में कील कैनाल है जो कि कील बे और यल्ब नदी के मुहाने को मिलाती है। इसके कारण अब जहाजों को डेनमार्क का चक्कर नहीं लगाना पड़ा करता। ग्रीस के दक्षिण में कोरिन्थ नामक स्थल डमरू-मध्य को काट कर अब एक नहर बना दी गई है जो कि एड्रियाटिक और एजेन सागरों को मिलाया करती है। इसके कारण अब जहाजों को मोरिया प्रायद्वीप का चक्कर नहीं करना पड़ा करता। इस प्रकार की सम्भवतः सबसे बड़ी नहर 'स्वेज-कैनाल' है जो कि भूमध्य सागर और लाल सागर को मिलाती है। इसके कारण पूर्वीय देशों को आने जाने वाले यूरोपीय जहाजों को अफ्रीका के दक्षिण होकर नहीं जाना पड़ा करता। इस प्रकार पहले की यात्रा अब आधी ही रह गई है। इसी के जोड़ की नई दुनिया में पनामा कैनाल बनवाई गई है जिसके कारण जहाजों का केप हार्न का चक्कर लगाना छूट गया है। इस प्रकार इसके कारण भी लगभग चार हजार मीलों की यात्रा बच जाती है।

इनके अतिरिक्त बहुत से देशों के अन्दर भी नदियों के जल-प्रपातों को बचाने के लिये नहरें खोदी जाती हैं। जैसे उत्तरी अमेरिका की इरे और ओन्टैरियो झीलों के बीच में वैलैंड कैनाल, नयाग्रा जल-प्रपातों को बचा देती है। अफ्रीका की बहुत सी नदियों में भी इस प्रकार की नहरें खोदने का विचार किया जा रहा है। यही नहीं, बहुत से देशों के अन्दर भिन्न भिन्न नदियों को भी नहरों द्वारा मिला दिया जाता है जिससे आमदरफ्त की सुविधायें और भी अधिक बढ़ जायँ। इंगलैंड, फ्रांस, जर्मनी और चीन आदि देशों में इस प्रकार की नहरें बहुत पाई जाती हैं। चीन की ग्रैन्ड कैनाल इसका सबसे अच्छा उदाहरण है। यह उत्तरी और दक्षिणी चीन के बीच में बहुत ही अच्छा व्यापारिक मार्ग है जिसकी लम्बाई ६०० मील है।

समुद्र—व्यापारिक मार्गों का तीसरा जल-साधन समुद्र है। भूमध्य सागर और इसके अन्दर के द्वीप प्राचीन काल से ही प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र रहे हैं। यही कारण था कि इसके किनारों पर रहने वाले फोनिशियन लोग आज से कई हजार वर्ष पहले भी अच्छे व्यापारी और अनुसन्धान कर्ता हुआ करते थे। पन्द्रहवीं शताब्दी के लगभग भूमध्य सागर का व्यापार ईसाइयों और मुसल्मानों की लड़ाइयों के कारण बहुत कम हो गया था किन्तु स्वेज नहर बन जाने के बाद अब यह फिर संसार का एक प्रसिद्ध व्यापारिक मार्ग बन गया है। जिसके कारण मार्शलीज, जेनोआ और ट्रीस्ट ऐसे बन्दरगाह दिन प्रति दिन उन्नति करते जा रहे हैं।

इसी प्रकार उत्तरी सागर और वाल्टिक सागर भी आज कल यूरोप

के उत्तरी देशों के मुख्य व्यापारिक मार्ग हैं। वाल्टिक सागर में एक बहुत बड़ी असुविधा यह है कि यह साल के कई महीनों में बर्फ से ढक जाया करता है।



बन्दरगाह में स्टीमर्स और जहाज़

पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्तिम काल तक सामुद्रिक व्यापार मुख्यतया किनारों के पास ही चलने वाले जहाजों के द्वारा किया जाता था। उसके बाद अमेरिका के अनुसन्धान ने सामुद्रिक व्यापार को बहुत अधिक बढ़ा दिया। भाप के द्वारा चलने वाले जहाजों के आविष्कार ने तो आज कल इस व्यापार को पहले से सैकड़ों गुना और भी अधिक बढ़ा दिया है। आज कल सैकड़ों बड़े बड़े धुआँकश जहाज हिन्द, अटलाँटिक और प्रशान्त महासागरों के भिन्न भिन्न भागों में आया जाया करते हैं

जिनके द्वारा हजारों प्रकार की छोटी-मोटी चीजों का क्रय-विक्रय हुआ करता है।

किन्तु किसी देश के सामुद्रिक व्यापार की उन्नति के लिये अच्छे-अच्छे बन्दरगाहों का होना बहुत ही आवश्यक है। विशेष कर ऐसे बन्दरगाह जो कि किसी बड़ी नदी के मुहाने पर हों, माल के आने और ले जाने के लिये बहुत ही अच्छे केन्द्र हुआ करते हैं। इन बन्दरगाहों की उन्नति और अवनति कई बातों पर निर्भर रहा करती है। किसी भी बन्दरगाह को एक प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र होने के लिये निम्नाङ्कित बातों की आवश्यकता हुआ करती है।

(१) वह बन्दरगाह ऐसा हो जहाँ कि काफी बड़े बड़े जहाज माल उतार और लाद सकें। भारतवर्ष में बम्बई और मद्रास की उन्नति में जो अन्तर पाया जाता है उसका मुख्य कारण यही है कि बम्बई में बड़े से बड़े जहाज भी 'डाक्स' पर अपना माल उतार और लाद सकते हैं। किन्तु मद्रास में उन्हें बहुत दूर समुद्र के अन्दर खड़ा रहना पड़ता है। इस लिये बड़े बड़े जहाज इस बन्दरगाह पर बहुत कम आया जाया करते हैं।

(२) उसके पीछे का प्रदेश उद्भिज, खनिज या कारीगरी की पैदावार में काफी धनी हो। और रेलों वा नदियों के द्वारा उस बन्दरगाह का सम्बन्ध भी उस प्रदेश के साथ हो। जैसे कैनाड़ा में मान्ट्रील के लिये झील-प्रदेश सयुक्त राज्यों में न्यू आरलीन्स के लिये मिसीसिपी का बेसिन, इंगलैंड में लिवरपूल के लिये लंकशायर और भारतवर्ष में कलकत्ता तथा कराँची के लिये गंगा और सिंध का मैदान। इसके साथ ही साथ एक बात और भी ध्यान देने योग्य है। धनी प्रदेशों की दूरी भी अपने

बन्दरगाहें पर बड़ा प्रभाव डाला करती है। क्योंकि उसकी दूरी के अनुसार ही वहाँ से आने-जाने वाला माल सस्ता या महँगा पड़ा करता है। कैनाडा का मान्ट्रील बन्दरगाह क्यूबेक की अपेक्षा अन्दर वाले प्रदेशों के अधिक नजदीक पाया जाता है इसलिये इसमें आने और जाने वाली दोनों प्रकार की तिजारत अधिक हुआ करती है।

(३) बर्फीले और स्थल-बद्ध समुद्रों के बन्दरगाह उतनी उन्नति नहीं कर सकते जितनी कि खुले समुद्रों के। व्लाडीवोस्टक और याकोहामा दोनों एक ही अक्षांश पर स्थित हैं; किन्तु व्लाडीवोस्टक साल के कई महीनों तक बर्फ से बन्द रहा करता है। इसके विरुद्ध याकोहामा में साल भर तक व्यापार किया जा सकता है। यही कारण है कि पहले की अपेक्षा दूसरा कहीं बड़ा और प्रसिद्ध बन्दरगाह माना जाता है। उत्तरी सागर के बन्दरगाह जैसे हल, डन्डी और हैम्बर्ग बाल्टिक सागर के बन्दरगाहें जैसे रीगा और पेट्रोग्रेड से कहीं अधिक व्यापार किया करते हैं। इसका कारण यही है कि पहला तो एक खुला हुआ समुद्र है और दूसरा तीन ओर स्थल से घिरा हुआ। स्वभावतः दूसरें की अपेक्षा पहिले बन्दरगाहें में जहाजों का आना-जाना अधिक पाया जायगा।

वायु या आकाश मार्ग—इधर कुछ दिनों से संसार के समुन्नत देश हवाई जहाजों के द्वारा भी व्यापार करने लग गये हैं; किन्तु अभी तक यह साधन अपनी यथेष्ट उन्नति तक नहीं पहुँच सका। आज कल तो इनके द्वारा केवल वे ही चीजें भेजी जाती हैं जो कि हल्की किन्तु मूल्यवान हों।

व्यापार-मार्ग और उनके प्रसिद्ध स्थान—यह तो एक साधारण सी बात है कि जहाँ दो या तीन व्यापारिक मार्ग मिलेंगे वहाँ एक व्यापारिक स्थान या केन्द्र तैयार हो जायगा। उसमें जनसंख्या भी अधिक पाई जायगी क्योंकि ऐसे स्थानों पर हजारों आदमी अपनी जीविका के लिये आकर टिक जाया करते हैं। रेलों और जहाजों के बनने के पहले ऐसे स्थान विशेषतया सड़कों के मिलान या नदियों के किनारे या उनके मुहानों पर ही पाये जाते थे। भारतवर्ष में बनारस, आगरा, कानपुर ढाका और मुरशिदाबाद आज से हजारों वर्ष पहिले भी अच्छे नगर और तिजारती केन्द्र थे। समुद्री किनारों पर सूरत और कालीकट अच्छे बन्दरगाह थे क्योंकि इन्हीं के द्वारा भारतीय लोग फारस की खाड़ी के बन्दरगाहों के साथ तिजारत किया करते थे। इसी प्रकार दक्षिणी यूरोप में वेनिस और जेनोआ यूरोपीय माल को एकत्रित करते और बाहरी माल को वितरण करने के लिये सब से प्रसिद्ध नगर माने जाते थे। बगदाद, समरकंद, इस्फहान और डैमास्कस सब काफिलों के बड़े बड़े मार्गों पर ही पाये जाते थे।

आज कल रेलों और जहाजों के कारण नये नये नगर प्रसिद्ध होते जा रहे हैं। भारतवर्ष में बम्बई ने सूरत का, यूरोप में मार्शलीज ने जेनोआ का और ट्रीस्ट ने वेनिस का स्थान ले लिया है। इसी प्रकार नये नये देशों की उन्नति के साथ याकोहामा, न्यूयार्क, मैनिल्ला और सिंगापुर आदि नये नये व्यापारिक केन्द्र भी बढ़ते जा रहे हैं।

चौदहवाँ अध्याय

संसार की जन-संख्या का वितरण

संसार की जन-संख्या का वितरण प्राकृतिक दशा, जलवायु और उद्यमों पर निर्भर रहा करता है। पिछले अध्यायों में हमने यह देख लिया है कि संसार के भिन्न भिन्न भागों में जन-संख्या का वितरण बहुत ही विषम पाया जाता है। जिन स्थानों में जीवन निर्वाह की जितनी ही अधिक सुविधायें पाई जाती हैं उनमें उतने ही अधिक मनुष्य भी रहा करते हैं। टन्ड्रा और सहारा रेगिस्तान जो कि जीवन निर्वाह के विचार से संसार के सब से अनुदार भाग कहे जा सकते हैं बहुत ही कम आबाद पाये जाते हैं। यही हालत मध्य अफ्रीका के जंगल, अमेजन बेसिन, टेरा-डेल फ्यूगो और आस्ट्रेलिया के रेगिस्तानी भागों की भी पाई जाती है। घास के मैदान इन उजाड़ खंडों की अपेक्षा अधिक उदार पाये जाते हैं। यहाँ के निवासियों को उनके गल्लों से खाने पीने को काफी सामान मिल जाया करता है, इसलिये यहाँ पर उपरोक्त स्थानों की अपेक्षा अधिक लोग रहा करते हैं। इस प्रकार खेती के मैदानों और शिल्प प्रधान देशों में जहाँ कि जीवन निर्वाह की सुविधायें सब से अधिक पाई जाती हैं, सब से अधिक लोग रहा करते हैं। भारतवर्ष के पूर्वी मैदान में एक वर्ग मील पीछे ४००—५०० आदमी पाये जाते हैं किन्तु

उत्तर-पश्चिम के पहाड़ी प्रदेशों में केवल १० या १५। थार रेगिस्तान में जो कि भारतवर्ष का सबसे उजाड़ भाग माना जा सकता है, एक वर्ग मील पीछे केवल १०—३० मनुष्य ही पाये जाते हैं।

इसी प्रकार चीन के पूर्वी मैदान और जर्मनी, इंगलैंड तथा बेल्जियम आदि व्यवसाय प्रधान देशों के कुछ भागों में ५००—१२०० मनुष्य तक प्रतिवर्ग मील पाये जाते हैं; किन्तु सहारा, अमेजन बेसिन, ग्रीनलैंड के कुछ भागों में १ या दो ही मनुष्य प्रतिवर्ग मील रहा करते हैं।

जंगली जातियों में जन-संख्या की घनिष्ठता—चूँकि जंगली जातियाँ चाहे वे कितनी ही छोटी क्यों न हों, अपने आसपास की भोजन सामग्री को बिना किसी प्रकार के उसकी वृद्धि किये हुये ही हमेशा समाप्त करने में लगी रहती हैं, इसलिये उनको इधर उधर घूमना पड़ता है। इस प्रकार उनके जीवन निर्वाह के लिये बहुत लम्बे चौड़े प्रदेशों की आवश्यकता पड़ा करती है। यदि ऐसा न हो तो वे भूखों मर जायँ। यही कारण है कि जंगली और शिकारी जातियों की आबादी बहुत ही बिडली हुआ करती है। टन्ड्रा, टैगा, मध्य अफ्रीका और अमेजन के जंगलों में कई वर्ग मील पीछे दो या चार ही मनुष्य पाये जाते हैं। इसी प्रकार सहारा की भी सैकड़ों वर्ग मीलों में कहीं कहीं एक भी आदमी नहीं पाया जा सकता।

चरवाहों से जन-संख्या की घनिष्ठता—शिकारियों की भाँति चरवाहों को भी अपने जानवरों के लिये बहुत लम्बे चौड़े प्रदेशों की आवश्यकता पड़ा करती है। क्योंकि उनके जानवर हमेशा ही अपने आस-पास की घास को समाप्त करते रहते हैं। इसलिये घास के मैदानों

में भी बहुत अधिक लोग नहीं पाये जा सकते ; क्योंकि अधिक जन-संख्या के माने हैं, अधिक जानवर और यथेष्ट से अधिक जानवरों का होना मानों उनको भूखों मारना ही है। हाँ, यह बात अवश्य है कि घास के मैदानों में रेगिस्तानों या जंगलों की अपेक्षा अधिक लोग रहा करते हैं। संसार के पहाड़ी प्रदेशों की भी वही हालत हुआ करती है जो चरागाहों की। क्योंकि ये प्रदेश भी चरागाहों के लिये ही अधिक उपयुक्त हुआ करते हैं। यूरोप में नार्वे, स्काटलैंड, स्पेन और स्विटजरलैंड, एशिया में तिब्बत और मध्य एशिया, उत्तरी और दक्षिणी अमेरिकाओं के पश्चिमी भाग, सभी इनके अच्छे उदाहरण हैं।

कृषि-प्रधान देशों में जन संख्या की घनिष्ठता—खेती के प्रारंभ होते ही किसी स्थान की जन संख्या भी बढ़ने लग जाया करती है ; क्योंकि यह उद्यम बहुत ही सरल और उपादेय हुआ करता है। इसके द्वारा थोड़ी सी ही मिहनत में सरलता पूर्वक जीवन निर्वाह किया जा सकता है। यदि एक किसान अपने खेत में दो पँसेरी नाज बोता है तो दो या चार महीने के बाद ही उसको उसका आठ या दस गुना नाज भी प्राप्त हो जाया करता है। केले के एक पेड़ से उसकी हजारों छीमियाँ तैयार की जा सकती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि खेती का उद्यम एक ऐसा उद्यम है कि थोड़े से स्थान में और थोड़े आदमियों के द्वारा ही बहुत से आदमियों का निर्वाह किया जा सकता है। यही कारण है कि कृषि-प्रधान देशों में जन-संख्या बहुत ही घनी और अधिक हुआ करती है। भारतवर्ष चीन और जापान के उपजाऊ प्रदेशों में साधारणतया १७८, २०० और २७५ मनुष्य प्रति-वर्ग मील पाये जाते

हैं। बंगाल और हाँगहो की तरेटी में तो कहीं कहीं प्रतिवर्ग मील ६०० से भी अधिक लोग पाये जा सकते हैं।

संसार के खेतीहर प्रदेश दो श्रेणियों में विभाजित किये जा सकते हैं। एक तो वे जो नितान्त खेती या काश्त के ही उपयुक्त हुआ करते हैं जैसे साइबीरिया, उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका के प्रेरीज और आस्ट्रेलिया के डाउन्स ; दूसरे वे जो कि काश्त और कारीगरी दोनों के उपयुक्त हुआ करते हैं जैसे यूरोप के अधिकाँश देश (इंगलैंड फ्राँस, बेल्जियम और जर्मनी आदि) और एशिया के दक्षिणी पूर्वी प्रदेश। चूँकि दूसरी श्रेणी के देशों की जन-संख्या पहिली श्रेणी के देशों की अपेक्षा कहीं अधिक हुआ करती है, क्योंकि ऐसे प्रदेशों में जीवन निर्वाह के लिये उद्यमों की विभिन्नता और अधिकता पहले की अपेक्षा कहीं अधिक पाई जाती है, इसलिये पहिली श्रेणी वाले अपनी पैदावार को दूसरी श्रेणी वालों की अपेक्षा कहीं अधिक बाहर भेजा करते हैं। यही कारण है कि साइबीरिया, आस्ट्रेलिया और अमेरिका के कुछ भागों से गेहूँ और दूसरी खेती की चाजें बहुत अधिक बाहर जाया करती हैं। जैसे जैसे किसी खेतिहर प्रदेश में कोई कारीगरी भी बढ़ने लग जाती है वैसे ही वैसे उस भाग की जन-संख्या भी अधिक सघन होती जाती है। यही कारण है कि इंगलैंड और दूसरे यूरोपीय देशों के भिन्न भिन्न भागों में जन-संख्या की घनिष्ठता भी बहुत ही विषम पाई जाती है। ग्रेट ब्रिटेन के पूर्वी भाग में जो कि प्रधानतया खेती का प्रान्त है २४०—४७० मनुष्य प्रति वर्ग मील पाये जाते हैं। चेशायर और लंका शायर में जहाँ खेती के साथ ही साथ कारीगरी भी खूब की जाया करती है,

लगभग १८०० मनुष्य प्रति वर्ग मील पाये जाते हैं । इसी प्रकार वारविक शायर में १३००, यार्क शायर में १५०० और लंडन में ३६००० से अधिक मनुष्य प्रति वर्ग मील पाये जाते हैं । यही दशा जर्मनी, बेल्जियम और अमेरिका के संयुक्त राज्यों के भी बहुत से भागों में पाई जाती है ।

भारतवर्ष चूंकि एक कृषि प्रधान देश है इसलिये यहाँ पर इङ्गलैण्ड की सी सघनता बहुत कम पाई जाती है । साधारणतया यहाँ पर १८० से ३०० मनुष्य तक प्रति वर्ग मील पाये जाते हैं । हाँ, बंगाल, बम्बई, संयुक्त देश और मद्रास के कुछ भाग अवश्य अधिक सघन पाये जाते हैं जहाँ हमें एक वर्ग मील पीछे ७००—२००० मनुष्य तक भी मिला करते हैं ।

इस प्रकार हमने यह देख लिया कि संसार के भिन्न भिन्न भागों में भिन्न भिन्न प्रकार की जन-संख्या भी पाई जाती है । इसके कुछ भाग तो ऐसे हैं जहाँ यथेष्ट से भी कम लोग रहा करते हैं और कुछ भाग ऐसे भी हैं जहाँ यथेष्ट से कहीं अधिक लोग भी रहा करते हैं । इस वितरण का विचार करते समय हमें कई बातों पर ध्यान देना पड़ा करता है । साधारणतया तो हम यही कह सकते हैं कि जिस स्थान में जीवन-निर्वाह की जितनी ही अधिक सुविधायें पाई जायँगी उस स्थान में उतने ही अधिक लोग भी रहा करेंगे । किन्तु जीवन-निर्वाह की सुविधायें भी कई प्रकार की हुआ करती हैं, इसलिये किसी स्थल की जन-संख्या का विचार करते समय इन सब कारणों को भी ध्यान में रखना परमावश्यक है ।

जीवन-निर्वाह की सुविधाओं को विचार करते समय हमें कम से कम निम्नाङ्कित बातों पर तो अवश्य ही ध्यान रखना चाहिये ।

(१) उपजाऊ प्रदेश (पर्याप्त भोजन सामग्री का प्राप्त हो सकना)

(२) अच्छी जल वायु ।

(३) आमदरफ्त की सुगमता ।

(४) अच्छा शासन । (लोगों के जानमाल की रक्षा और उनकी आर्थिक तथा मानसिक उन्नति के साधन)

किसी भी देश की जन-संख्या को बढ़ाने के लिये वहाँ के रहने वालों को पर्याप्त भोजन सामग्री का मिलना तो सब से पहली बात है । इसके बग़ैर तो जीवन निर्वाह ही असम्भव है । जो देश अपने निवासियों का भली प्रकार भरण-पोषण नहीं कर सकता वह कभी भी अपनी जन-संख्या को बढ़ा नहीं सकता । टन्ड्रा और सहारा, इसके अच्छे उदाहरण हैं । यहाँ भोजन की समस्या इतनी कठिन है कि अधिक लोग कभी पाये ही नहीं जा सकते आजकल यही समस्या संसार के इंगलैण्ड, जर्मनी और जापान ऐसे सभ्य और समुन्नत देशों के सामने भी पेश है । इनकी जन-संख्या इतनी तेजी के साथ बढ़ती जा रही है कि सब लोगों का भरण पोषण असाध्य हो गया है । प्रत्येक देश में कई लाख आदमी बेकार पाये जाते हैं । उनके लिये किसी न किसी प्रकार का रोजगार ढूंढ़ निकालना ही उनके अधिकारियों के सामने एक जटिल प्रश्न है । इसका स्वाभाविक परिणाम इनकी बढ़ती हुई जन संख्या में रुकावट और देश में अशान्ति है ।

किसी देश की पैदावार पर वहाँ की प्राकृतिक दशा का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा करता है । रेगिस्तानी भागों में उतनी पैदावार नहीं हो सकती जितनी कि पहाड़ी और जंगली भागों में और न पहाड़ी और जंगली भागों में उतनी पैदावार हो सकती है जितनी कि उपजाऊ मैदानों में । इस

प्रकार किसी भी देश के पहाड़ी और जंगली भागों में उतने लोग नहीं पाये जा सकते जितने कि उसके मैदानों में। उदाहरणार्थ हम यह बता सकते हैं कि दक्षिणी भारतवर्ष में जहाँ पश्चिमी घाटों के पश्चिम २०० से अधिक लोग प्रति वर्ग मील पाये जाते हैं उनके पूर्व की ओर अधिक से अधिक १५० मनुष्य ही प्रति वर्ग मील पाये जाते हैं। और थार रेगिस्तान तथा महाकन्तारा वन के कुछ भागों में दो चार ही मनुष्य प्रति वर्ग मील रहा करते हैं।

भोजन के बाद दूसरी बात जलवायु है। संसार में ऐसे बहुत से देश हैं जो कि पैदावार के विचार से बहुत ही उन्नतशील होते हुए भी अपनी बुरी जलवायु के कारण बहुत ही बिड़ले बसे हुये हैं। अफ्रीका के मध्य भाग और गिनी कोस्ट इसके अच्छे उदाहरण हैं। यद्यपि इन भागों में पैदावार खूब की जा सकती है तौ भी जलवायु इतनी बुरी है कि बाहरी लोग ठहर ही नहीं सकते। भारतवर्ष में यही बात हिमालय की तराई में भी पाई जाती है। यहाँ की जलवायु इतनी गरम और नम है कि लोग तरह तरह की बीमारियों के कारण परेशान रहा करते हैं। यहाँ की तराई और उसके नीचे के जिलों की जन-संख्या में जो अन्तर पाया जाता है उसका मुख्य कारण इसकी दूषित जल-वायु ही है। यही बात टन्ड्रा, सहारा, मध्य एशिया, मध्य अफ्रीका और आस्ट्रेलिया के कई भागों के लिये भी कही जा सकती है। जिनमें से कोई तो अत्यन्त ही गरम और कोई अत्यन्त ही ठंडे हैं। कहीं तो साधारण उपयोग के लिए भी पर्याप्त जल-वृष्टि नहीं हुआ करती और कहीं इतनी अधिक जल-वृष्टि हुआ करती है कि लोग कोई काम कर ही नहीं सकते।

भोजन और जलवायु के बाद, किसी स्थान की जन-संख्या पर, वहाँ पाई जाने वाली आवागमन की सुविधाओं का भी बड़ा प्रभाव पड़ा करता है। मनुष्य स्वभाव से ही प्रगतिशील है। वह एक स्थान पर बँध कर नहीं रह सकता किन्तु इस प्रकार और समागम के लिये आवश्यकता है, अच्छे अच्छे मार्गों की। संसार के बहुत से भाग ऐसे हैं जहाँ पैदावार भी खूब की जा सकती है और जलवायु भी मनुष्य-जीवन के लिये उतनी बाधक नहीं पाई जाती; किन्तु इन दोनों सुविधाओं के होते हुए भी आमदरफ्त की सुविधायें न होने के कारण वे प्रदेश उजाड़ या बहुत ही बिड़ले पाये जाते हैं। साइबीरिया का दक्षिणी भाग (टैगा) इसका अच्छा प्रमाण है। यहाँ यद्यपि उपजाऊ प्रान्त भी पाये जाते हैं, खनज पदार्थों की भी कमी नहीं है, और जलवायु भी मध्य श्रेणी की पाई जाती है किन्तु मनुष्यों के आवागमन और वस्तुओं के नयनानुनयन की सुविधायें न होने के कारण ही इस प्रान्त की जन-संख्या बहुत ही बिड़ली पाई जाती है। यहाँ के सघन वनों में न तो सड़कें ही बनाई जा सकती हैं और न रेलों का ही प्रसार किया जा सकता है। नदियाँ भी बर्फीले समुद्रों में गिरने के कारण बेकार सी ही मानी जाती हैं। इस प्रकार यहाँ पर मनुष्यों के पारस्परिक समागम और प्रसार की बहुत ही कम सुविधायें पाई जाती हैं। इसका स्वाभाविक परिणाम यही हुआ करता है कि बाहरी लोग यहाँ रहने के लिए तैयार ही नहीं होते। क्योंकि ऐसे स्थानों में रहने वालों का जीवन संसार के और भागों से बिल्कुल विच्छिन्न हो जाया करता है। यही नहीं, आमदरफ्त की सुविधायें न होने के कारण ऐसे स्थानों के निवासी दैवी या राजनैतिक आपत्ति के समय में अपनी

रक्षा भी नहीं कर सकते ; क्योंकि उन लोगों को बाहरी सहायता प्राप्त करने में बड़ी कठिनाइयाँ पड़ा करती हैं। उनकी व्यापारिक और सामाजिक उन्नति भी बहुत ही कम हुआ करती है। इन सब कारणों से यह निश्चित है कि ऐसे स्थानों की जन-संख्या बहुत ही बिड़ली रहा करेगी। संसार के लगभग सभी जंगली और पहाड़ी भागों की यही दशा पाई जाती है।

अन्त में अच्छी जन-संख्या के लिये अच्छे शासन का होना भी बहुत ही आवश्यक है। क्योंकि कोई भी समझदार आदमी ऐसे स्थान में रहना पसंद नहीं करेगा जहाँ उसके जान व माल की रक्षा का प्रबन्ध न हो। शक्तिशाली और न्यायपूर्ण शासन जो कि अपनी प्रजा की रक्षा करते हुये उसे उन्नति के मार्ग पर अग्रसर करा सके, जन-संख्या की बढ़ती के लिये बहुत ही उपादेय हुआ करता है। चीन के मंगोलिया और मंचूरिया आदि प्रदेशों में जन-संख्या की कमी का यह मुख्य कारण है ; क्योंकि वहाँ पर कोई संगठित और शक्तिशाली शासन न होने के कारण डाकुओं और चोरों की अच्छी भरमार रहा करती है जिसके कारण बहुत ही कम बाहरी लोग वहाँ जाने और रहने का साहस किया करते हैं।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि जिस देश में उसके निवासियों की रक्षा और उन्नति के जितने ही अधिक साधन पाये जायँगे उसमें उतने ही अधिक लोग भी रहा करेंगे। भारतवर्ष को ही लीजिये। इसमें सब से अधिक जन-संख्या गंगा और सिंध के मैदान तथा पूर्वी और पश्चिमी समुद्र तट के मैदानों में ही पाई जाती है। कारण इसका यह है कि इन भागों में यहाँ के रहने वालों के निर्वाह से कहीं अधिक नाज पैदा

किया जा सकता है। जलवायु के विचार से भी ये भाग काफी अच्छे पाये जाते हैं। धरातल के समतल होने के कारण इन भागों में रेलों और सड़कों का भी अच्छा प्रसार पाया जाता है। लोग निर्द्वन्दता पूर्वक अपनी सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक उन्नति कर सकते हैं। किन्तु इसके विरुद्ध राजपूताना, हिमालय की तराई और उत्तरी पश्चिमी भागों में बहुत कम लोग रहा करते हैं। क्योंकि इनमें कहीं तो जलवायु की कठिनाइयाँ पाई जाती हैं और कहीं आवागमन की।

नगरों की उत्पत्ति और उन्नति—हम ऊपर लिख आये हैं कि जो स्थान जितने ही अधिक आदमियों का जीवन निर्वाह सुगमता के साथ कर सकेगा उसमें उतने ही अधिक लोग भी पाये जायँगे। टन्ड्रा, टैगा, सहारा, कान्गो और अमेजन के सघन जंगली भाग तथा मध्य एशिया और दूसरे महाद्वीपों के अन्य ऊसर और रेतीले भाग जहाँ मनुष्यों का जीवन-निर्वाह बहुत ही कठिन पाया जाता है, उजाड़ पाये जाते हैं। संसार के इन भागों में बहुत से आदमी एकत्रित हो कर एक स्थान पर नहीं रह सकते। उनको अपने जीवन निर्वाह के लिये बनजारों की भाँति इधर उधर घूमना पड़ा करता है। ये लोग किसी एक निश्चित स्थान पर घर बना कर नहीं रह सकते। यदि आज यहाँ हैं तो कल उससे दस मील दूर। इस प्रकार इन भागों में हमें यहाँ वहाँ दोचार मामूली घास फूस के झोपड़ों के सिवा जो कि यहाँ के निवासी अत्यन्त गर्मी या सर्दी से बचने के लिये कभी कभी बना लिया करते हैं—कोई भी गाँव या नगर नहीं मिला करते। वस्तुतः इनके उद्यम ही ऐसे हुआ करते हैं जो इन्हें एक स्थान पर जमकर नहीं रहने देते।

वास्तव में किसी भी देश के अन्दर गाँवों और नगरों का श्रीगणेश तभी हुआ करता है जब वहाँ के रहने वाले खेती पाती का भी काम करने लग जाया करते हैं ; क्योंकि खेती का उद्यम एक ऐसा उद्यम है जो कि मनुष्य के जीवन को सुस्थिर बना देता है । उसे अपने खेतों को जोतने, बोने और काटने माँड़ने के लिये एक स्थान पर जमकर रहना पड़ा करता है जिसके लिये घरों का—चाहे वे कितने ही छोटे मोटे और भद्दे क्यों न हों—बनाना आवश्यक हो जाया करता है । ये घर घास फूस, मिट्टी या पत्थर, किस चीज के होंगे यह तो किसी विशेष स्थान की उपलब्ध चीजों पर ही निर्भर रहा करता है । सूडान के किसान घास फूस के झोपड़े अधिक बनाया करते हैं । बर्मा में लकड़ी और बाँस का प्रयोग अधिक किया जाता है । भारतवर्ष के भिन्न भिन्न भागों में घास फूस, मिट्टी लकड़ी और पत्थर सभी का आवश्यकतानुसार प्रयोग किया जाता है ।

इस प्रकार जब कोई स्थान दस, बीस या पचास आदमियों के जीवन निर्वाह के उपयुक्त हो जाया करता है तो वहाँ एक छोटा मोटा गाँव भी तैयार हो जाया करता है । साधारणतया कृषि-प्रधान देशों में गाँवों की ही संख्या अधिक पाई जाती है क्योंकि यह एक ऐसा उद्यम है जो कि लोगों को दूर दूर फैला दिया करता है । कारण इसका यह है कि प्रत्येक किसान को अपने खेत पात की देख भाल के लिये उसके करीब ही रहना बहुत ही आवश्यक हुआ करता है । यही कारण है कि प्रत्येक बड़ा गाँव कुछ ही दिनों के बाद कई एक छोटे छोटे पुरवों (गाँवों) में विभाजित हो जाया करता है ।

जब किसी गाँव के रहने वाले कृषि के अतिरिक्त व्यापार और कारीगरी भी करने लग जाया करते हैं तो उसकी जन-संख्या बढ़ने लग जाया करती है ; क्योंकि उस गाँव के लोगों का सम्पर्क बाहरी लोगों से भी होने लग जाया करता है। बाहर के व्यापारी और कारीगर अपनी जीविका के लिये उसमें आकर टिकन लग जाया करते हैं। इस प्रकार प्रतिवर्ष उसमें कुछ न कुछ लोग बढ़ते जाते हैं और अन्त में वह एक कस्बा हो जाया करता है।

इस प्रकार हमने यह देख लिया कि उद्यमों की बाहुल्यता, विभिन्नता और जीवन निर्वाह की सुगमता ही किसी नगर की उत्पत्ति और उन्नति के मुख्य कारण हैं। इन्ही के द्वारा भिन्न भिन्न स्थानों के बहुत से आदमी एक स्थान पर आकर एकत्रित हो जाया करते हैं। और वहाँ भिन्न भिन्न वस्तुओं का आपस में क्रय-विक्रय करने हुये अपना जीवन व्यतीत किया करते हैं। इसलिये किसी भी देश के बड़े बड़े नगर हमें निम्नाङ्कित स्थानों पर ही मिला करते हैं।

(१) बड़े मार्गों के मिलान पर—जैसे प्रयाग, लखनऊ, पेशावर, हानोलूलू, सिंगापूर, और काबुल आदि। इनमें से कोई तो बड़ी बड़ी नदियों के संगमों पर पाये जाते हैं जैसे प्रयाग। प्राचीन काल से ही प्रयाग, काशी और आगरा भारतवर्ष के बड़े बड़े नगर थे ; क्योंकि उस समय भी जब कि देश में रेलों और सड़कों का इतना अच्छा प्रसार नहीं पाया जाता था, गंगा और यमुना भारतवर्ष के अच्छे जलमार्ग थे। इन्हीं के द्वारा दूर दूर स्थानों के लोग प्रयाग ऐसे स्थान पर एकत्रित हुआ करते थे, जिसके कारण यह स्थान एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थान बना

दिया गया। इसी प्रकार लखनऊ रेलवे जंकशन और काबुल तथा पेशावर काफिलों के केन्द्र स्थान हैं। हानोलूलू और सिंगापुर जलमार्गों के केन्द्र हैं।

(२) तीर्थ स्थानों पर—जैसे मथुरा, अयोध्या, पुरी और काशी आदि।

अरब में मक्का और मदीना इसीलिये रेगिस्तान के बीच में भी बड़े बड़े नगर बन गये हैं कि वे मुसलमानों के प्रसिद्ध तीर्थ स्थान हैं। संसार के भिन्न भिन्न देशों के मुसलमान इन स्थानों पर तीर्थ यात्रा के लिये आया करते हैं; इसलिये उनकी सुविधाओं का प्रबन्ध करते हुये हजारों आदमी अपना जीवन निर्वाह किया करते हैं। भारतवर्ष के प्रायः प्रत्येक जिले में इस प्रकार के दो या चार छोटे मोटे उदाहरण पाये जाते हैं जहाँ कोई छोटा सा गाँव किसी देवी या देवता के पीछे बढ़कर एक बड़ा कस्बा बन जाया करता है।

(३) व्यापारिक केन्द्रों पर—जैसे कानपुर, कन्दहार, शिकागो, ओडेसा और अडीलेड आदि। ऐसे स्थान प्रायः रेलों, सड़कों, नदियों या समुद्र के किनारे हुआ करते हैं और इनका काम अपने आसपास के कच्चे माल को एकत्रित करके बाहर भेजना तथा बाहर से आये हुये माल को अपने आसपास के गाँवों में वितरण करना हुआ करता है। उत्तरी अमेरिका में विनापिग और सेंट लारेंस के किनारे के नगर तथा अफ्रीका में कांगो इसके अन्य उदाहरण हैं।

(४) कारीगरी के केन्द्रों पर—जैसे अहमदाबाद, नागपुर, कानपुर, मैन्चेस्टर, बरमिंहम और वेल्फास्ट आदि। इनमें जो स्थान

जितनी ही अधिक चीजों की कारीगरी करने वाला होगा उसमें उतने ही अधिक लोग भी पाये जायेंगे।

इन स्थानों मे कुछ तो ऐसे हैं जो कि केवल कच्चे माल के ही एकत्रित-कर्ता हैं जैसे आस्ट्रेलिया और दक्षिणी अफ्रीका की सोने की खानों के पास वाले नगर (किंबरली, ज़ान्सवर्ग और कालगूरली आदि) और कुछ ऐसे हैं जो कि दूसरे स्थानों से कच्चे माल को मँगाकर कारीगरी ही किया करते हैं जैसे मैन्चेस्टर और डन्डी आदि। इनके अतिरिक्त कुछ स्थान ऐसे भी पाये जाते हैं जिनके पास कारीगरी के सब साधन हुआ करते हैं। फलतः ऐसे नगर पिछले दोनों प्रकार के नगरों की अपेक्षा कहीं अधिक सघन और सम्पन्न हुआ करते हैं जैसे बरमिंहम और शेफील्ड आदि। भारतवर्ष में ऐसी सुविधायें केवल कलकत्ते में ही पाई जाती हैं। क्योंकि इसके आस पास अपने कारखानों के लिये कोयला और कच्चा माल दोनों पाया जाता है। इसके साथ ही साथ इस नगर को आवागमन संबंधी भी सभी सुविधायें प्राप्त हैं।

(५) **अन्य कारण**—उपरोक्त स्थानों को छोड़ कर और भी कई एक विशेष कारणों के कारण नगरों की उत्पत्ति और वृद्धि हो जाया करती है। विचार कर देखने से ज्ञात हो जायेगा कि मद्रास और पांडेचेरी आदि नगरों की उत्पत्ति में इनकी स्थिति का उतना प्रभाव नहीं पड़ा जितना कि उस समय की राजनीतिक दशा का। उस समय देश में ऐसी अशान्ति और लूटमार मची हुई थी कि लोग अपनी रक्षा के लिये अंग्रेज़ी कम्पनियों के आस पास आकर बस जाया करते थे; क्योंकि वहाँ पर वे लोग अँग्रेज़ी तोपों की आड़ में कहीं अधिक सुरक्षित जीवन

व्यतीत कर सकते थे। पेशावर, कोहाट और मंचूरिया के बहुत से नगर इसी के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। प्राचीन काल में पेकिंग ऐसे नगरों की उत्पत्ति इसी कारण से चीन की महान् दीवाल की आड़ में हुई थी। दिल्ली, लासा और मनीला और लंदन आदि नगरों की वृद्धि का कारण उनकी राजनीतिक सुविधायें हैं। टर्की का अँजेरा नामक नगर जो कि महायुद्ध के पहिले तक एक साधारण कस्बा था आज नूतन टर्की की राजधानी हो जाने के कारण दिन प्रति दिन बढ़ता जा रहा है। इसके विरुद्ध कुस्तुन्तुनिया का नगर राजधानी न रह जाने के कारण बहुत कुछ गिरता जा रहा है। हिमालय पहाड़ की दुर्गम और बर्फीली चोटियों के बीच में शिमला, नैनीताल और दारजीलिंग आदि नगरों की ख्याति का कारण उनकी सुन्दर और आरोग्यप्रद जलवायु है। इसी प्रकार यूरोप के स्विटजरलैंड नामक देश में कितने ही नगर अपनी प्राकृतिक सुन्दरता के कारण प्रसिद्ध होते जा रहे हैं। यूरोप के ऐन्टवर्प, जेनोवा और वेरसलीज आदि नगरों की ख्याति का कारण उनकी। ऐतिहासिक घटनायें हैं।

इस प्रकार यह निश्चित है कि जिस स्थान को उपरोक्त सुविधाओं में से जितनी ही अधिक सुविधायें प्राप्त हो सकेंगी वह उतना ही बड़ा नगर भी होता जायगा। यह बात हमें लंदन, न्यूयार्क, कलकत्ता और अन्य प्रसिद्ध नगरों की तुलनात्मक विवेचना से भली प्रकार ज्ञात हो जायेगी।

जन-संख्या की अति वृद्धि और उसका प्रभाव—पिछले अध्याय से हमारे पाठक यह भली प्रकार समझ गये होंगे कि प्रत्येक स्थान में

उतने ही लोग सुखपूर्वक रह सकते हैं जितनों के लिये वहाँ पर पर्याप्त भोजन सामग्री और यथेष्ट स्थान पाया जा सके। इस प्रकार प्रत्येक स्थान के लिये एक नियमित जनसंख्या का होना ही परम आवश्यक है, क्योंकि प्रत्येक स्थान की पैदावार और उसकी जनसंख्या के भरण-पोषण की मिति भी तो अवश्य ही हुआ करती है। इस मिति का किसी ओर भी उल्लंघन होना वहाँ की आर्थिक दशा और जनसंख्या में एक नई परिस्थिति का उपस्थित कर देना ही हुआ करता है। यदि किसी विशेष स्थान में उसके यथेष्ट परिमाण से कम लोग पाये जायँगे तो इसका स्वाभाविक परिणाम यही पाया जायगा कि (१) वहाँ पर दूसरे स्थानों से लोग आकर बसते जायँगे और (२) वे अपनी जनसंख्या का भली प्रकार भरण पोषण करते हुये बची हुई पैदावार को दूसरे स्थानों में भेज और बेच सकेंगे। जैसे कैनाडा और संयुक्त राज्यों के पश्चिमी भाग तथा दक्षिणी अमेरिका के पम्पाज। किन्तु यदि इस मिति का उल्लंघन दूसरी ओर हुआ अर्थात् यदि उस स्थान में उसके यथेष्ट परिमाण से अधिक लोग एकत्रित हो गये तो बड़ी गड़बड़ी मच जाया करती है इसके कारण पहिले तो वहाँ की आर्थिक दशा बिगड़ जाया करती है और फिर सामाजिक अशान्ति उपस्थित हो जाया करती है क्योंकि वहाँ की जन-समाज के यथेष्ट से अधिक मनुष्य बेकारी के कारण अपने जीवन-निर्वाह के लिये भाँति भाँति के उपद्रव मचाया करते हैं। चोरियों, और डाकों की संख्या बढ़ने लग जाया करती है। इन सब बातों का प्रभाव वहाँ के शासन-विधान पर भी अवश्य पड़ा करता है; जिसके कारण अधिकारियों के लिये यह एक बड़ा जटिल प्रश्न हो जाया

करता है। उनको अपनी बेकार जनसंख्या के लिये या तो कोई उद्यम और रोजगार ढूँढ़ निकालना पड़ा करता है या उनके भरण-पोषण के लिये बाहर से सामान मँगाना पड़ा करता है या उन्हें किसी नवीन स्थान की खोज करनी पड़ा करती है जहाँ वे अपनी अधिक जनसंख्या के भेजकर बसा-टिका सकें। इस प्रकार किसी स्थान की यथेष्ट से अधिक जनसंख्या का प्रभाव केवल उसी स्थान पर नहीं, किन्तु उसके आसपास के अन्य स्थानों पर भी पड़ा करता है जैसे वर्तमान समय में यूरोप और एशिया के अधिकांश देशों की परिस्थिति से साफ दिखाई दे रहा है।

अति-वृद्धि के लिये उपाय—(१) **दैवी-उपाय**—अति वृद्धि का सबसे प्रथम और प्रबल उपचार तो दैवी ही हुआ करता है। क्योंकि परमात्मा की सृष्टि भी तो एक बहुत ही संगठित रूप पर चलाई जाया करती है। जहाँ उसने देखा कि अमुक स्थान या देश में उसके यथेष्ट परिमाण से अधिक लोग हो गये कि उसके महायुद्ध, हैजा, प्लेग, बाढ़ और भूचाल आदि साधनों से काम लेना प्रारंभ कर दिया। थोड़े ही दिनों में आदमियों की संख्या सरलता पूर्वक अपने यथेष्ट परिमाण पर आ जाया करती है।

(२) **मानुषी-उपाय**—दैवी उपचारों के अतिरिक्त मनुष्य स्वयं भी इसके लिये भाँति भाँति के उपचार करता आया है और अब भी करता जा रहा है। साधारणतया तो इसका एक यही उपाय है कि शिकारी जातियाँ बहुत अधिक बढ़ जाने पर चरागाही करने लग जायँ। चरवाहे लोग खेती और खेतीहर लोग कारीगरी की ओर बढ़ते जायँ। किन्तु यह नियम सर्वदा और सब स्थानों के लिये उपयुक्त नहीं पाया

जा सकता। कारण इसका यह है कि संसार का प्रत्येक भाग किसी नियमित रूप से जंगलों, चरागाहों, खेती के मैदानों और कारीगरी के प्रदेशों में विभाजित नहीं पाया जाता। टन्ड्रा और सहारा के ऐसे बहुत से भाग हैं जहाँ किसी प्रकार भी चरागाही, खेती या कारीगरी नहीं की जा सकती। इसी प्रकार साइबीरिया के स्टेप्स का बहुत सा भाग चरागाही के अतिरिक्त और किसी भी उद्यम के लिये उपयुक्त नहीं पाया जाता। खेतीहर प्रदेशों में से भी ऐसे बहुत से प्रान्त पाये जाते हैं जो कि किसी प्रकार की भी कारीगरी के लिये समुचित नहीं कहे जा सकते। या तो उनके पास काफी कच्चा माल ही नहीं पाया जाता या संचालन शक्ति की ही कमी पाई जाती है। यदि किसी प्रकार इन चीजों की कमी पूरी भी कर ली जाय तो कारीगरी की औसत खेती के सामने अधिक लाभदायक नहीं सिद्ध होती। इसलिये यह आवश्यक है कि संसार के भिन्न भिन्न प्रदेश अपनी बढ़ी हुई जनसंख्या के लिये भिन्न भिन्न उपचार भी किया करें।

शिकारी जातियों का विस्तार—संसार की दो या चार शिकारी जातियों को छोड़ कर शेष और जातियाँ अपनी बढ़ी जनसंख्या के लिये कोई दूसरा उपाय नहीं निकाल सकतीं; क्योंकि टन्ड्रा और अमेजन आदि के जंगलों की प्राकृतिक दशा ही ऐसी पाई जाती है जिसमें न तो खेती या चरागाही ही की जा सकती है और न आसपास के लोगों से व्यापार ही। इन चीजों के लिये जलवायु और आवागमन की सुविधायें न होने के कारण इन बेचारों को अपने आसपास की नियमित सामग्री पर ही जीवन निर्वाह करना पड़ा करता है। इसलिये अपनी बढ़ती हुई

जन-संख्या को रोकने के लिये इन्हें शिशु-वध, मानवाहार और बीमारों तथा असहायों की अवहेलना आदि अमानुषिक कार्य करने पड़ा करते हैं। क्योंकि यदि वे ऐसा न करें तो उनको भूखों मर जाना पड़े । इस प्रकार पहिले तो उनकी जन-संख्या यथेष्ट परिमाण के ऊपर जाने ही नहीं पाती और यदि किसी प्रकार अधिक हो भी गई तो आपस की लड़ाइयों और अकाल आदि के द्वारा समुचित संख्या पर पहुँचा दी जाया करती है। टैगा, काँगों और अमेजन आदि की वे जंगली जातियाँ जो कि चरागाहों और चरवाहों के नजदीक रहा करती हैं, कुछ खेती-बारी और कुछ व्यापार आदि भी कर लिया करती हैं।

चरवाहों में जन-संख्या की वृद्धि—चरवाहे अपनी बढ़ती हुई जन-संख्या के लिये दो उपाय काम में लाया करते हैं। (१) यदि उनके मैदान खेती के उपयुक्त हुये तो वे जम कर खेती-बारी करने लग जाया करते हैं जैसे रूसी तुर्किस्तान के तुर्क या तुर्कोमन । इसी प्रकार उत्तरी अमेरिका के पश्चिमी भागों और दक्षिणी अमेरिका के पम्पाज का बहुत सा भाग भी गेहूँ के उपजाऊ खेतों में परिवर्तित कर दिया गया है।

(२) यदि उनके चरागाहों की जलवायु शुष्क और खेती के उपयुक्त न हुई तो वे लोग अपने आसपास की सुव्यवस्थित जातियों पर हमला कर दिया करते हैं। चूंकि इनका जीवन सदा से ही एक चाल फेर का जीवन रहा करता है इसलिये ऐसे प्रस्थानों में उन्हें बहुत ही कम कठिनाइयाँ पड़ा करती हैं । इसके अतिरिक्त एक कठिन और परिश्रम के जीवन के आदी होने के कारण ये लोग काफी सहनशील और मजबूत भी हुआ करते हैं। यही कारण है कि आमतौर पर इनके आस-

पास की सुव्यवस्थित जतियाँ इनके हमलों के सामने नहीं टिक सकतीं। मध्य एशिया के चरवाहें ने तो बहुत पहले से ही इस मार्ग का अनुसरण कर लिया था। इसी के परिणाम स्वरूप आज हमें भारतवर्ष में आर्यों के वंशज दिखाई पड़ रहे हैं। चंगेज खाँ और तैमूरलंग इन्हीं चरवाहें के प्रसिद्ध सरदार और सेना-नायक थे; जिन्हेंाने अपने आक्रमणों के द्वारा सारे मध्य एशिया को रौंद कर उथल-पुथल कर डाला था। इसी प्रकार मंगोलिया और मंचूरिया के चरवाहें ने भी एशिया के बहुत से देशों पर अपना अधिकार जमा लिया था। वर्तनान समय में इसी प्रकार का झगड़ा कुर्द और आरमीनियन लोगों में छिड़ा हुआ है।

किसानों में जन-संख्या का विस्तार—खेती करने वाली जातियाँ अपनी बढ़ती हुई जन-संख्या के लिये निम्नाङ्कित उपाय काम में लाया करती हैं—

(१) खेती में अधिक और साल में दो या तीन बार पैदा होने वाली फसलों को अधिक बोने लगती हैं जैसे जापान, चीन और बंगाल तथा बर्मा आदि में चावल अधिक पैदा किया जाता है।

(२) अच्छे, नवीन और वैज्ञानिक उपयोगों के द्वारा अपने देश की पैदावार को बढ़ाने का प्रयत्न करती हैं। जैसे यूरोप और अमेरिका के अधिकाँश भागों में किया जा रहा है।

(३) अपने खनिज पदार्थों का उपयोग करके कारीगरी और व्यापार को बढ़ाती हैं जिसके द्वारा बाहरी देशों से खाद्य-पदार्थ मँगाये जा सकते हैं। जैसे ब्रिट्रेन, बेल्जियम और यूरोप के अन्य कारीगर-देश के निवासी किया करते हैं।

उपरोक्त तीनों उपायों से कुछ दिनों के लिये काम तो अवश्य चल जाता है; किन्तु अन्त में उन्हें प्रवास-गमन अवश्य ही करना पड़ता है। ऐसी विदेश-यात्रा प्रायः उपरोक्त परिस्थिति के उपस्थित होने से बहुत पहिले ही प्रारंभ हो जाती है।

प्रवास-गमन या विदेश-यात्रा—मनुष्य अपने स्थान को छोड़ कर दूसरी जगह प्रायः दो कारणों से ही जाया करता है। (१) किसी प्रकार के अत्याचार से बचने के लिये और (२) जीविकोपार्जन के निमित्त। पहिले प्रकार का उदाहरण हमें भारतीय पारसियों और उत्तरी अमेरिका के 'पिलग्रिम फादर्स' में मिल सकता है; क्योंकि इन दोनों जातियों ने अपने धर्म को बचाने और विपक्षियों के अत्याचार से बचने के लिये ही अपने अपने देशों को छोड़ कर दूसरे देशों में जाकर बसना स्वीकार किया था। वर्तमान समय में जर्मनी के यहूदियों को भी यही करना पड़ा है। दूसरे प्रकार का उदाहरण तो प्रायः संसार के प्रत्येक देश में ही—बल्कि यों कहिये कि प्रत्येक देश के लगभग सभी भागों में ही पाया जा सकता है। वैयक्तिक रूप से तो प्रायः प्रत्येक गाँव के दो चार आदमी किसी दूसरे गाँव या शहर में जरूर पाये जायेंगे जो कि अपनी जीविका के लिये, या यों कहिये कि धनोपार्जन की लालच से वहाँ जाकर बस और टिक गये हैं। इनमें से बहुतेरों ने तो दूसरे प्रकार के स्थानों को ही एक प्रकार से अपना जन्म-स्थान बना लिया है। वृहत् रूप से इसके प्रमुख उदाहरण अँग्रेज हैं जो कि जीविका के साथ ही साथ धनोपार्जन के लिये संसार के लगभग आधे भाग में फैले हुये हैं। इसी प्रकार स्पेन वालों के वंशज दक्षिणी अमेरिका में पाये जाते हैं।

आजकल लाखों भूखे भारतीय और चीनी लोग अपनी जीविका के लिये अफ्रीका, फीजी, आस्ट्रेलिया और अमेरिका आदि देशों में अपने देश को छोड़े हुये पड़े हैं। इस प्रकार आजकल प्रायः सभी देशों के लोग—जो कि अपने देश में अपना जीवन-निर्वाह भली प्रकार नहीं कर सकते, दूसरे देशों में आबाद पाये जाते हैं।

किन्तु प्रवास गमन में एक बात और भी ध्यान देने योग्य है। संसार की सभी जातियाँ इस कार्य में सफलीभूत नहीं हुआ करतीं। टन्ड्रा और ऊष्ण वनों के निवासी (शिकारी लोग) तो इस काम को कर ही नहीं सकते। क्योंकि न तो उनके पास इस कार्य के लिये साधन ही पाये जाते हैं और न शारीरिक तथा मानसिक क्षमता ही। वास्तव में यह काम चरागाही करने और मछली मारने वाली जातिश्रों से ही प्रारंभ हुआ करता है। क्योंकि इनका तो नित्य-प्रति का जीवन ही चाल फेर और प्रवास-गमन का जीवन होता है। घोड़े और नावें इनकी प्रगति को बहुत ही सुगम और सरल बना देती हैं। हाँ, इन लोगों के प्रवास-गमन में एक विशेषता अवश्य पाई जाती है और वह यह है कि ये लोग इक्के दुक्के प्रवास गमन बहुत ही कम किया करते हैं। इनका तो प्रायः गिरोह का गिरोह ही प्रसरण किया करता है जिसके कारण इन लोगों का रोकना भी एक बड़ा दुस्तर कार्य हो जाता है। यही कारण है कि संसार के इतिहास में तारतर और अरब लोगों के हमले तहुत ही प्रसिद्ध और उदाहरण स्वरूप माने जाते हैं। इसी प्रकार नार्वे और डेनमार्क के मल्लाहों ने बृटिश द्वीप समूह पर अपना अधिकार जमा लिया था।

खेती और कारीगरी करने वाली जातियों में तो यह काम इक्के-दुक्के और संगठित दलों—दोनों प्रकार से किया जाता है। वर्तमान समय में जब से आमदरफ्त में वैज्ञानिक साधनों का प्रयोग होने लग गया है, यह काम बहुत तेजी के साथ किया जाने लग गया है। लोग अपने अपने घरों और देशों को छोड़ कर हजारों मील दूर आने-जाने लग गये हैं। रोज ही सैकड़ों आदमी लंदन; ब्रिस्टल, लिवरपूल, हैम्बर्ग, कलकत्ता, कराँची और शंघाई आदि बन्दरगाहों से आस्ट्रेलिया, अमेरिका और अफ्रीका आदि देशों के लिये रवाना हुआ करते हैं; क्योंकि इन महाद्वीपों के बहुत से भाग अभी उतने सघन आबाद नहीं हुये हैं जितने कि एशिया और यूरोप के। अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में तो इन नवीन स्थानों के लिये यूरोपीय देशों में ऐसी लाग-डाट की दौड़ रही कि इन पर अधिकार जमाने के लिये स्थल और जल की कई एक भयानक लड़ाइयाँ भी लड़ी गईं किन्तु अन्त में सब से अधिक सफलता अंग्रेजों को ही प्राप्त हो सकी। कारण इसका यही था कि ये लोग एक द्वीप के निवासी होने के कारण जहाजरानी में अधिक दक्ष और प्रबल थे। धीरे धीरे इन नवीन स्थानों में भी संकीर्णता आने लगी और इसीलिये आजकल प्रायः तीनों महाद्वीपों में बाहरी आगन्तुकों के लिये निषेधात्मक नियम बना दिये गये हैं। क्योंकि वहाँ के नवागन्तुक निवासियों को इस बात की आशंका होने लग गई है कि यदि उनके देश में बाहरी लोगों का आना इसी वेग के साथ जारी रहा तो बहुत ही शीघ्र उन्हें यहाँ भी उन्हीं कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा जिनका कि उनके पूर्वजों ने यहाँ आने से पहले अपने असली देशों में किया

था। आजकल तो इन नियमों ने जाति और रंग का पक्षपात-पूर्ण रूप ग्रहण कर लिया है जिसके कारण चीनी और भारतीय लोगों को विशेष कष्ट उठाना पड़ रहा है। क्योंकि अब ये देश केवल यूरोपीय लोगों के लिये ही संरक्षित किये जा रहे हैं। ऐसा होना "पहले आत्मा तो फिर पीछे परमात्मा" के सिद्धान्तानुसार किसी हद तक ठीक भी कहा जा सकता है। हाँ, इसमें आवश्यकता है 'जिसकी लाठी उसकी भैंस की'।

अब यहाँ पर इस बात को भी समझ लेना चाहिये कि आखिर इस खींच-तान और निकाल-पैठार का कारण क्या है। संसार के अनु-सन्धानात्मक इतिहास पर विचार करने से ज्ञात हो जायगा कि अब इस पृथ्वी मंडल पर किसी और नवीन क्षेत्र का मिलना तो एक प्रकार से असम्भव ही सा दिखाई दे रहा है। यद्यपि प्रतिवर्ष सैकड़ों साहसी अनुसन्धान-कर्त्ता उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों की ओर नये और रहने योग्य भू-खण्डों की खोज में आया जाया करते हैं किन्तु अब उन्हें कोई भी ऐसा स्थल नहीं मिलता जिसमें पुरानी दुनिया के लोग प्रवास-गमन कर सकें। दक्षिणी अन्टार्कटिक महाद्वीप जिसका पता उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम काल में लगाया गया था अटूट बर्फ के कारण वैसे ही बेकार है जैसे उत्तरी ध्रुव के पास वाला टन्ड्रा प्रान्त। बीच में और कोई ऐसा स्थान नहीं है जो कि आस्ट्रेलिया और अमेरिका की भाँति यूरोप और एशिया के लोगों को नया स्थान प्रदान कर सके। इसलिये यह निश्चित है कि अब संसार के भिन्न भिन्न राज्यों और देशों को इन्हीं छः महाद्वीपों पर निर्भर रहना पड़ेगा जो कि अब तक में ज्ञात किये जा सके हैं। इन महाद्वीपों में भी एशिया और यूरोप तो कभी के ही अति-

निवसित महाद्वीप माने जा चुके हैं। उनमें अब अधिक लोगों के लिये स्थान की आशा नहीं की जा सकती। अफ्रीका और आस्ट्रेलिया तथा अमेरिका आदि में थोड़ा बहुत स्थान पाया जा सकता है; किन्तु वह भी जन-संख्या को आधुनिक बढ़ती को देखते हुये थोड़े ही दिनों के लिये पर्याप्त कहा जा सकता है। यही कारण है कि अफ्रीका और अमेरिका आदि महाद्वीपों के रहने वाले बाहर से आने वालों का विरोध करने लग गये हैं। क्योंकि इन महाद्वीपों में भी तो सहारा के से रेगिस्तान और अमेजन के से सघन जंगल पाये जाते हैं जिनमें स्थान होते हुये भी लोग जल-वायु की अनुदारता के कारण सुव्यवस्थित रूप से नहीं टिक और बस सकते। चाहे संसार के और भाग कितने ही सघन आबाद क्यों न हो जायँ किन्तु टन्ड्रा, सहारा और अमेजन तथा कान्गो के जंगल तो बहुत अंशों में वैसे ही पाये जायेंगे जैसे कि अबतक पाये गये हैं। इस प्रकार जन-संख्या की आधुनिक बढ़ती को देखते हुये हम यही कह सकते हैं कि एक न एक दिन दैवी शक्तियों का प्रकोप अवश्य पाया जायगा चाहे वह जिस रूप में हो। हमें खेद के साथ लिखना पड़ता है कि दैवी शक्तियों का यह प्रकोप चीन-जापान संघर्ष, स्पेन के गृह-युद्ध तुर्की के भयंकर भूचाल और यूरोपीय द्वितीय महासमर के रूप में बड़ी भयंकरता के साथ प्रगट हो गया है।

॥ इति ॥

लेखनकला

लेखक

पं० किशोरीदास वाजपेयी शास्त्री

मूल्य १॥)

लेखनी बहुत से लोग उठाते हैं, पर लेखक कम ही होते हैं। लेखक होने के लिए किन-किन बातों की जानकारी होनी चाहिये, इन्हीं बातों की विवेचना विद्वान् लेखक ने इस पुस्तक में की है। इस पुस्तक की उपयोगिता पर कतिपय विद्वानों के विचार पढ़िये—

अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के प्राण और यू० पी० लेजिस्लेटिव असेंबली के अध्यक्ष, माननीय बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन—

"जेल में आपकी भेजी हुई पुस्तक 'लेखनकला' मिली थी। उसे मैंने और मेरे साथी श्री सम्पूर्णानन्द जी ने पढ़ा था। पुस्तक मुझे अच्छी और उपयोगी लगी।"

यू० पी० सरकार के शिक्षा-सचिव विद्वद्वर बाबू सम्पूर्णानंद जी—

"मैंने श्री किशोरीदास वाजपेयी की 'लेखनकला' को जेल में देखा था। पुस्तक नौनिहालों (नये साहित्यकारों) के लिए लिखी गई है। मैं वैसा 'नौनिहाल' नहीं हूँ और लिखने पढ़ने का काम भी बहुत दिनों से करता आता हूँ। इसलिये वाजपेयी जी की दृष्टि से इस पुस्तक का पढ़ना मेरे लिये जरूरी नहीं। परन्तु मैं इतना कह सकता हूँ कि मुझे इस पुस्तक को पढ़कर बहुत लाभ हुआ है।

एक स्थल पर लेखक ने मेरी एक भूल भी सुझायी है। मेरा विश्वास है कि जो लोग हिन्दी लिखने की इच्छा रखते हैं, उनके लिए यह पुस्तक बहुत उपयोगी सिद्ध होगी। इसमें लिखी बातों पर ध्यान देकर वे अपनी रचनाओं को बहुत सी भद्दी भूलों से बचा सकेंगे।"

रामनारायण लाल

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

इलाहाबाद